डॉ. हर्षदेव माधव का (1985–2010 तक) के संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोध–निर्देशक

डॉ. (श्रीमती) सुदेश आहूजा
व्याख्याता–संस्कृत विभाग
राज. कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

शोधार्थी

श्रीमती अलका गौतम

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2016

Govt. Arts College Kota, (Raj)

Department of Sanskrit

CERTIFICATE

This is to certify that :-

1) Thesis entitled डॉ. हर्षदेव माधव का (1985–2010 तक) संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन submitted by Smt. Alka Gautam is an original research work for Ph. D. carried out by the candidate under my supervision.

2) Literary Presentation is satisfactory and the thesis is in a form suitable for publication.

3) Work enhances the capacity of the candidate for critical Examination and independent Judgememt.

4) Candidate has put in at least 200 days of attendance every year.

Date : **Signature of Supervisor with date**

Dr. Smt. Sudesh Ahuja

Department of Sanskrit

Govt. Arts College, Kota (Raj.)

Govt. Arts College Kota, (Raj)

Department of Sanskrit

PRE-SUBMISSION SEMINAR CERTIFICATE

This is to certify that :-

1) A pre-submission seminar for Ph.D. Thesis was held on 28/09/2016 in the dept. of Sanskrit, Govt. Arts College, Kota

2) In this seminar Mrs. Alka Gautam research scholar in the dept. of Sanskrit, gave a presentation on her topic 'डॉ. हर्षदेव माधव (1985–2010 तक) संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन'

3) All the members present in the meeting appreciated the presentation given by Mrs. Alka Gautam

4) On behalf of all the members we recommend the thesis to be submitted for the degree of Ph.D.

Dr. Sudesh Ahuja	**HOD Sanskrit**	प्राचार्य
Supervisor	**Govt. Arts College, Kota**	राज. कला महाविद्यालय, कोटा

प्राक्कथन

"संस्कृतंनामदैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः"

क्रान्तदर्शी ऋषि, कवि कोविदवृन्द के सत्यनिष्ठ तपःभूत आचरण से निःसृत संस्कृत भाषा वैदिककाल से ही भारत–भूमि पर सतत् प्रवहमान रही है। यह भाषा ज्ञान–विज्ञान, कला–राजनीति–व्यवहार–दर्शन–व्याकरण आदि सभी विद्याओं का भाण्डागार है और यह ज्ञान–विज्ञान ही हमारी थाती है, हमारी धरोहर है। भारतीय संस्कृति ज्ञान की इसी धरोहर के आधार पर विश्व संस्कृतियों में सर्वोत्कृष्ठ रही है और रहेगी।

वर्तमान में संस्कृत साहित्य में नित्य नवीन विधाओं का उदय हुआ है इससे पूर्व किसी भी युग में साहित्य–लेखन की इतनी नवीन विधाओं, विशेषकर गद्य–विधाओं का उद्भव संस्कृत–साहित्य में नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण है अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के परिचय, आदान–प्रदान, पारस्परिक अन्तःक्रिया के फलस्वरूप साहित्य में पनपी नई उद्भावनाओं विधाओं और शैलियों के रचनात्मक प्रभाव। इसी प्रभाव के फलस्वरूप संस्कृत साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन परिलक्षित होते हैं।

आधुनिक लेखक की संस्कृत–लेखनी प्राचीन काव्य के संस्कार, रसात्मक बोध, भाषा के परिनिष्ठित रूप के साथ–साथ नये से नये वातावरण, जीवनानुभव और परिस्थितियों को व्यक्त करने में प्रवृत्त हुयी। आज का लेखक विश्वसाहित्य के प्रभाव स्वरूप उपन्यास, ललित निबंध, जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, व्यंग्य लेख, गज़ल–गीतियां, लघुबिम्बकाव्य, तान्का हाईकु, सिज़ो, चित्रकाव्य, महाकाव्यखण्ड, एब्सर्ड नाटक, छंदो मुक्त रचनाएँ, रेडियो–रूपक, डायरी, विविध देशी–विदेशी छन्दों में रचना आदि विधाओं पर अपनी लेखनी चला रहा है वर्तमान युग में अभूतपूर्व नवीनशैलियों, विधाओं के आयाम दिखाई देते हैं जिससे प्रवर्तमान समय को संस्कृत नव लेखन का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य तो वह संजीवनी है जो अन्य भाषाओं को भी जीवन्तता प्रदान कर रहा है। वर्तमान में संस्कृत साहित्य अपने नये तेवर व भावबोध के साथ अवतरित हुआ है। इसने अन्य भाषाओं की सम्पूर्ण विधाओं, छंदो व शैली को स्वीकार

कर यह सिद्ध कर दिया कि संस्कृत साहित्य में अजेय ग्रहण शक्ति है जो अपने–आपको हर परिस्थितियों में ढाल सकती है। अर्वाचीन कवि प्राचीन ढर्रे को छोड़कर संस्कृत को नवभंगिमा व नव परिधान में सजाकर प्रस्तुत कर रहा है।

इसी क्रम में जब मेरे समक्ष पी.एच.डी. शोध–प्रबन्ध के लिए विषय–चयन का अवसर आया तो मेरी शोध–निर्देशक **डॉ. श्रीमती सुदेश आहूजा** ने मेरी रूचि आधुनिक संस्कृत साहित्य की ओर जाग्रत की और **"डॉ. हर्षदेव माधव के संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन"** को शोध–प्रबन्ध का विषय चुनने के लिए सुझाव दिया। डॉ. हर्षदेव माधव अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ कवियों में से एक हस्ताक्षर हैं जिन पर भगवती सुरभारती की असीम कृपा रही। जब मैंने इनकी कृतियों की नामावली पर दृष्टि डाली तो देखती ही रह गई कि कोई कवि इतना विविध और विपुलकाय साहित्य कैसे लिख सकता है। प्राचीन व अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं है जिसमें कवि की गति न हो। महाकाव्य, प्रणयकाव्य, चित्रकाव्य, लघुबिम्ब काव्य, ग़ज़ल, गीत, डायरी, एब्सर्ड नाटक, हाईकु, तान्का, सिज़ो, कविता, एकांकी आदि अनेक विधाओं पर कवि ने लेखनी चलाई है। डॉ. हर्षदेव माधव नवीन प्रयोग धर्मा कवि है उनका मन विद्यमान सांचो में रचना करने में नहीं रमता अपितु वे स्वयं युगीनकवन–मार्गों का निर्माण करते हैं। उन्होंने जापानी काव्य विधा हाईकु, तान्का, सिज़ो आदि विधाओं का संस्कृत साहित्य में प्रयोग कर **'आधुनिक युगबोध'** प्रस्तुत किया है जो 'अनूठा' है। इसीप्रकार नव्य शैली के प्रवर्तक डॉ. माधव ने हिन्दी साहित्य में विद्यमान डायरी विधा को संस्कृत साहित्य में अवतरित किया जो सर्वथा नवीन प्रयोग है। किसी दैनिक घटना के संदर्भ में मन की उधेड़बुन व्यक्त करने के लिए 'डायरी' सर्वोत्तम माध्यम है।

मौलिक व बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा रचित **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** संस्कृत साहित्य की सर्वप्रथम डायरी (वासरिका) है इसमें कवि ने दूतकाव्य परम्परा के अग्रणी **मेघदूत** की विषय–वस्तु को संगृहीत करके नूतन शैली में अभिशप्त यक्ष की जो महिमा अस्त हो गई थी उसे नई सोच, नई ऊर्जा के साथ पाठकों के समक्ष आत्मकथन शैली में प्रस्तुत किया है। मूकोरामगिरिर्भूत्वा में कवि ने मेघदूत के 100 श्लोकों का विस्तार 100 पृष्ठों और 365 दिनों में कर दिया है वस्तुतः 156 दिनों में ही यह दैनन्दिनी है। इस वासरिका को **1. श्याम मेघ 2. अरुण मेघ 3. रक्तमेघ 4. सुवर्णमेघ** इन चार खण्डों में बाँटकर यक्ष के पूर्वापर जीवन की झांकी प्रस्तुत की है। मूकोरामगिरिर्भूत्वा अपर नाम **यक्षस्यवासरिका** के अद्‌भुत प्रयोगों ने स्वयं रामगिरि को

मौन कर दिया, वह भी ठगा सा रह गया जिसने मौन रहकर यक्ष के तीन–तीन जन्मों के मर्म को देखा समझा और सबकुछ समझने के उपरान्त व्यक्ति के पास मौन रहकर सोचने का अवसर ही अनुकूल होता है शायद इसी हेतु रामगिरि ने मौन धारण कर लिया है इसीलिए इसका 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' नामकरण किया गया है, ऐसा मेरा मन्तव्य है। इस शोध में **"डॉ. हर्षदेव माधव (1985–2010 तक) के संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन"** विषय को 5 अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय – डॉ. हर्षदेव माधव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय – गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत आधुनिक गद्य की नवीन विधा (डायरी) संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्मकथा, इन्टरव्यू, यात्रा–साहित्य, पत्र साहित्य, फीचर, गीति व भाव नाट्य आदि का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय – नाट्य विधा में डॉ. हर्षदेव माधव का योगदान के अन्तर्गत **मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति** व **कल्पवृक्ष** नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय – अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में डायरी मूकोरामगिरिर्भूत्वा के सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आयाम का विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय – मेघदूत पर आधारित अर्वाचीन संस्कृत कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत मेघदूत, प्रबोधशतकम्, दूतप्रतिवचनम् व मूकोरामगिरिर्भूत्वा का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

उपसंहार – मूकोरामगिरिर्भूत्वा का वर्तमान कसौटी पर उसके जीवन दर्शन व कवि की अन्तदृष्टि का नवनीत रूप में ग्रहण है।

शोध–प्रबन्ध को पूर्ण परिणति तक पहुँचाने में बहुत लोगों का योगदान रहा है। जिनके प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

"ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।"

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के अनुसार प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के लेखन कार्य में प्रतिपद अवर्ण्य विघ्न बाधा व दुविधा के उपस्थित होने पर मेरी शोध निर्देशक **डॉ. श्रीमती सुदेश आहूजा** ने हर समय सहयोग व मार्ग दर्शन प्रदान किया। उनका मार्गदर्शन कुम्हार के घट के समान है जो घट को वास्तविक रूप प्रदान करता है। इस सहयोग व तत्परता के लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ तथा हृदय की गहनतम अनुभूतियों से उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

संस्कृत–विभाग के समस्त व्याख्याताओं के प्रति भी मैं श्रद्धा से अवनत हूँ जिन्होंने समय–समय पर अपना सम्पूर्ण सहयोग व प्रेरणा प्रदान की।

मैं अपने माता **श्रीमती गीता गौतम पिता श्री अशोक गौतम**, भाई–बहनों, देवर एवं अपने जीवन साथी **श्री अशोक कुमार गौतम** का हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ इनके सहयोग के बिना मेरा विवाह के पश्चात् अध्ययन करना असंभव था। मेरे **स्व. सास–श्वसुर** के आशीर्वाद और मेरी 3 वर्षीया पुत्री **'स्वस्ति' गौतम** के प्रति मेरे स्नेह व दुलार ने भी इस कार्य के प्रति मुझे प्रेरित किया है।

मेरे इस शोध–प्रबन्ध के टंकण कार्य के लिए 'परम कम्प्यूटर की शबनम खान की मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने शोध–प्रबन्ध के कलेवर को सुसज्जित कर परिश्रमपूर्वक तल्लीनता से कार्य कर यथोचित समय में शोध–प्रबन्ध को मूर्त आकार प्रदान किया।

मैं अपने कार्य में कहाँ तक सक्षम रही हूँ इसका निष्कर्ष सुधी पाठकगण करेंगे। अनवधानतावशात् जो त्रुटियाँ रह गयी है, उनके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

शोधार्थी

श्रीमती अलका गौतम

✡✡✡✡

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
	प्राक्कथन	i - iv
प्रथम अध्याय :	डॉ. हर्षदेव माधव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1—68

व्यक्तित्व

(i) वंशावली
(ii) शैक्षणिक उपलब्धियाँ
(iii) कार्यक्षेत्र एवं वर्तमान पद
(iv) व्यक्तित्व की विशेषताएँ
(v) डॉ. हर्षदेव माधव के प्रकाशित शोध–लेख
(vi) डॉ. हर्षदेव माधव पर समीक्षकों द्वारा लिखे गए शोध–लेख
(vii) गुरू गौतम भाई पटेल द्वारा रचित प्रशंसात्मक श्लोक

कृतित्व

(i) संस्कृत काव्य संग्रह
(ii) संस्कृत नाट्य संग्रह
(iii) संस्कृत उपन्यास (डायरी)
(iv) विवेचन ग्रंथ
(v) प्रतिनिधि कविताएँ
(vi) शब्दकोष
(vii) मार्गदर्शन में शोध उपाधि प्राप्त और शोध अध्ययनरत शोध छात्र एवं उनके विषय
(viii) Post Held
(ix) प्रशस्ति–पत्र

निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय : गद्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास अर्वाचीन संस्कृत साहित्य तक 69–129

(i) प्राचीन गद्य का उद्‌भव एवं विकास

(ii) आधुनिक संस्कृत गद्य का उद्‌भव एवं विशेषताएँ

(iii) आधुनिक गद्य की विविध नवीन विधाएँ–संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्मकथा, इन्टरव्यू, यात्रासाहित्य, पत्रसाहित्य जीवनी साहित्य, फीचर, भाव नाट्य

(iv) संस्कृत साहित्य में उपन्यास विधा

(v) डायरी विधा का उद्‌भव एवं विकास–डायरी के तत्त्व विशेषताएँ, हिन्दी में लिखा डायरी साहित्य, संस्कृत साहित्य में डायरी विधा लेखन

(vi) प्राचीन गद्य एवं आधुनिक गद्य में भेद

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय : नाट्य विधा में डॉ. हर्षदेव माधव का योगदान 130–179

(i) संस्कृत नाट्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

(ii) आधुनिक नाट्य विधा

(iii) संस्कृत नाट्य की नूतन प्रवृत्तियाँ–नुक्कड़–नाटक, रेडियो नाटक, गीतिनाट्य, नृत्य–नाटिका, एकांकी नाटक, संवाद माला, अनूदित नाटक

(iv) डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा रचित नाट्य साहित्य–

(1) मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति नाटक की समीक्षा

(2) कल्पवृक्ष नाटक की समीक्षा

निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय : अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में डायरी–मूकोरामगिरिर्भूत्वा 180–228

(i) संस्कृत साहित्य की सर्वप्रथम डायरी

(ii) मूकोरामगिरिर्भूत्वा का सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक विश्लेषण

(1) **सामाजिक आयाम** – नारी चेतना, दाम्पत्य–जीवन, समाज की दरिद्रता, शिक्षा, कर्म की महत्ता, निश्चल–मित्रता, लोकजीवन का वर्णन, पराधीनता विरोधी, परिवर्तनशील जगत् की झांकी

(2) **सांस्कृतिक आयाम** – भारत की भौगोलिक एकता, धर्म जीवन–दर्शन, सकारात्मक सोच, पुनर्जन्म में विश्वास, पृथ्वी सौन्दर्य का वर्णन

(3) **साहित्यिक आयाम**–भाषा, नवीन सूक्तियों का प्रयोग, अलंकारों का प्रयोग

निष्कर्ष

पंचम अध्याय : मेघदूत पर आधारित अर्वाचीन संस्कृत कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन 229–276

(i) कालिदास प्रणीत मेघदूत–परिचय

(ii) प्रो. राजेन्द्र मिश्र प्रणीत–प्रबोधशतकम्–परिचय

(iii) डॉ. इच्छाराम द्विवेदी प्रणीत–दूतप्रतिवचनम् परिचय

(iv) मेघदूत व अर्वाचीन रचनाओं (प्रबोधशतकम्, दूतप्रतिवचनम्, मूकोरामगिरिर्भूत्वा) में साम्यता

(1) कथावस्तु के आधार पर साम्यता

(2) भारत की अखण्डता (राष्ट्रीय भावना) के आधार पर साम्यता

(3) वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना के आधार पर साम्यता

(4) लोकमंगल की भावना के आधार पर साम्यता

(5) मानवीय संवेदना की अनुभूति के आधार पर साम्यता

(v) मेघदूत व अर्वाचीन रचनाओं में वैषम्य

(1) विधा की दृष्टि से वैषम्य

(2) विषय–वस्तु की दृष्टि से वैषम्य

(3) भाषा–शैली की दृष्टि से वैषम्य

(4) नारी–चित्रण की दृष्टि से वैषम्य

(5) प्रकृति–चित्रण की दृष्टि से वैषम्य

(6) यथार्थ वर्णन के आधार पर वैषम्य

(7) साहित्य उद्देश्य के आधार पर वैषम्य

निष्कर्ष

उपसंहार **277–282**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **283–287**

परिशिष्ट

1. सर्जकथानन् मेघ धनुषी शिखरों–पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद
2. 'वासरिका' साहित्य की विधा और मूकोरामगिरिर्भूत्वा–आधुनिक संस्कृत की नई दिशाएँ, पार्श्व पब्लिकेशन–अहमदाबाद

प्रथम अध्याय

डॉ. हर्षदेव माधव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व

"नव्य संवेदनैः काव्यैर्वचोभंगिसमन्वितैः।
हर्षदो वागधिष्ठात्र्या हर्षदेवो, न संशयः।।"[1]

संस्कृत जगत् में बीसवीं सदी के प्रतिनिधि के रूप में विख्यात, आधुनिक संस्कृत साहित्याकाश के अनुपम एवं अद्वितीय देदीप्यमान नक्षत्र, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, प्रतिनिधि कवि, कुशाग्र बुद्धि, विभिन्न भाषाओं के विद्वान, कलाप्रेमी, सर्वातिशायी व्यक्तित्व सम्पन्न, संस्कृत नाट्य को पल्लवित एवं विकसित करने वाले सर्व विख्यात, गंभीर प्रभावोत्पादन क्षमता–ग्राही, साहित्यशास्त्रतलस्पर्शिनी प्रज्ञावान, दार्शनिक कवि, नाट्यसाहित्य के गति–प्रदाता अप्रतिम मेधा सम्पन्न **डॉ. हर्षदेव माधव** की उपस्थिति संस्कृत साहित्य में एक अप्रतिम चमत्कार है। उनमें भारतीय प्रज्ञा, वैश्विक साहित्य का साक्षात् परिचय, बिम्बविधान की अद्भुत कला, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के विविध आयाम एवं तन्त्र साधक की दार्शनिकता, ब्रह्माण्ड की लौकिक एवं अलौकिक अभिव्यक्ति की बहुभाषी विविधता, व्य×जनाओं का अनूठा विश्व एक साथ मिलता है–जो वागीश्वरी की परम कृपा का परिणाम है।

आधुनिक संस्कृत कविता में 'डॉ. हर्षदेव माधव' एक 'प्रयोगधर्मी', 'युगद्रष्टा', 'नव्यशैली के प्रवर्तक', 'क्रान्तिकारी', 'विश्व–कविता' के प्रवाहों को संस्कृत में प्रवाहित करने वाले सशक्त 'अंगुल्यग्रगण्य' एवं एक 'महिमा मण्डित' स्थान पाने वाले बीसवीं सदी के प्रतिनिधि 'विलक्षण' कवि है। अपने 'अक्षुण्ण मार्ग पर चलने वाले' इस कवि ने प्रतीक, बिम्ब, मिथक, वास्तववाद, अतिवास्तववाद, घनवाद, ध्वनि, रीति, अलंकारों का नई अर्थवत्ता के साथ प्रयोग, नये उपमानों, बिम्बों, वैश्विक सन्दर्भों के सफल उपयोग, लघुबिम्ब काव्य, तान्का, हाईकु, सिज़ो, चित्रकाव्य, महाकाव्यखण्ड एवं एब्सर्ड नाटक आदि विधाओं की स्थापना के साथ **'आधुनिक युगबोध'** प्रस्तुत किया है जो **'अनूठा'** है।

डॉ. हर्षदेव माधव ने अपनी सृष्टि विद्यमान सांचो में नहीं रची बल्कि युगीनक वनमार्गों से संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध किया। यह माधव का बड़ा योगदान होने के बावजूद वे कालजयी रचनाकार कहलाते हैं तो उन साँचों के बल पर नहीं, जिनको संस्कृत में प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हें है, अपितु उस वाग्धारा के बल पर जो

किसी भी साँचे में रहकर सहृदय के हृदय का आह्लादन कर सकती है। 20 काव्य–संग्रहों और दो नाट्य–कृतियों सहित अनेक अप्रकाशित रचनाओं के स्रष्टा डॉ. माधव ऐसे सर्जक हैं, जिन्होंने अपने समकाल को प्रभावित किया है। उन्होंने न केवल वैश्विक सर्जन के श्वासोच्छ्वास की गन्ध से संस्कृत–पाठक को अभिज्ञ बनाया, अपितु इन प्रयोगों की बौद्धिकता और बौद्धिक–कर्कशता के स्थान पर हार्दिकता और रसात्मकता का विनियोग कर वैश्विक सर्जन को उपकृत किया है।

'डॉ. हर्षदेव माधव' का मन प्रयोगधर्मा है और हृदय भावुकता से लबालब भरा हुआ है। अतः प्रयोग और प्रयोगधर्मिता को ही केन्द्र बिन्दु बनाने से इनके सर्जन की गम्भीरता को दृष्टि से ओझल करने की भूल हो सकती है। निस्सन्देह प्रयोगधर्मिता कविता को तरोताजा करती है और वह ऊँचे प्रतिभा–बल द्वारा अभिगम्य है, तथापि यह स्पष्ट है कि प्रयोगगत नावीन्य समय–सापेक्ष होता है और आत्मगत संस्पर्श काल बाह्य/कालनिरपेक्ष या कालजयी। प्रयोगधर्मिता के साथ–साथ प्रत्यक्षर चिन्तन–परकता और प्रतिचिन्तन समाज–परकता डॉ. माधव के कविकर्म का सबसे मार्मिक पक्ष है।

'डॉ. हर्षदेव माधव' तो स्वयं परिचय है–संस्कृत में अर्थवत्तापूर्ण लेखन के। पिछले कुछ बरसों में समकालीन संस्कृत कविता के परिदृश्य में नवीनता बोध का प्रवेश कराने की दृष्टि से तथा इस भाषा के सर्जनात्मक सामर्थ्य को आधुनिक जीवनबोध से सम्पृक्त करने के लिहाज से गिने–चुने कवि सामने आये हैं, जिन्होंने न केवल नई भावभूमि पर आहत रूपों को भी सफलतापूर्वक आजमाया है। डॉ. हर्षदेव ने संस्कृत की समकालीन कविता के आधुनिक चेहरे को साकार करने का उल्लेखनीय कार्य किया है। हर्षदेव की कविताएँ अनेक आयामों का संस्पर्श करने वाली हैं क्योंकि इनमें अन्तर्वस्तु तथा शिल्प के स्तर पर यथार्थ, अतियथार्थ, मिथक, प्रतीक, बिम्ब के साथ ही साथ मनुष्य के पंचेन्द्रियबोध इत्यादि का सर्जनात्मक एवं नवबोध के स्तर पर निर्वहण किया गया है। वे कविता में व्यापक विषयों को उठाते हैं तथा इनको प्रयोगशील काव्यरूपों के स्तर पर अभिव्यक्त करते हैं। संवेदनशीलता, विश्लेषणपरकता तथा अपने समकाल से जीवंत जुड़ाव के कारण वे अपनी काव्यभाषा को नवीन तेवर प्रदान करते हैं। कवि लगभग तमाम वैश्विक विषयों को व्यक्त करता है, जो कि व्यष्टि से समष्टि, मूर्त से अमूर्त, स्थानीय से सार्वत्रिक तक

की दूरी तय करते हैं। हर्षदेव की कविता संस्कृत काव्य में नवप्रवर्तन को संभव करने वाली, संश्लिष्ट तथा सार्वभौमिक चेतना सम्पन्न प्रतिभा के सृजनात्मक रूपान्तण की दृष्टि से ये रचनाएँ हर्षदेव की कविता को संस्कृत की समकालीन कविता की प्रतिनिधि कविता बनाती है और जो संस्कृत की ढाँचागत कविता से स्वयं को मुक्त करने वाली कविता का उदाहरण बन जाती है।

बीसवीं शती की संस्कृत–कविता के नूतन घनश्याम[2] कहलाने वाले **डॉ. हर्षदेव माधव** बीसवीं शती के विलक्षण कवि है। अपने को राधा नहीं, किन्तु मालती का माधव कहलाने वाले **'डॉ. हर्षदेव माधव'** का मूल नाम **हर्षवदन मनसुख लाल जानी है।** साहित्य–जगत् में इन्हें 'हर्षदेव माधव' नाम से जाना जाता है। माधव के आध्यात्मिक गुरू 'नन्दकिशोर व्यास' है जिन्होंने हर्षदेव माधव को **'प्रकाशानन्दनाथ'** नाम प्रदान किया।

स्व अलौकिक कला से सुजनों को रसास्वादन कराने हेतु इनका प्रादुर्भाव 20 अक्टूबर 1954 को वरतेज ग्राम जिला भावनगर, गुजरात में हुआ। इनके पिता का नाम **स्व. श्री मनसुख लाल जानी** तथा माता का नाम **नंदन बेन** जानी था। सप्तवर्षों तक पितृ सुख प्राप्त कराके विलक्षण प्रेम के सागर पिता पंचतत्त्व में विलीन हो गये। प्राथमिकशाला में शिक्षिका का कार्य करने वाली माता ने अपनी ममता से संवर्धन किया। स्नेहिल ज्येष्ठ भ्राता 'भरत' और स्नेह वत्सला भगिनी 'हर्षिका' से प्रेम का सहारा मिला। मेट्रिक पास होने के बाद पालीताणा में पोस्ट–ऑफिस में टेलीग्राफ–क्लर्क की सेवा की किन्तु निर्धनता के कारण महाविद्यालयी शिक्षण संभव नहीं हो सका। कवि ने न तो संस्कृत परम्परा से सीखी, न महाविद्यालय में विधिवत् उच्च शिक्षा प्राप्त की है। न परिवार में कहीं संस्कृत का ज्ञान और न ही कॉलेज जाने का अवसर मिला लेकिन बी.ए. से संस्कृत व गुजराती विषय लेकर पढ़ाई की। मेहनत व लगन के साथ–साथ ईश्वर के आशीर्वाद से स्वतः संस्कृत का ज्ञान अर्जन किया। यह एक चमत्कार है–

जैसे एक अनपढ़ कालिदास बन जाता है एक लुटेरा वाल्मीकि बन जाता है, उसी तरह का एक चमत्कार है।

– वंशावली –

काशीरामजानी — प्रपितामह

↓

स्व. भानुशंकर जानी — (पितामह)

↓

स्व. मनसुख लाल जानी — (पिता) — नंदनबेन गौरी (माता)

↓

स्व. जनार्दन (भ्राता) भरत कुमार (भ्राता) –चेतना (भाभी)–हर्षदेव माधव–श्रुति (भार्या) हर्षदा (बहन)

↓

विद्याधर (भतीजा) — ऋषिराज (पुत्र)

राजकीय सेवा करते हुए ही डॉ. माधव ने देवगिरा का ज्ञान प्राप्त किया। उद्योग का श्रीगणेश 1976 में पालीताणा में तार विभाग में लिपिक के रूप में किया। 1981 से 1987 तक अहमदाबाद स्थित कस्तूरबा गांधी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में सेवा प्रदान की।

शैक्षणिक उपलब्धियाँ

डॉ. हर्षदेव माधव की विद्यालयीय शिक्षा का आरम्भ वरवेज ग्राम के तालुका विद्यालय में हुआ। माध्यमिक शिक्षा कोलियाक विद्यालय जिला भावनगर गुजरात में प्राप्त की। कक्षा एकादशी से अधिस्नातक पर्यन्त सम्पूर्ण शिक्षण स्वयंपाठी छात्र के रूप में हुआ।

इस अवधि में मानस गुरु श्री एम.वी. जोशी का पत्र द्वारा यथा समय मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ।

- 1975 में बी.ए. उपाधि सौराष्ट्र विश्वविद्यालय से प्राप्त की।
- 1981 में एम.ए. उपाधि अलंकारशास्त्र के साथ सौराष्ट्र विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में प्राप्त की।
- 1983 में गुजरात विश्वविद्यालय से शिक्षाशास्त्री (बी.एड.) उपाधि प्राप्त की।
- 1990 में डॉ. गौतम भाई पटेल के सम्यक् मार्ग दर्शन में **"मुख्य पुराणों में शाप तथा उसका प्रभाव"** विषय पर गुजरात विश्वविद्यालय से विद्यावारिधि (पीएच.डी.) उपाधि प्राप्त की।

- गुरु नन्दकिशोर व्यास के सान्निध्य में 2005 में शाक्ततन्त्र की पूर्णाभिषेक दीक्षा को अंगीकार किया व तन्त्र के विषय में दो ग्रंथ भी लिखे जो अभी अप्रकाशित है।

कार्य क्षेत्र एवं वर्तमान पद

डॉ. हर्षदेव माधव संस्कृत साहित्य, गुजराती साहित्य, अंग्रेजी साहित्य तथा हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि Play Writer आलोचक तथा लघुकथा लेखक तथा शिक्षाविद् है।

डॉ. माधव का विस्तृत कार्यक्षेत्र संस्कृत साहित्य, गुजराती साहित्य में निहित है। संस्कृत साहित्य में इन्होंने अनेक काव्य संग्रह, कहानी, शोध–पत्र, अनुवाद विवेचन, नाट्य संग्रह, विवेचन ग्रंथ तान्त्रिक संशोधन ग्रन्थों की रचना की।

वर्तमान में अहमदाबाद में ही विद्यमान प्रसिद्ध एच.के. आर्ट्स (H.K. Arts) महाविद्यालय में अध्यापन कार्य करते हुए 'प्रोफेसर इनचार्ज' और पी.एच.डी. मार्गदर्शक के रूप में सेवा प्रदान करते हुए शिष्यजनों को स्वज्ञान के दिव्यालोक से आलोकित कर रहे हैं।

वस्तुतः **'हर्षदेव माधवस्या' प्रारम्भिक काव्येषु, परावास्तवादिकवितासु, उपनिषतकाव्येषु च आत्मबोध–स्वात्मानुभूति–काव्यानुभूतयश्च यथा अनुप्राणिताः सन्ति तथा तस्य नाटकेषु कथासु उपन्यासेष्वपि। अस्मिन् उपन्यासेऽपि वयं तस्य महाभारतीयमानसं प्रत्यक्षीकुर्मः अग्रिमपंक्तिषु।**

माधवः स्वकाव्यक्षेत्रे नवनवान् प्रयोगान् प्रयुङ्क्ते , मुक्तच्छन्दसो विचित्रं चमत्कारं प्रकटयति, प्रतीक–संकेत–गणितीय–संज्ञादिभिः भावं प्रकाशयति, पारम्परिकतां परिहाय भावभाषयो–रपूर्वां सरणिं कश्चिदनुसरति इत्यभिनव–काव्य परम्परा–प्रवर्तनपरः प्रयोग प्रखरः सुतीक्ष्णस्वरः कविवरः श्रीहर्षदेव माधवोनवकाव्येकुञ्जे विचरन् विलसतुतराम् इति कामयते। डॉ. हर्षदेव माधवस्थाभिधानमधुना पर्यायभूतं नूतनकाव्यप्रस्थानस्य अर्वाचीन–संस्कृतकवितायाम्। प्रतिभापरिष्ठोऽयं युवाकविरेकतो जयपाणि प्रचलित हाईकूकवितां सुरवाण्यामवतार्य तस्या आयतिं सामर्थ्य×च प्रमाणयत्यन्यतश्च पुनरावर्तते सर्वथाऽभिनवदृष्टया पौराणिक वृतमपि एवं हि समुपेक्ष्य चिरसंस्तुतं काव्यमार्गं चरितार्थयत्याभाणकं लोकविदितं यत्–

"त्रयश्चरति लोकेऽस्मिन् सृतिं हित्वा पुरातनीम्।
सत्पुत्रो मृगराजश्च कविश्चापि स्वयं प्रभः।।"[3]

डॉ. माधवस्य संस्कृत रचना संप्रति विश्वस्तरे काव्यनिर्मितिप्रवृतिमादाय निजस्वधारायां प्रवर्त्तते। आधुनिक जीवन सन्दर्भे पुरा कल्पानां विपुल प्रयोगः, मानविक प्रवृत्तेः सार्थक चिन्तकल्पनिर्माणं, प्राचीन–नवीन वाग्व्यवहारस्य सम्मिश्ररूप संरचनं, मुक्तकशैल्या साक्षाद्वस्तूपस्थापनं, विदेशीय विधया स्थिति चित्रणं, लघुपरिकल्पमूलकं बौद्धिक–विधानं, प्रतीक प्रयोग द्वारा च भावान्तर सर्जनस्य कवेः पुरोगमित्वं वैशिष्ट्यं च प्रतिपादयन्ति।

"नवं काव्यं नवं शिल्पं वस्तु नवा विधा।
नवं यशः नवं स्थानं प्राप्स्यतीति दृढा मतिः।
काव्यरत्नमिदं नव्यं यशः शुभ्रं तनोतु ते।
मनस्सु संस्कृतज्ञानां करोतु च मुदं पराम्।।"

–डॉ. देवदत्त भट्टि महाभागाः

डॉ. हर्षदेव माधव के व्यक्तित्व की विशेषताएँ

1. सहज, सरल व स्नेहिल व्यक्तित्व

डॉ. हर्षदेव माधव का नाम आते ही एक ऐसे व्यक्तित्व का एहसास होता है जो सहजता व सरलता से युक्त होकर एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में परिवर्तन की मशाल लिये हुए खड़े हैं। जिन्हें पुरस्कारों की भीड़ में भले ही न खोज पाएँ परन्तु आधुनिक संस्कृत के क्षितिज पर उदीयमान तेजस्वी नक्षत्रों के बीच आभामंडित अवश्य पायेंगे। डॉ. माधव अपने व्यक्तिगत जीवन में बहुत ही सहज व स्नेहिल व्यक्तित्व के धनी है वे 'सादा जीवन उच्च विचार' की शैली का अनुसरण करने वाले हैं। उनकी रचनाओं में भी उनकी सहजता का आभास हो जाता है वे गंभीर से गंभीर विषय को भी सरलता से अपनी लेखनी से लिपिबद्ध कर देते हैं।

डॉ. हर्षदेव माधव की सहजता व स्नेहिल व्यक्तित्व का आभास मुझे दूरभाष पर वार्ता करने से भी हुआ उन्होंने जिस सहजता व सरलता से बात की कि लगा ही नहीं आधुनिक संस्कृत के तेजस्वी कवि से मैंने बात की है।

डॉ. माधव सहयोग भावना से परिपूर्ण व्यक्तित्व है उन्होंने दूरभाष पर कहने मात्र से शीघ्रातिशीघ्र उनके द्वारा रचित पुस्तकों को प्रेषित करने का कष्ट किया और आगे भी हर प्रकार के सहयोग के लिए आश्वासन दिया वरना इतने बड़े व्यक्तित्व के पास इतना समय कहाँ होता है यह उनके व्यक्तित्व की ही विशेषता है जो हर समय सहयोग हेतु तत्पर रहते हैं।

2. संघर्षमय जीवन

डॉ. हर्षदेव माधव का जीवन अत्यन्त ही संघर्षपूर्ण व अभावों से घिरा हुआ रहा है जब वे 4 वर्ष के थे तब ही पिताजी की मृत्यु हो गई। माँ ने प्राइमरी शिक्षिका बनकर चार भाई–बहनों का पालन–पोषण और संस्कार संवर्धन किया। कोलियाक नामक छोटे से गाँव से ग्यारहवीं तक प्रत्यक्ष पढ़ाई की उसके बाद अभ्यास प्रि.यूनि. (आट्र्स) से एम.ए. तक बाहरी (External Student) छात्र के रूप में किया। आर्थिक स्थिति कंगाल होने से कॉलेज जाने का अवसर ही नहीं मिला लेकिन बी.ए. में संस्कृत–गुजराती विषय लेकर पढ़ाई की। डॉ. माधव कहते हैं कि सख्त परिश्रम और परमात्मा की कृपा से मैंने संस्कृत स्वतः स्फुरणा से सीखी व गाँव के एकान्त में विश्वसाहित्य का पान किया। बड़े भाई भरत याज्ञिक ग्रंथ सामग्री ले आते थे जिससे विश्व के साहित्य प्रवाहों को, विविध भाषाओं की समृद्धि को आकण्ठ पीता रहा। टेलीग्राफिस्ट की नौकरी करते–करते एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अहमदाबाद की हायर सैकेण्डरी स्कूल में अंग्रेजी संस्कृत पाँच वर्षों तक पढ़ाया उसके बाद कॉलेज में अध्यापक के रूप में प्रवेश हुआ जो अभी तक चल रहा है। इस प्रकार डॉ. माधव का संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत हुआ।

3. नवीन प्रयोगधर्मी कवि

डॉ. हर्षदेव माधव अपने काव्य लेखन में नित्य नवीन–नवीन प्रयोगों को महत्त्व देने वाले कवि है उनका मानना है कि साहित्य सर्जनात्मक क्रिया है, उसमें नावीन्य अनिवार्य है यदि काव्य के शब्द, अर्थ, अभिव्यक्ति , अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि के द्वारा कुछ नया न मिले तो वैसे सर्जन का क्या अर्थ है? मैंने अपना एक ध्येय वाक्य बनाया है– **'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं कविताङ्नायाः।'** प्रयोगशील होने के साथ काव्य चमत्कृति और काव्य–संवेदना अगर जीवित है, प्राणवती है तो ही मैं कवि के रूप में जीवित हूँ नित्य नवीन प्रयोग ही कवि के काव्य रचना की आत्मा है।

आइये! यदि आपको मसूरी, हरिद्वार, उदयपुर, पशुपतिनाथ, सोमनाथ, सिंहलद्वीप, शिलोंग, लद्दाख, मिस्रदेश, यूरोपिया, नागार्जुन कोंडा, आस्ट्रेलिया आदि अनेक स्थानों को देखने की उत्कण्ठा है तो कहीं जाने की जरूरत नहीं कवि माधव की कविताओं के गलियारे में चले आइये, सम्पूर्ण विश्व घूम लेंगे आप। इस प्रकार के प्रयोग करके कवि माधव कम शब्दों में भावों की लड़ी पिरो देते हैं।

4. चमत्कारिक चिन्तन के धनी

डॉ. माधव चमत्कारिक चिन्तन के धनी थे तेरह–चौदह साल की उम्र में जब बच्चे खेलने में व्यस्त होते हैं उस उम्र में डॉ. हर्षदेव माधव ने गुजराती में गीत, छन्द तथा JAPANESE HAIKU किताब पढ़कर सहसा ही हाइकु की रचना कर डाली। डॉ. माधव का चमत्कारपूर्ण चिन्तन ही है जिससे वे कविता को पुष्प की एक्स–रे छवि, लावण्यमयी ललना, स्पर्श लज्जा कोमला कहते हैं। डॉ. माधव को अपने व्यक्तित्व के बाह्य चाकचिक्य की अभिलाषा नहीं है और न ही मंच पर आसीन होने की ललक है वे तो 'एकला चलो रे' का विचार मन में रखते हुये अपना मंच अलग ही बना रहे हैं जो उनसे सहमत हो उनके साथ चले आइये वरना अपने तर्क रखने के लिये आप भी स्वतंत्र है।

5. प्राचीन रूढ़ परम्परा के विरोधी व स्पष्टवादी

पूर्णतः स्पष्टवादी कवि डॉ. माधव को आधुनिक संस्कृत साहित्य का क्रान्तिदूत कहा जा सकता है जो परम्परा में तो विश्वास रखते हैं परन्तु यदि परम्परा अंध, बधिर, मूक, पंगू या निर्वीर्य है तो डॉ. माधव को बिल्कुल स्वीकार्य नहीं है। उन्हें भीड़ से अलग तथा लीक से हटकर एक नये रास्ते से गुजरने की तमन्ना थी इसलिये उन्होंने सिर्फ गद्य–पद्य में रचना नहीं की अपितु आधुनिक संस्कृत साहित्य में एक नवीन 'डायरी विधा' का पदार्पण किया जिस विधा से संस्कृत साहित्य पूर्णतः अनभिज्ञ था, इस प्रकार काव्य में नवीन प्रयोग करते हुये जापानीज़ हाइकु, तान्का, सिज़ो काव्य की रचना की।

निष्कर्षतः वाणी के धनी ऐसे महारथी के विषय में जितना कहा जाये कम है। शान्त और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले इस महान् कवि के विषय में लिखने में शायद यह लेखनी भी असमर्थ है। निस्संदेह डॉ. हर्षदेव माधव के विषय पर कार्य करना मेरे लिए गौरव की बात है। अन्ततः यही कहा जा सकता है कि **'सिक्थवर्तिवत्**

प्रज्वलामि' कहने वाले डॉ. हर्षदेव माधव के जीवन का प्रत्येक पल पिघलकर इस संस्कृत–जगत् को प्रकाशित कर रहा है। हर्षदेव माधव जैसे कुछ ही संस्कृत कवि प्रतीकों को इसी तरह कविता में सफलता से ढाल सके हैं। हर्षदेव माधव का काव्य जटिल प्रतीकों का खासा जमावड़ा है, उन्होंने अपनी परम्परा से प्रतीक उठाये हैं और उन्हें नवीन अर्थवत्ता भी दी है।

डॉ. हर्षदेव माधव के प्रकाशित शोध लेख

1. अर्वाचीन आधुनिक संस्कृत–कविता तथा प्राचीन काव्य सिद्धान्त–दृक् अंक 2 पृ. सं. 50–58
2. प्रियतमा की सर्वांग सुन्दर प्राप्ति का एक काव्यात्मक प्रयत्नः 'प्रियतमा'–दृक् अंक 3 जनवरी–जून 2000 पृ.सं. 48–53
3. तण्डुल–प्रस्थीयम्–दृक् अंक–3 जनवरी–जून 2000 पृ.सं. 92–96
4. आधुनिक संस्कृत काव्य की समीक्षा–कुछ चुनौतियाँ–दृक् अंक 4 जुलाई–दिसम्बर –2000 पृ.सं. 38–44
5. अस्तित्व का संघर्ष, परम्परा का आश्वासन–मर्णिकर्णिका घट्टे–मूल–हर्षदेवमाधव अनुवाद–सदानन्द दास

   दृक् अंक–4 जुलाई–दिसम्बर 2000 पृ.सं. 68–70
6. इक्कीसवीं शताब्दी में संस्कृत : कुछ संभावनाएँ–हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 5 जनवरी–जून 2001 पृ.सं. 63–67
7. दृक्–4 : पाठक दृष्टि –हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 5 जनवरी–जून 2001 पृ.सं. 85–86
8. मातृगीतिका×जलिः – हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 5 जनवरी–जून 2001 पृ.सं. 112–113
9. युग परिवर्तनस्य विषादः – 'उद्यानं न तदेतत्......' हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 6 जुलाई–दिसम्बर 2001 पृ.सं. 50–52
10. आधुनिक संस्कृत–साहित्य और नाट्य प्रगीत कविता–हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 7 जनवरी–जून 2002 पृ.सं. 37–41

11. मनोलग्नं साधु रे मनः! एका रमणीयानुभूतिः–हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 7 जनवरी–जून 2002 पृ.सं. 68–70

12. विंशति–शताब्देः कुटिला जरठा वास्तविकता–हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 8 जुलाई–दिसम्बर 2002 पृ.सं. 82–85

13. युग सर्जक कवि–डॉ. जगन्नाथ पाठक–हर्षदेवमाधव, दृक् अंक 10 जुलाई–दिसम्बर 2003 पृ.सं. 22–23

14. जनकः पितुः सिसृक्षाया नवोऽनुभवः–हर्षदेवमाधव–दृक् अंक–10 जुलाई–दिसम्बर 2003 पृ.सं.–110–111

15. पाठक प्रतिक्रिया–हर्षदेव माधव, दृक् अंक–10 जुलाई–दिसम्बर 2003 पृ.सं. –148–149

16. संस्कृताय नमोनमः/श्लोक बद्धः काव्याभासः – हर्षदेव माधव, दृक् अंक 11 जनवरी–जून 2004 पृ.सं. 64–65

17. हाइकु में काव्यत्वचेतना–हर्षदेव माधव, दृक् अंक 12 जुलाई–दिसम्बर 2004 पृ.सं. 101–102

18. वैश्विकता की तलाश में संस्कृत–कविता–हर्षदेव माधव, दृक् अंक 14 जुलाई–दिसम्बर 2005 पृ.सं. 45–47

19. गद्य–कथा के नये आयाम/अभिनवशुकसारिका–हर्षदेव माधव, दृक् अंक 14 जुलाई–दिसम्बर 2005 पृ.सं. 105–107

20. प्रौढः/बनमाली विश्वालः, जीवन–क्षणिकताया मार्मिकी शब्दाभिव्यक्ति : – हर्षदेव माधव, दृक् अंक–14 जुलाई–दिसम्बर 2005 पृ.सं. 125–126

21. शिल्प के बदलते आयाम : एक तिरछी नजर से–हर्षदेव माधव, दृक् अंक 15–16 जनवरी–जून, जुलाई–दिसम्बर 2006 पृ.सं. 85–90

22. योरोपा/यूरोप–सौन्दर्य–नारी–लावण्य–दर्शनम्–हर्षदेव माधव दृक् अंक 17 जनवरी–जून 2007 पृ.सं. 52–54

23. आधुनिकतावाद और शाश्वतताः–हर्षदेव माधव दृक् अंक 18 जुलाई–दिसम्बर 2007 पृ.सं. 97–99

24. हाइकु का शिल्प – हर्षदेव माधव, दृक् अंक–19 जनवरी–जून 2008 पृ.सं. 27–28

25. गुजरात की आधुनिक संस्कृत रचनाओं में सामाजिक चेतना–हर्षदेव माधव, दृक् अंक 23, जनवरी–जून 2010 पृ.सं. –45–51

डॉ. हर्षदेव माधव पर समीक्षकों द्वारा लिखे गए शोध–पत्र

1. सब कुछ का निष्क्रमण/हर्षदेव माधव की कविता–राधावल्लभ त्रिपाठी, दृक् अंक 2, पृ.सं. 34–43
2. पुरा यत्र स्त्रोतः (कविता संग्रह)–गोविन्द झा, दृक् अंक–2, पृ.सं. 95–102
3. कालोऽस्मि/मृत्युशतकम्–बनमाली विश्वाल, दृक् अंक–3, जनवरी–जून 2000 पृ.सं. 101–104
4. परावास्तववाद और परावास्तववादी कविता 'भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि'–रवीन्द्र खाण्डवाला, दृक् अंक–06,जुलाई–दिसम्बर 2001 पृ.सं. 36–42
5. 'भावस्थिराणि जननान्तर–सौहृदानि'–अजय कुमार मिश्र, दृक् अंक–6, जुलाई–दिसम्बर 2001 पृ.सं. 104–109
6. एकबिम्बीय काव्य और हर्षदेव माधव – नवनीत जे. जोशी, दृक् अंक–7, जनवरी–जून 2002 पृ.सं. 61–67
7. 'सुधा सिन्धोर्मध्ये'–राधावल्लभ त्रिपाठी, दृक् अंक–9, जनवरी–जून 2003 पृ.सं. 103–105
8. 'सुधा सिन्धोर्मध्येः एकमाकलनम्–पराम्बा श्री योगमाया, दृक् अंक–10, जुलाई–दिसम्बर 2003 पृ.सं. 105–109
9. मृत्यु के उस पार/बिम्ब काव्यः 'भूतप्रेतशतकम्'–रवीन्द्र खाण्डवाला, दृक् अंक–11, जनवरी–जून 2004 पृ.सं. 111–114
10. हर्षदेव माधव की उड़ान के नये क्षितिज–मंजुलता शर्मा, दृक् अंक–12, जुलाई–दिसम्बर 2010 पृ.सं. 34–42

11. शतक काव्य–परम्पराओं में नये दृष्टिकोण से लिखी गई कृति/मृत्युशतकम्–सी.बी. बालस, दृक् अंक–13, जनवरी–जून 2005 पृ.सं. 104–112
12. सुधा सिन्धोर्मध्ये। आधुनिकता और आध्यात्मिकता का मणिकाञ्चन संयोग–श्वेता प्रजापति, दृक् अंक–13, जनवरी–जून 2005 पृ.सं. 115–118
13. सादृश्यों के दर्पण में नवोन्मेष के कवि–हर्षदेव माधव–शिवकुमार मिश्र, दृक् अंक 18, जुलाई–दिसम्बर 2007 पृ.सं. 61–71
14. शब्दानुप्राणित अनुभूतियाँ/ऋषेः क्षुब्धे चेतसि–अर्चना तिवारी, दृक् अंक–18, जुलाई–दिसम्बर 2007 पृ.सं. 113–117
15. आधुनिक संस्कृत कविता और हर्षदेव माधव का कविकर्म–प्रवीण पण्ड्या, दृक् अंक 19, जनवरी–जून 2008 पृ.सं. 29–32
16. डॉ. हर्षदेव माधव से बातचीत–मंजुलता शर्मा/प्रवीण पण्ड्या, दृक् अंक–21, जनवरी–जून 2009 पृ.सं. 1–13
17. सांप्रतिक संस्कृत काव्य बिम्ब निर्माणे अग्रदूतः–हर्षदेव माधव/केशवचन्द्र दास, दृक् अंक–21, जनवरी–जून 2009 पृ.सं. 31–34
18. मूकोरामगिरिः–भारतीयताया अपरः पर्यायः–नारायण दाशः, दृक् अंक–22, जुलाई–दिसम्बर 2009 पृ.सं. 45–50
19. समकालीन संस्कृत कविता के नवीन परिदृश्य (व्रणोरूढग्रन्थि के संदर्भ में)–सुदेश आहूजा, दृक् अंक–23, जनवरी–जून 2010 पृ.सं. 127–138
20. एक आधुनिक क्रान्ति द्रष्टा क्रान्तिकारी कवि डॉ. हर्षदेव माधव–हरिदत्त शर्मा दृक् अंक 30–31 जुलाई–दिसम्बर 2013 जनवरी–जून 2014 पृ.सं. 85–89

डॉ. हर्षदेव माधव के द्वारा प्राप्त पुरस्कार

1. कविलोक शिशुकाव्य पारितोषिक (1979)
2. विराट जागे वार्ता पारितोषिक (1980)
3. 'मृगया' के लिए 'कल्पवल्ली अवार्ड' 'भारतीय भाषा परिषद्' कोलकाता (1997)
4. रामकृष्ण संस्कृत अवार्ड, सरस्वती विकास, केनेडा–1998

5. Best Citizens of India Award,1999

6. अखिल भारतीय कालिदास पुरस्कार–निष्क्रान्ताः सर्वेः 2001

7. संस्कृत साहित्य अकादमी, गुजरात के पाँच पारितोषिक–

   (1) मृगया

   (2) लावारसदिग्धाः स्वप्नमयाः पर्वताः

   (3) निष्क्रान्ताः सर्वे

   (4) भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि

   (5) नखचिह्न

8. सौराष्ट्रय विस्तार संस्कृत परिषद् का प्रथम पारितोषिक 'तन्त्रशास्त्रोमां त्रिकोणनुं प्रतीक' शोध–पत्र के लिए–1997

9. 'वेद विज्ञान अकादमी' द्वारा 'गायत्री मन्त्र शाक्त दृष्टि से' शोध पत्र को प्रथम पारितोषिक–1999

10. 'वेद विज्ञान अकादमी' द्वारा 'कादिविद्या श्रुति प्रसूत बह्मविद्या' शोध–पत्र के लिए प्रथम पारितोषिक–2005

11. केन्द्रीय साहित्य अकादमी अवार्ड–तव स्पर्शे स्पर्शे 2006

डॉ. हर्षदेव माधव के गुरु डॉ. गौतम भाई पटेल ने डॉ. माधव की प्रशंसा इस प्रकार की है

देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं
जानीते नितरामसौ कविवरः श्रीहर्षदेवो मुदा।
कन्यां सर्वगुणैर्युतां हि मधुरामिच्छन्ति सर्वे जनाः
सा लभ्या 'उशती' हि तेन जगति यं सा वृणुते स्वयम्।।1।।

श्री हर्षोनिपुणः कविर्गुणगणग्राहे रता गुर्जराः
काव्यं नूतनभक्तिशक्तिरचनाभावैर्युतं प्रोज्ज्वलम्।
लोके हारि च वस्तुजातमखिलं दृष्टवैव मोदामहे
दैवेनाद्यकृता कृपा समुदिताः सर्वे गुणाः हर्षदे।।2।।

प्राचीनं च पुरातनं च विबुधां नव्यं पुनर्नूतनं
शब्दालंकृतिसारभावभरितं सर्वाधिकं सुन्दरम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमधुना काव्ये सदा निर्मल–
मैश्वर्यं यदि वांच्छसि प्रियसखे श्रीहर्षदेवं भज।।3।।

काव्ये यस्य सदैवरूपमधिकं विद्याधनं निर्मलं
साहित्ये निजबन्धुवर्गभरिते चान्यैरपि संस्तुतम्।
देशेवापि विदेशकाव्यविषये ख्यातं निजैः सद्गुणै–
स्तं वैविध्यपुरःसरं कविवरं श्रीहर्षदेवं भज।।4।।

काव्यं यस्य प्रबोधकारि मनसः नेत्रं तृतीयं स्मृतं
धेनुः कामदुधा सभा सुसफला वाणी सदा राजते।
सत्कारायतनं गृहं सुललितं रत्नैर्विना भूषितं
कार्यं यस्य विवेकभावभरितं श्रीहर्षदेवं भज।।5।।

सन्तः पश्य गृहे गृहेऽपि कवयः येषां च काव्यं कदा
स्वेहर्म्येऽपि पठन्ति नैव बहुधा दारा सुता बान्धवाः।
यस्याऽऽस्तेऽमृतसम्मिता सुरचना देशे विदेशे मुदा
विद्वपठिता सदा सुरसिता धन्यः श्रीहर्षो भुवि।।6।।

यत्सारस्वतवैभवं गुरूकृपापीयूष पाकोद्भवं
रम्या जीवन दृष्टि : सर्वविषये सूक्ष्मातिसूक्ष्मा भुवि
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरं जीमूतवज्जृम्भते
तं काव्यैकरसानुभवमहितं श्री हर्षदेवं भज।।7।।

श्री–हर्षदेव–कविता–वनिता विभाति
वैविध्यपूर्णविभवा रचनावलिषु।
गीर्वाणवाङ्मयसुधार्णवतुल्यभावै
रन्तुं यदिच्छसि तदा भज हर्षदेवम्।।8।।

अपूर्वं विषमाधुर्यं हर्षकाव्ये विराजते।
अपीत्वाऽपि मृताः केचित् पीत्वाऽन्ये जीविताः पुनः।।9।।

जयन्ति हर्षदेवस्य रसार्द्राः कृतयो वराः।
नास्ति यत्र यशःकाये मूढानां गतिर्याऽवरा।।10।।

प्रकाश्यते ह्यकादम्या प्रथमा संस्कृतकृतिः।
श्रीहर्षस्य, गुणैः सा तु प्रथमैव भविष्यति।।[4]

डॉ. हर्षदेव माधव को कवियों द्वारा दी गई उपमा

1. **'नवीन संवेदनाओं के साधक'**[5]–डॉ. मंजुलता शर्मा
2. **A Real Artist of Mono-Image Poems.**[6]–डॉ. मधु कोठारी
3. **'बींसवी शती की संस्कृत–कविता के नूतन घनश्याम'**[7]–डॉ. इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव'
4. **'नवेन पथा काव्यानि सृजन् कविः'**[8]–देवर्षि कलानाथः शास्त्री
5. **Madhav on the Track of time**[9]–डॉ. हरिदत्त शर्मा
6. **'क्रान्तद्रष्टा कविः'**[10]–डॉ. हरिदत्त शर्मा
7. **Harshdev Madhav-a prolific and powerful writer.**[11]–डॉ. हरिदत्त शर्मा
8. **'सांप्रतिक–संस्कृत–काव्य बिम्ब निर्माणे अग्रदूतः डॉ. हर्षदेव माधवः'**[12]–डॉ. केशवचन्द्र दाशः
9. **'हर्षदो वागधिष्ठात्र्याः'**[13]–अभिराजः डॉ. राजेन्द्र मिश्रः
10. **Harshdev Madhav-The highest peak of modernity a profile**[14]–डॉ. रश्मिकान्त

    ध्रुव

कृतित्व

"हर्षदो वागधिष्ठात्र्या हर्षदेवो न संशयः" (राजेन्द्र मिश्र)

आधुनिक संस्कृत कविता के अग्रदूत, कवि कु×जरतां प्रमाणयितुमं सन्नद्धः कविः, अर्वाचीन, संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर, गुजरात के युवा कवि **'श्री हर्षदेव माधव'** भारत के अंगुल्यग्रगण्य कतिपय संस्कृत कवियों में से एक है। गुर्जर भूमि अहमदाबाद में अपना कवि जीवन बिताने वाले कवि माधव ने बाल्यकाल में ही काव्य सर्जना प्रारम्भ कर दी थी। अपनी सशक्त एवं पैनी लेखनी से आधुनिक एवं प्राच्य–प्रतीच्य शैलियों में संस्कृत के अनेक काव्य, नाटक, कहानियाँ एवं आलोचना ग्रन्थ लिखकर पार्वत सारस्वत प्रयासों से संस्कृत जगत् में एक महिमा–मण्डित स्थान बनाया है। कवि ने न केवल संस्कृत में अपितु गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी में भी काव्य–सर्जन किया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य अपने रचना–शिल्प एवं भावबोध से अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। प्राचीन मान्यताओं से जूझकर नवीन मूल्यों को स्थापित करने का स्वप्न आज के साहित्य–सर्जक के लिए खुली चुनौती है, क्योंकि परम्परागत उन्हीं नवरसों, आठ स्थायी भाव एवं तैंतीस व्यभिचारी भावों से नयी संवेदना के चित्र खींचना बहुत ही दुष्कर कार्य है। नवसंस्करण को रूपायित करने के लिये उसके शाश्वत् दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन अपेक्षित हैं। लेकिन परम्पराओं से हटकर जब भी किसी साहित्य साधक ने नये क्षितिज की ओर उड़ान भरी है, तब ही उसके पंखों की शक्ति और साहस पर प्रश्नचिह्न लगे हैं। उसकी उन्मुक्त सोच एक ओर परम्परावादियों को काव्यशास्त्र का उल्लंघन प्रतीत होती है और दूसरी ओर नवजिज्ञासुओं के लिये अनसुलझी पहेली बन जाती है। ऐसे में हर्षदेव माधव जैसा लीक तोड़कर चलने वाला कवि आलोचकों की भ्रूभंगिमा से कैसे बच सकता है?

यदि मसूरी, हरिद्वार, उदयपुर, बंगाल, पशुपतिनाथ, सोमनाथ, सिंहलद्वीप, शिलोंग, लद्दाख, मिस्रदेश, युटोपिया, नागार्जुन कोंडा, आस्ट्रेलिया आदि अनेक स्थानों को देखने की उत्कंठा है तो कहीं जाने की जरूरत नहीं। कवि माधव की कविताओं के गलियारों में चले जाइये सम्पूर्ण विश्व घूम लेंगे आप।

अपनी साहित्य–साधना से अर्वाचीन संस्कृत जगत् को स्तब्ध कर देने वाले इस साधक ने विश्वमंच पर अपनी एक पहचान दी है। उनका इहलौकिक प्रेम कब सोपान तय करता हुआ परमात्म चिन्तन में बदल जाता है इसका अनुमान अन्त तक पाठक नहीं कर पाता। ऐसे चमत्कारिक चिन्तन के धनी डॉ. हर्षदेव माधव ने अपने व्यापक वर्ण्यविषय को चित्रात्मकता, इन्द्रियग्राह्यता और साम्य सौन्दर्य से सजाकर अन्य भाषीय साहित्य के मध्य अग्रिम पंक्ति में बैठाने का श्रमसाध्य कार्य किया है।

नवीन संवेदनाओं के धनी क्रान्ति के अग्रदूत डॉ. माधव को आज सर्वाधिक प्रयोगशील कवि के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में प्रयोगधर्मिता का बिगुल बजाने वाले कवि हर्षदेव माधव है। स्वभाव से विनम्र, कठिन परिश्रमी और संस्कृत साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर स्थापित करने का स्वप्न देखने वाले कवि माधव निश्चित रूप से कवियों की भीड़ में अलग दिखाई देते हैं। उनकी रचनाओं में कहीं भी पिष्टपेषण एवं चाटुकारिता दृष्टिगत नहीं होती। सम्भवतः यही कारण है कि जब भी बड़े पुरस्कारों के वितरण की बात होती है तब माधव पिछड़ जाते हैं, क्योंकि उनमें लिखने की ललक है, परन्तु 'विशिष्टता के लिए' लिखने का कोई जुनून नहीं है। भारत वर्ष में ही नहीं, अपितु विश्व में स्थापित कवि आज भी वह सम्मान नहीं पा सका है, जो उन्हें दिया जाना चाहिये। दो–चार पुस्तकों में तुकबन्दी परक रचनाएँ करके कुछ कवि पंक्ति तोड़कर आगे भी बढ़ जाते हैं और बढ़ रहे हैं, परन्तु माधव के मस्तिष्क पर कोई शिकन नहीं, उन्हें विश्वास है अपने साहित्य की ऊँचाइयों का, लेखनी के चमत्कार का और सही पारखी का, जो कभी न कभी इस परम्परा के छद्मवेश को तोड़ेगा।

आज संस्कृत कवि प्रेमिकाओं के प्रेमिल प्रसंग दोहरा रहा है। बसन्त का मादकत्व, राजनेताओं का छल–प्रपंच, स्तुति परक साहित्य और अपनी यात्राओं के विवरण से पृष्ठों को भर रहा है। ऐसे में माधव की हुंकार उन्हें कहीं बहुत पीछे छोड़ देती है, क्योंकि उनके साहित्य की यह अलग विधा है कि वे **'रेडलाइट एरिया'** जैसे उपेक्षित विषय को भी अपनी कविता से विशिष्ट बना देते हैं–

अत्र/सन्तिपुष्पाणामामन्त्रणानि/किन्तु/सुरभेर्मादकत्वं नास्ति/अत्र सन्ति प×जरबद्धानां, सारिकाणां कलानि/किन्तु/वसन्तोन्मादो नास्ति/शब्दाः सन्ति–अर्थसंवेदनरहिताः/जलमस्तिचित्रितम्/उद्यानमस्ति–प्रफुल्लत्वरहितम्/तृष्णावने

विहरन्ति / का×चनापार्श्वंमृगचर्मवत्यो हरिण्यः / अधुना / रामः प×चवटीं विहाय गतः / अत्र सन्ति / निशाचराणां स×चारः ।[15]

उन्होंने प्राचीन मिथकों को तोड़ा है, पात्रों की अनुभूति को स्वयं में उतारकर लिखने के कारण ही 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की स्वीकार की गयी शकुन्तला का यह कातर वचन पाठकों को स्तब्ध कर जाता है–

आर्यपुत्र! / त्वयाऽहं स्वीकृता सर्वदमनस्य जननीति मत्वा / शकुन्तला तु मृता / हस्तिनापुरे प्रत्याख्यानसमये / शकुन्तला तु दिवंगता / त्रिदिवसावसाने चतुर्थ –दिवस प्रभाते / अधुना / शकुन्तला–मृतकलेवरे / सर्वदमनस्य माता जीविति.... ।[16]

कालिदास की शकुन्तला भी सम्भवतः यही सोच रही होगी उस समय। आधुनिक ललनाओं को संकेतित करने वाले माधव ने उस पीड़ा को भी नवीन रूप में पाठकों के समक्ष रखा है, जिसे महाकवि कालिदास ने सुविज्ञों के चिन्तन के लिए छोड़ दिया था। इससे प्रतीत होता है कि भले ही वह अतीत की बात हो, अथवा वर्तमान की कोई भी त्रासदी हो, कवि माधव उसे उसी काल में जीवन्त कर देते हैं।

माधव के प्रतीकों की आभामयी प्रस्तुति रोचकता को बढ़ाती है, उनके नये प्रतिमान और चित्रकाव्य के दुर्लभ प्रयोग उनकी प्रज्ञा के अद्भुत वातायनों की ओर संकेत करते हैं। अणुबम से भयभीत सम्पूर्ण विश्व की शान्ति का पटाक्षेप मात्र तीन पंक्तियों में व्यक्त हो जाता है– **बुद्धस्य भिक्षापात्रे / निमज्जितम् / अणुबोम्बदग्धं नगरम् ।**[17]

आधुनिक संस्कृत साहित्य में जब भी सार्थक कविता की बात चलती है, हर्षदेव माधव की रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं। कम शब्दों में भावों की लड़ी पिरो देना उनके लिए कोई कठिन कार्य नहीं है। उन्होंने प्रायः उन्हीं सामयिक विषयों को उठाया है, जो जीवन का कड़वा सच कहते हैं। यूँ तो राजनेताओं पर कटाक्ष अनेक कवियों ने किये हैं, परन्तु इतने लघुकाय रूप में दिल्ली की राजनीति को प्रस्तुत कर देना, निस्संदेह उनका रचना कौशल ही है–

निर्वाचनस्य / डिण्डिमः–वक्षस्थलं / दुर्योधनस्य ।। चेतसि / दिल्लीयम् दम्भम् / मदम् / स्वार्थम् / कौटिल्यम् । / अत्रेवपश्य ।। / दिल्लीनिष्प्राणाः / समाधयः / सौधा मृताः / निर्जीवा चितिः ।।[18]

अन्य कवियों की भाँति डॉ. माधव राजनीति के दोगलेपन से व्यथित है। वोट बैंक को बढ़ाने की लालसा में हमारा नेतृत्व मूक–बधिर हो रहा है। राजनीति के बाजार में मनुष्य की धार्मिक आस्थाओं को नीलाम किया जा रहा है। वचन की प्रतिबद्धता हेतु जिन पुरुषोत्तम राम ने परिवार एवं राजसुख का परित्याग कर दिया, उनकी अयोध्या व्यक्तिगत स्वार्थों की ज्वाला में दग्ध हो रही है। ऐसी घृणित राजनीति से रक्तरंजित अयोध्या में यदि राम स्वयं लौट आये तो घनीभूत शोक से पीड़ित अयोध्या कैसे आश्वस्त कर पायेगी उन्हें? क्योंकि– **अधुना/अयोध्यायां मनुष्या न वसन्ति/वसन्त्यत्र विषादखण्डाः/महालयेषु अश्रुदीपाः प्रज्ज्वलन्ति/भित्तिषु व्यथाः सन्ति।**[19]

कभी–कभी माधव की बात इतनी तीखी होती है कि बिना कुछ कहे सीधे हृदय तक अपना असर दिखाती है। वह अभिधा में कुछ नहीं कहते, परन्तु उनके उपमान और उपमेय के बीच इतना अच्छा तालमेल होता है कि पाठक उस व्यंग्य पर मुस्करा उठता है। भावव्यञ्जक चित्र खींचने में कवि की लेखनी बेजोड़ है–

कॉलेज कन्याः ग्रन्थालये/दुग्धोत्सुकाः सुश्रीमार्जार्यः[20]

यहाँ पर कन्या की मनोवृत्ति केवल 'मार्जार्यः' कहने से इतनी ध्वनित नहीं होती, जितनी 'सुश्री' के साथ में होती है। मात्र पाँच शब्दों में युवा मन की पूरी कथा स्पष्ट हो जाती है। इसी प्रकार समाज के गिरते मूल्य ही कवि को यह कहने को बाध्य करते हैं कि– **लङ्कायाम् एको विभीषणोऽपि आसीत्।** अर्थात् आज के समय से तो वह रावण राज्य अच्छा था, जिसमें सीता का अपहरण सिर्फ एक बार हुआ था, समृद्धि थी परन्तु स्विस बैंक में एकाउण्ट नहीं थे। एकमात्र रावण ही मतिभ्रष्ट था। स्वर्ण की दीवारें थी, परन्तु आतंकवाद नहीं था, रावण जन्मभूमि विवाद भी नहीं था और जो सबसे बड़ी बात थी कि वहाँ पर एक विभीषण भी था, जो दुर्नीति का प्रबल विरोधी था परन्तु आज की परिस्थितियाँ तो रावण राज्य से भी बदतर है। इससे यह तो निश्चित रूप से सिद्ध होता है कि हर्षदेव माधव ने छन्द और परिपाटी को छोड़कर नवीनमूल्यों की स्थापना करने का साहस किया है। उनके प्रतिमान, उपमान और प्रतीक जीवन के इतने निकट है कि कल्पना की उड़ान चाहे कितनी भी ऊँची क्यों न हो, व्यक्ति उसमें डूबकर ही पार हो पाता है। एक ही विषय के अलग–अलग बिम्ब प्रस्तुत कर देना ही उनकी मौलिक उद्भावना है। जहाँ स्नानगृह का ठंडा एवं गर्म जल ज्ञानी को सुख–दुःख की अनुभूति कराता

है, वहीं दूसरी ओर वह स्नानगृह दुखियारी नववधू के लिए उसका मायका बन जाता है– **स्नानगृहं गत्वा / गृहक्लेशश्रान्ता वधूः / निःशब्दं रोदिति / तदा / स्नानगृहं / तस्याः पितृगृहं भवति।**[21]

सम्भवतः प्रशंसा का उत्तरीय डॉ. माधव इसलिए ही ओढ़ पाए, क्योंकि उन्होंने प्रायः उन विषयों को उठाया जो सभी के लिए अति सामान्य है। सामान्य को विशिष्टता के द्वार पर पहुँचाकर उन्होंने अपनी मौलिकता सिद्ध की है। डॉ. केशवचन्द्र दास ने आधुनिक संस्कृत–साहित्य में 'बिम्बवाद' के स्थापक के रूप में कवि को सराहा है।

मोनो–इमेज काव्यों का प्रारम्भ आधुनिक संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम हर्षदेव माधव द्वारा हुआ। उन्होंने इस काव्य–स्वरूप को संस्कृत में स्थापित किया, बल्कि 'कालोऽस्मि' के द्वारा चित्रकला और चार भाषाएँ एक साथ पंच परिमाण में कार्य करके संस्कृत की आधुनिकता सिद्ध कर दिखाई है। कवि की यह विशेषता देखकर डॉ. रामकरण शर्मा ने सोलह 'Multilingual poets' में हर्षदेव माधव को स्थान दिया है। संस्कृत–कल्पनों के साथ पुराकल्पन संस्कृत–काव्य ग्रन्थ और शास्त्रों के संदर्भ भी चिन्तन में काम आये कवि ने चित्त की संकुल स्थितियों को भी अतिवास्तववादी और अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से देखा है। **'काल के इर्द–गिर्द घूमती हुई कवि की सर्जनात्मक चेतना एक नये भाव–विश्व का सृजन करती हुई रचनाशीलता की नई संभावनाओं की ओर निर्देश करती है। काल विषयक छोटे–छोटे मुक्तकों में भाव की गहनता और अर्थ की सघनता का संतुलन बराबर बना रहता है।'** इसीलिए डॉ. हरिदत्त शर्मा ने 'Only Madhav is on the track of time' कहकर पुरस्कृत किया है। डॉ. जगन्नाथ पाठक को तो 'कालोऽस्मि' में संस्कृत–काव्यों की अभिव्यंजना और चित्रांकन के पीछे निहित उनकी अर्थवत्ता का अनुभव कर अलग ही चमत्कार का अनुभव हुआ। डॉ. पाठक कवि का अभिनन्दन करते हुये कहते हैं– **"आपने 'काल' को जिन–जिन रूपों में महसूस किया है, उनमें एक अलग ही अभिव्यक्ति की ताजगी का अनुभव हुआ है। आप संस्कृत को एक नया आयाम दे रहे हैं। विश्वास है कि यह रंग लायेगा।"**

संस्कृत भाषा को विश्वफलक पर पुनः प्रस्थापित करने का जो भगीरथ कार्य चल रहा है, उसमें 'कालोऽस्मि' जैसे अर्थवत्ता युक्त काव्य का योगदान निःसंदिग्ध स्मरणीय रहेगा। प्रस्तुत संदर्भ में डॉ. इच्छाराम द्विवेदी समर्थन करते हैं–

"संस्कृत–कविता को विश्व कविता के समकक्ष ले जाने का जो प्रकल्प पण्डित राधावल्लभ, राजेन्द्र मिश्र, केशवचन्द्र दास या 'प्रणव' द्विवेदी रच रहे हैं, उसके भगीरथ आप होंगे, यह निःसंदिग्ध है।" ऐसे अक्षुण्ण मार्ग पर चलने वाले कवि को राधावल्लभ जी ने 'कवि कु×जरता' प्रमाणित करने वाला कहा है।

डॉ. हर्षदेव माधव ने अपनी काव्य प्रतिभा से भारत वर्ष की ही नहीं अपितु विश्व की मूलभूत समस्याओं पर कलम चलाकर जो नये–नये लघुकाव्यों की रचना की है वह सचमुच में यथार्थता का अनुभव कराती है। इन्होंने अपनी कविता में संस्कृत काव्य परंम्परा से हटकर नूतन विषयों पर रचनाएँ कर एक नई दिशा का सूत्रपात किया है, जिससे सम्पूर्ण जगत् में एक नई क्रांति आई है और नये ढंग की रचनाएँ होने लगी हैं। इनकी रचनाओं को पढ़कर लोग अपने अध्ययन की दिशा ही बदल देते हैं। इस प्रकार की नूतन काव्यधारा को प्रवाहित कर इन्होंने 20वीं शताब्दी में महाकवि होने का गौरव प्राप्त किया है। इनके संस्कृत भाषा में 20 काव्यसंग्रह हिन्दी भाषा में 3 तथा गुजराती भाषा में 4 काव्य संग्रह प्रकाशित है। इसके साथ ही अंग्रेजी में एक तथा अन्य भाषाओं में अनेक विषयों से सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है, जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है।

काव्य–संग्रह

1. रथ्यासु जम्बू वर्णानां शिराणाम्

डॉ. हर्षदेव माधव का यह प्रथम संस्कृत काव्य संग्रह है इसमें कुल 47 कविताएँ है। यहाँ अनेक भावों से युक्त कविताओं का गुम्फन है। वैदेशिक भावों के गुम्फन के साथ–साथ भारत के कुछ स्थान विशेष का भी अनुभव प्रस्तुत किया है इसके अतिरिक्त जीवनधारा के कूल–उपकूलों का, ईश्वर, मृत्यु, तमसा–ब्रण–सुख आदि के स्वरूप प्रकारों को प्रतीकात्मक रीति से चित्रित किया है। हर्षदेव माधव ने काव्यनायक की (वस्तुतः एंटी हीरो की) नैराश्यमय करुण नियति का भाव इस तरह ध्वनित किया हैः–

उष्ट्रस्य जीवनरेखा रणम्।
उष्ट्रस्य लग्नस्थाने सूर्यातपः।
उष्ट्रस्य अष्टमे स्थाने मृगतृष्णा।
उष्ट्रस्य षष्ठीलेखे विधात्रा लिखिताः
खर्जुरबर्बुर थुवराः। (पृ.–35–36)

उपर्युक्त भावमुद्रा को हम परंपरागत स्थायी भाव एवं व्यभिचारी भावों से समझाने में सफल नहीं हो सके।

हर्षदेव के काव्य में निरुपित अमानवीकरण, यांत्रिकीकरण एवं अस्मितालोप इस उदाहरण में देखे जा सकते हैं–

संकेतरहितं पत्रं भूत्वा
अहं निवसामि तव नगरे अलकनन्दे।
शाकिनीवत् प्रस्खलन्ति बसयानानि।
कीटशलभतुल्या नागरकाः।
शूकरदन्तसमः ट्यूबलाईट प्रकाशः।
गृध्रपक्षवत्....विस्तीर्णो मार्गः।
ऋक्षरोमराजिसमो मिलधूमः।
उलूकवर्णं तामिस्रम्। (पृ.सं.–2)

डॉ. गौतम पटेल ने इस काव्य संग्रह की प्रस्तावना लिखी है। स्वरूप की दृष्टि से देखें तो 47 काव्य रचनाएँ अछांदस, गजल, गीत एवं कल्पना काव्य है। इस काव्य संग्रह की 37 से 44 रचनाओं को 'निष्क्रान्ताः सर्वे' में स्थान दिया गया है।

संकेत रहित नगरे, ईश्वरः, मृत्यु, टेम्स नदी, महाबलिपुरम्, समुद्र, अंधकार, स्वराभरणम्, तथापि, वर्षाः वृक्षाः, उष्ट्रः द्वीप जैसे अनेक विषयों पर कवि ने काव्य लिखे हैं।

"This collection is marked with a complete breakway from traditionality and breathes fresh air...the allusive style has brought a universal context into the Sanskrit Poetry. The details of global cultures find an unabtrasive and smooth incorporation into Sanskrit diction which attains a new flexibility and a new meaningful transparency. The moden sensibility revealed in the spirit and execution of poems of Rathyasa thus becomes a unique feature of contemporary Sanskrit poetry."[22]

डॉ. माधव की वर्णनशैली अत्यन्त हृदयग्राही है उपर्युक्त काव्यसंग्रह की निम्न पंक्तियाँ विचारणीय है–

आकाश रंगपीठे सर्पिणी।
        विद्युन्नूनुरधारिणी रात्री
खर्जुरच्छायांगुष्ठं मुखे निवेश्य।
        स्वपिति द्वीपः/जलपर्याकिक्वयाम् पर्यकिकायाम्
तर्त्तुमिच्छतां मनुष्याणां वासना
        धनीभूत्वा भवति द्वीपः।। (पृ.सं.–25)

2. अलकनन्दा

इस काव्य संग्रह में 30 कविता है। यह काव्य संग्रह दो भागों में प्रकाशित है जिसके प्रथम भाग में छन्दरहित कविताएँ तथा दूसरे भाग में 15 मोनो इमेज सम्बन्धी कविताएँ संग्रहीत है। यह काव्य संग्रह संस्कृत और गुजराती दोनों भाषाओं में प्रकाशित है। इसमें मुख्यतया अलकनन्दा सम्बोधन के द्वारा काव्यनायिका का रूप प्रकट होता है। अलकनन्दा अज्ञात रहस्यमयी प्रणयिनी है। अपने आप में अलकनन्दा को स्थापित करके कवि आत्मस्थिति का वर्णन करते हैं–

मौन समुद्रं परितः।
        द्वीपद्वयसमां स्थितिनौ (पृ.सं.–24)

यहाँ विच्छिन्नता का बोध अत्यधिक है आशा का बन्धन भग्नप्राय है। संगम स्वप्न का सारांश ही है। अतः कवि खिन्न है–

मया ह्यः स्वप्ने दृष्टं यत्
मया वनवासः प्राप्तः
अलकनन्दे..............!अपि त्वया
दक्षिणाक्षिस्फुरणमनुभूतम् (पृ.सं.–30)

माधव कवि मानव प्रवृत्ति के संघर्ष को मार्मिक रीति से उपस्थापित करते हैं–

रणस्य पल्लवेष्टनोपरि
उष्ट्रस्य चिटिका
मृगतृष्णा संकेतः (पृ.सं.–34)

इस प्रकार इस काव्य संग्रह में कल्पना–विविधता का सुन्दर सन्निवेश है। भाषा प्रत्यक्ष सरल है शैली बिम्ब पीड़िता है। वर्णन कर्कश–मधुर है रसास्वादन में कहीं बाधा नहीं है। ध्वंस को स्वीकार कर लेने के बाद ही उसकी खोज आरंभ होती है, जो सार्थक है और अभी शेष है। हर्षदेव ने इस शेष सार्थक बचे को 'अलकनन्दा' कहा है। अलकनंदा अज्ञात प्रणयिनी है, कालिदास की स्वप्ननगरी अलका की तरह व दुर्लभ भी है। अलकनन्दा के लिये आकुल भावोच्छ्वास और चिर प्रतीक्षा का भाव माधव के काव्य में लौटकर आता है। निश्चय ही यह भाव पारंपरिक विरह व्यथा और विप्रलंभ से बहुत अलग है। केशवचन्द्र दास की 'ईशा' का यहाँ स्वभावतः स्मरण हो आता है। केशवचंद्र अपने ही भीतर निगूढ़ परम तत्त्व को ईशा के संबोधन से परिभाषित करते हैं, वे कभी उसे प्रणयिनी की तरह संबोधित करते हैं, तो कभी उसकी छाया विभिन्न पदार्थों में देखते हैं, आधिभौतिक तथा आदिदैविक स्तरों की अपेक्षा केशवचन्द्र के काव्य में आध्यात्मिक ही अधिक प्रधान है और तदनुभूत उनका बिम्बविधान और अप्रस्तुतविधान भी रहस्यानुभूति संवलित होने से अपेक्षाकृत अधिक गूढ़ और जटिल है, जबकि हर्षदेव आधिभौतिक और आध्यात्मिक स्तरों से सहकृत आधिदैविक की प्रधानता है और उनका बिम्बविधान हमारे आज के जीवन और मानसिक प्रक्रियाओं के अपेक्षाकृत निकटतर भी है। 'प्रतीक्षा नौकया सह' शीर्षक कविता अलकनंदा की पुनरावृत्ति है। अलकनंदा की पुनरावृत्ति यह भी इंगित करती है कि अलकनंदा हर्षदेव के काव्य का एक स्थायीभाव है। इसके लिये कवि की प्रतीक्षा अडिग है–

हे अलकनन्दे
अहं तव लोचनतटे
प्रतीक्षानौकया सह
स्थितोऽस्मि
कदा तत्र वेला आगमिष्यति?
मया अभिलाषमया वस्त्रपटा विस्तृताः कृताः
दृष्टिमयी दिशा सूचकयन्त्रसूचिः
त्वां प्रति स्थिरास्ति।
श्वासोच्छ्वासमयौ नोदण्डौ
नयतः
मां त्वद्हृदयप्रवालद्वीपं प्रति। (पृ.सं.–116)

आध्यात्मिक चिन्तन में तपने पर भी माधव का हृदय द्वार अपनी प्रेयसी को आश्वासन देने के लिए खुला हुआ है। प्रेम की शाश्वत संवेदना अलकनंदा को भेजे गये इस पत्र में कही गई है।

हे अलकनन्दे/प्रत्युत्तरेमया/संदेशविरहिते मदनलेखे/अर्धदग्ध–पतंगस्य पक्ष एकः प्रेषितः/अपि वाचयिष्यसि मे मौनस्य व्यथाम्।[23]

यह मौन व्यथा बिना कहे शलभ के एक पंख से विरह का महाकाव्य लिख जाती है। कवि 'संकेतरहितं पत्रं भूत्वा अहं निवसामि तव नगरे–अलकनन्दे कहकर मानो प्रत्युत्तर की भी अभिलाषा नहीं रखता। उस पतंगे का आधा जला हुआ यह पंख इस बात का प्रतीक है कि प्रिया का विरह उसे तिल–तिल जलने को बाध्य कर रहा है।

अलकनन्दा के प्रति उनके समर्पण में न तो बाणभट्ट की कादम्बरी के समान तीन जन्मों की प्रतीक्षा है और न ही कालिदास की शकुन्तला की भाँति गान्धर्व विवाह की शीघ्रता। यह तो प्रणय की नई परिभाषा गढ़ना चाहते हैं, जिसमें कल्पना की इन्द्रधनुषी उड़ान है। उनकी प्रिया की आँखे कमल की पंखुरी जैसी नहीं, अपितु उपमानों के सागर से लाई गई सीप जैसी है।

जब आँखें सीप की होंगी तब ही तो उसमें उतर कर प्रेम का मोती ढूँढ पायेगा प्रणयी–

अहं त्वन्नेत्रयोरवतरामि/स्वप्न–शुक्तिसंपुटेषु कुत्रचिन् निहितं/प्रेम–मौक्तिकमन्वेष्टुम्।[24]

3. शब्दानां निर्मक्षिकेषु ध्वंसावशेषेषु

डॉ. हर्षदेव माधव का यहाँ तृतीय काव्य संग्रह है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इस काव्यसंग्रह की टी.एस. एलियट के 'वेस्टलेन्ड' से तुलना की है।

"अन्धास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णः परैर्भवेत्।
परेषां तु यदाकान्तः पन्थास्ते कविकुज्जराः।।"
"काललूता–खादिता रमणीयतायापंक्तयः" – पृ.–27

इस वचन के द्वारा कवि काव्यसंग्रह का प्रारूप प्रस्तुत करते हैं।

अत्र इतिहासः स्वयमेव ध्वंसावशेष– (पृ.सं.–45)

इस सारांशवचन से कवि मानव की विस्मरण नीति का चित्रण उपहृत करते हैं। उपक्रम में प्रमुखता को स्पष्ट करते हुये वह कहते हैं–

> **"शब्दानां निर्मक्षिकेषु ध्वंसावशेषेषु**
> **स्थितोऽस्मि/मम भाषायाः शवमुत्खातुम्।।"** (पृ.सं.–1)

इस काव्य संग्रह में वर्णन चातुरी अपूर्व है और कल्पना मनोरम है–

> **"अस्तं गच्छन् सूर्यः**
> **खण्डितशिल्पकन्या स्तनयोः**
> **स्वकरं निक्षिपति।"** (पृ.सं.–30)

डॉ. माधव ध्वंसावशेष को प्रतीक रूप से ग्रहण करके संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन को चाहते हैं।

4. मृगया

पिछले दो दशकों से संस्कृत एवं गुजराती काव्यरचना में सक्रिय कवि हर्षदेव माधव की सृजन यात्रा का चतुर्थ पुष्प है– 'मृगया'। मृगया में कुल बीस अछान्दस काव्य है। सभी काव्य कवि की गहन चिंतन शक्ति को प्रस्तुत करते हैं। 'मृगया' के प्रतीक को लेकर मानव–जीवन की विषमताओं का आलेखन इसमें किया गया है।

संग्रह की पहली कविता है 'मृगत्वं'। मृगत्व मनुष्य की लघुता का प्रतीक है। लघु से मुक्ति के लिए 'मृगत्व' से मुक्ति ही मानों एकमात्र विकल्प है अब। कवि के शब्दों में–

> **"किन्तु**
> **भयात् मृतोऽस्मि।**
> **अधुनाहं न जीवितम् जीवामि,**
> **किंतु भयम् जीवामि।**
> **न वने, किन्तु क्लैष्ये श्वसिमि।**
> **न तृणम् अद्मि, अपि तु मम दैन्यमद्मि।**
> **कोऽपि मम मृगत्वाय मृत्युं ददातु।।"** (पृ.सं.–18)

'मृगया' शीर्षक रचना में कवि ने हिंसा, आतंकवाद, पर्यावरण जैसी वैश्विक समस्याओं को 'मृगया' का ही नवसंस्करण बतलाते हुए उसे मानवता के लिए घातक

बतलाया है। प्रदूषणयुक्त पवन, जाल में बद्ध वन की हरियाली, रसायन के विष–पाश से मलिन नदी का जल, एटमबम्ब से आतंकित सांसे, आतंकवाद से आतंकित आँखे आदि सब कुछ कवि की चेतना को स्पंदित करता है और यह सब कुछ मृगया के बदले हुए चेहरे का प्रतिरूप सा मालूम पड़ता है। अंतर केवल इतना है कि–

"व्याधानाम् नामानि परिवर्तनं प्राप्नुवन्ति।
मृगयाऽपि नवसंस्करणमधिगच्छति।
किन्तु–
मृगस्य मृत्युर्मृगयायाः फलमस्ति।।" (पृ.सं.–20)

व्यंग्य वर्तमान कविता की बहुत बड़ी ताकत है तथा उसकी पहचान भी। व्यवस्था की विसंगतियों पर व्यंग्य करने के लिए रामकथा संबंधी मिथकों का बड़ा सार्थक प्रयोग कवि ने किया है। 'नगरे' नामक कविता में नगर–जीवन की नृशंसता का नग्न चित्रण है। रामायण काल में राक्षस मात्र वन में रहते थे, वनों के क्रमिक विनाश के कारण वे नगरों में बसने लगे। पर्यावरण की विनाश–लीला और नगर की दनुज–संस्कृति–दोनों तथ्यों को इस लघु रचना में एक साथ ध्वनित कर कवि ने अपने रचना कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

"रामायण काले
राक्षसा वने निवसन्ति स्म।
शनैः शनैः
वनानि छिन्नानि।
अतः वराका राक्षसाः........." (पृ.सं.–22)

नगर–जीवन की विभीषिका का यथार्थ चित्र 'हस्तां' कविता में अंकित है। महानगर मुंबई के जीवन की झलक कवि ने प्रस्तुत की है। रेल के गंदे डिब्बों में पेट की भूख मिटाने के लिए भटकते हाथ, रूपजीवियों के स्तनों को मसलते हाथ, शराब की बोंतले खोलते श्रमजीवियों के थके हुए हाथ, भिक्षा के लिए फैले हुए हाथ, यात्रियों की जेब काटते हाथ और यंत्रयुग से प्रभावित यंत्रवत् हाथ कवि को मृतप्राय से मालूम पड़ते हैं। निम्न पंक्तियों में इस भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति है–

"यन्त्रगतिं प्राप्ताः हस्ताः।
एतेषु हस्तेषु
जीवनरेखा न सन्ति,
केवलाः सन्ति मृत्युरेखाः।" (पृ.सं.–38)

परम्पराबद्ध संस्कृत कविता को आधुनिक वैश्विकसंदर्भों से जोड़ने का कवि का काव्य–पुरुषार्थ सचमुच सार्थक है। वस्तुतगत नवीनता एवं शिल्पगत प्रयोगशीलता इन कविताओं की अपनी शक्ति है। तभी तो ये कविताएँ कवि के शब्दों में **"वृक्ष की तरह पनपी हैं, वर्षा की तरह फैली हैं, बम की तरह फूटी हैं और देश के कोने–कोने तक पहुँची हैं।"**

'मृगया' के लिए कवि को 'भारतीय भाषा परिषद्' कलकत्ता द्वारा 1997 में 'कल्पवल्ली' पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

5. बृहन्नला

इस काव्य में 'बृहन्नला' के रूप में अर्जुन का सात सर्गों में निरुपण किया गया है। कवि ने बृहन्नला को 'महाकाव्य खंड' कहा है।

बृहन्नलाऽऽख्यमिदं प्रत्यग्रतमं खण्डकाव्यं हर्षदेवमाधवस्य सम्प्रति प्रकाश्यते,इतिवृत्तं सर्वथा प्रख्यातं प्राक्तन×च। सव्यसाच्यर्जुनोऽवाप्नोति दारुणतमं शापं तत्कृते कामयमानयोर्वश्या यदसौ क्लीबत्वमेष्यति हायनं यावत्। अर्जुनस्यापराध आसीदयमेव यदसौ देवांगनामुर्वशीं पुरा पुरुखसोऽर्धागिंनी भूतां चन्द्रवंश जननीं मन्यमानो भोगार्थ नांगीकृतवान् खलीचकार तस्यां प्रणयानुरोधम्। क्व न पुरन्दरसभावतंसभूताया रूपलावण्यपूरप्रवाह भूताया उर्वश्यामदयितृ प्रोन्माथि व्यक्तित्वं क्व च दम्भोलि कठिनस्संयमोऽर्जुनस्य? अहो विलक्षणामुभयमपि।

परन्तु शापोऽयमेव अज्ञातवनवासावधौ फलीभूतः किरिटिनः कृते। मत्स्या–धिपतेर्विराटस्य गृहे बृहन्नला–रूपेण भर्तृदारिकामुत्तरां नृत्यविद्यां शिक्षयन्नर्जुनो निर्विशङ्कं कालमतिवाहया×चकार। इयमस्ति पूर्वपीठिका हर्षदेव कवितायाः। यथा प्रासाद निर्मितेः प्राक् भूमिका निर्माणआवश्यकं तथैव काव्यसौधोऽपि निर्मीयते कविना पुरावृत्तमवलम्ब्य। क्रान्तप्रतिभोऽयं कविः खण्डकाव्येऽस्मिन्नाद्यन्तं प्रस्तौति मर्मस्पर्शि वाचिकं बृहन्नलाव्यक्तित्वस्य मध्यम पाण्डवस्य। बृहन्नलाभूयार्जुनः किमिव चिन्तयति, किमिवानुभवति, कथं पश्चात्तपत्ति, कथं संकल्पते, कथं वात्मानमात्मनाऽवलम्बत इत्येतत्सर्वं सुष्ठु समभिव्यक्तं 'कविना परकाया प्रवेश कला चतुरेण।'

6. **लावारसदिग्धाः स्वप्नमयाः पर्वताः**

इस काव्य संग्रह में हाइकु, तान्का, सिज़ो नाम के तीन काव्य प्रकारों का संग्रह है। ये काव्य संग्रह तीन भागों में विभक्त है–

1. हाइकु काव्य – 204 हाइकु है
2. तान्का काव्य – 83 तान्का है
3. सिज़ो काव्य – 50 सिज़ो काव्य है।

डॉ. हर्षदेव माधव ने संस्कृत साहित्य में काव्य को इन तीन रूपों में स्थापित किया है। स्वच्छ छवि, नवीन चिह्नों प्रखर संवाद तथा विषय की विभिन्नता ने प्रत्येक पाठक को आकर्षित किया है।

शुकरूपेण	The soul of tree	
वृक्षात्मा पलायते	Flies away	
तक्षकं दृष्ट्वा।।	becoming parrat	
	having looked	
	The wood cutter	पृ.–10
	xxx	
निशीथे सिंह	Lion's roar	
नादः सुप्ता जागर्ति	in midnight	
राष्ट्रचेतना	awakes from sleep	
	nation's consciousness	पृ.–27

डॉ. इच्छाराम द्विवेदी भी डॉ. माधव के इस प्रयास को संस्कृत साहित्य में स्वीकार करते हैं तथा एक हाइकु लिखते हैं–

हर्षदेवो हि
माधवः खलु।
कोऽन्य
स्तं विना लोके।।

ये नये युग की जीवनदायिनी पंक्तियाँ है जो भारतीय आत्मा को प्रभावित करती है।

7. निष्क्रान्ताः सर्वे

डॉ. हर्षदेव माधव के अब तक के संकलनों में यह आकार में सबसे बड़ा तथा एक उत्तम सोपान है इसमें सविस्तृत कृतियाँ हैं तथा उनके काव्य का बहुत विस्तीर्ण परिदृश्य भी यह खोलता हैं।

निष्क्रान्ताः सर्वे–यह संस्कृत नाटकों में प्रचलित रंगनिर्देश है। प्रायः नाटक के प्रत्येक अंक के अंत में या नाटक की समाप्ति पर भी पात्रों के निर्गमन के लिये एक रंगसंकेत आता है। आधुनिक नाटकों में, जहाँ पर्दे या ड्राप कर्टेन का प्रयोग होता है इसकी जगह पटाक्षेप लिखा जाता है।

अस्वीकार इस कविता का एक मुख्य स्वर है। अस्वीकार के लिये साहस चाहिए। हर्षदेव हमारे समय के सबसे अधिक साहसी संस्कृतकवियों में अन्यतम कहे जा सकते हैं। वे पूर्व प्रचलित अवधारणाओं, मान्यताओं, परम्पराओं को अपनी कविता के रंगमंच से बाहर निकाल करके फिर रचना का आरंभ करते हैं पर जिस प्रकार अंक के अंत में पात्र प्रस्थान करके पर्दे के पीछे या नेपथ्यगृह में मौजूद रहते हैं, उसी प्रकार हर्षदेव की कविता के नेपथ्यगृह में ये सारी परम्पराएँ, मान्यताएँ व अवधारणाएँ उपस्थित है। वे नवसृष्टि के लिये यथावसर इनका आवाहन करते हैं। ध्वंसावशेष पर नवनिर्मिति का भाव हर्षदेव के रचना–संसार में नाना रूपों में व्यक्त हुआ है।

निष्क्रान्ताः सर्वे इस काव्य संग्रह में 12 विभाग हैं जो इस प्रकार है–

1. पुराकल्प काव्यानि
2. आधुनिक मुद्रणकला सहितानि काव्यानि
3. प्रतीक काव्यानि
4. आधुनिक संस्कृत काव्यानि
5. प्रणय काव्यानि
6. लघुबिम्ब काव्यानि
7. गीति संग्रह
8. नवोद्वाहप्रणयमाधुरी काव्यानि
9. गज़ल–संग्रह
10. दार्शनिक काव्यानि
11. बृहन्नला
12. भरतवाक्यम्

यह डॉ. हर्षदेव माधव की समग्र कविताओं के संकलन के उपक्रम की पहली कड़ी है। हर्षदेव द्वारा कल्पित या विभावित अनेक नई विधाएँ, ग़ज़लें और एक बिम्बात्मक कविताएँ इस संग्रह की विशेषता है।

डॉ. माधव ने अपने काव्यसंग्रह को शीर्षक दिया है– 'निष्क्रान्ताः सर्वे'–सारे पात्र प्रस्थान कर चुके हैं। रंगमंच अब सूना है। माधव कदाचित् इस शीर्षक के द्वारा अपनी कविता के विषय में यह संकेत देना चाहते हैं कि उसका शुभारंभ सारी परंपरा को एक ओर हटाकर होता है।

वस्तुतः कवि की कविता अनुभवों, बिम्बों और प्रतीकों का विराट संसार उपस्थित करती है।

इस संग्रह में 19 एकबिम्बमयी कविताएँ है। एक ही वस्तु को कितने आयामों में देखा और बखाना जा सकता है यह कविकल्पना के पूरे वैभव के साथ हम अनुभव करते हैं। 'पिपीलिका' शीर्षक कविता में चींटी के दंश से पहाड़ के काँप उठने की कल्पना–

"पिपीलिकादंशेन
पर्वतः समूलोऽकम्पत।" (पृ.सं.–136)

शब्दानां निर्मक्षिकेषु ध्वंसावशेषेषु की भावभूमि पर 'निष्क्रान्ताः सर्वे' इस संग्रह में 'दुर्गदर्शनम्' शीर्षक कविता है–

दुर्गस्य प्राचीनजीर्णशीर्णभित्तिषु/जर्जरातीतः पतनशीलः स्थितोऽस्ति/

खण्डितसोपानपङ्क्तिषु/अधुना दिवसस्य विविक्ते/सूर्यस्य सप्ताश्वानां ह्रेषारवः श्रूयते।/शिल्पोत्कीर्णा हस्तिनः/विजयमयं अहिफेनं पीत्वा/उत्स्वप्नायन्ते। (पृ.सं.–55)

दुर्ग की प्राचीन टूटी–फूटी भित्ति पर/ठहरा हुआ है पतनशील एक जर्जर अतीत/ सीढ़ियों की खंडित कतार पर/सूने दिन के समय अब/सुन सकते हैं आप/सूरज के सात घोड़ों की हिनहिनाहट/पत्थर पर उकेरे हाथी विजय की अफ़ीम पीकर/देखते हैं स्वप्न।

सारी कविता की व्याख्या अंतिम पंक्तियों में मिलती हैं, जहाँ

दुर्गन्धयुक्तोऽन्धकारः/प्रकाशरेखायाः हत्यां करोति/सङ्ग्रामरक्तपातातङ्–कदर्शनभयमग्ना/शतघ्नी/लघुवातायनात् दुर्गपरिखां पतितुमिच्छति। (पृ.सं.–56)

सब कुछ ध्वस्त हो चुकने का भाव इसी संग्रह की अयोध्या शीर्षक कविता में भी पुनः व्यक्त हुआ है। **अधुना/अयोध्यायां मनुष्या न वसन्ति/वसन्त्यत्र विषादखण्डाः/महालयेषु अश्रुदीपाः प्रज्ज्वलन्ति/भित्तिषु व्यथाः श्वसन्ति।/अपि च/कौ×चमिथुनचीत्कारः/सरयूजलायते/हृदयंसुमन्त्ररिक्तरयायते/मनोऽहल्थायते/महालयपर्यङ्के/घनीभूतः शोकः छिन्नवृक्षायते।/अधुना रामः प्रतिनिवर्वेत चेत्/तदापि प्रत्यभिज्ञानरहितोरामः/स्मृतेर्ध्वंसावशेषतां गतां विषादजडां/अयोध्यां कथं समाश्वासयेत्?/कथम्? कथम्?** (पृ.सं.–70)

आधुनिक जीवन के खोखलेपन की समझ ने हर्षदेव की कविता में एक झकझोरने वाली प्रश्नाकुलता का आधान किया है। आज के जीवन में प्रणय का पर्याय क्या रह गया है, क्या केवल क्रंदन? यह सवाल प्रणयस्य पर्यायः शीर्षक कविता में उठाया गया है–**फ्लेटटेनामेंट–कक्षेषु/केक्टसप्रजाः वृद्धिं गच्छन्ति/कॉफिपात्रेण सह ओष्ठों स्पृशतः/विविक्तवाष्पम्/सिगरेटधूमेन सह/बहिर्गच्छत्यौदासीन्यं वलयितम्।** (पृ.सं.–117)

सबको निष्क्रांत करके या बाहर निकाल कर हर्षदेव माधव कविता के नये द्वार खोलते हैं। यह संग्रह संस्कृत–काव्य–रचना में उनके नये सोपानों के आरोहण का प्रत्यायक भी है। विशेष रूप से प्राचीन कवियों की कोई पंक्ति उठाकर उसे सर्वथा भिन्न संदर्भ में परखने का नया उपक्रम यहाँ हुआ है। हर्षदेव ने ऐसी कविताओं को पुराकल्पनकाव्य (Mythical poems) कहा है। वस्तुतः ये मिथिकल कविताएँ न होकर राजशेखर की शब्दावली में **'अन्यच्छाया–योनि–काव्य'** है पर अन्यछायायोनिकाव्य को बहुत ही अछूते आयाम और सर्वथा नई अर्थच्छायाओं से हर्षदेव ने आलोकित किया है।

गर्दभः कविता में चंद्रमा को देखकर गधे का सोचना कि यदि चाँद आकाश से उतरकर आ जाये, तो वह मेरे सलोने शिशु जैसा लगेगा (पृ.138), यष्टिः, तृणम्, खनिः, म×जूषा वीणा, रुग्णालयः, उष्ट्रः आदि कविताओं में से हर एक अणु में अनंत को समेटती है–

उष्ट्रस्य पादेषु/सिकतामयं नूपुरं/तस्य कण्ठे मृगतृष्णामयी किङकिणीमाला/भवनानि धूलिस्तम्भरचितानि/अस्य कृते/बर्बुरथुवरकण्टकमयं मिष्टान्नमस्ति/उष्ट्रेण

लब्धः सुखमित्याख्यः प्रदेशः।/सिकताः इत्यभिधायां शतर×जक्रीडायां/उष्ट्रस्तु/ क्रीडनीयकमात्रमस्ति। (पृ.सं.–163–164)

हर्षदेव के काव्य में इस बिंब विधानवैशिष्ट्य को देखकर उन्हें रूपवादी कवि कह देना भी संगत न होगा। वे एक समाज चेता कवि भी हैं। यह अवश्य सत्य है कि समाज को वे उस भाषा में व्यक्त नहीं करते, जिस भाषा में हम उसे अनुभव करने के आदी है।

इस संग्रह में किसान पर एक कविता है। 'कृषीबलः' शीर्षक यह कविता किसान या मजदूरों पर लिखी जाने वाली कविताओं से कुछ भिन्न लग सकती है। किसान होने का नया अर्थ माधव इस कविता में खोजते हैं, या यह कह सकते हैं कि किसान होने के कई अर्थों का वे संधान करते हैं। इस संधान में वेदान्त की पदावली में प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता और पारमार्थिक सत्ताएँ भी उन्मीलित होती हैं तथा चेतना के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तर भी उभरतें हैं।

कृषीबलः/स्वभाग्यं बपति/किन्तु दुर्भाग्यं प्ररोहति।/x x x x x/ कृषीबलः पुरुषार्थं हलेन यु×जयते/प्रारब्धं बीजेन सह वपति/हृदयं जलेन सि×चति/ दुःखानि कुतृणैः सह कृन्तति/शस्त्रेण सह स्वप्नान् प्ररोहति/तस्य नतकन्धरयोरस्ति देशस्य श्वस्तनसूर्योदयः/यदा/ कृषीबलः प×चत्वं गमिष्यति/तदा/भविष्यति सः/ जलदभारनतं व्योम/ सूर्यस्य मसृणातपः तिलपुष्पसुरभिहरः पवनः/इक्षुदण्डानां रसः/अपि च/प्रथमवर्षास्पर्शपुलकिता/ क्षेत्रमृत्तिका (पृ.131–32)।

एकबिम्बात्मक काव्य के द्वारा हर्षदेव वस्तुओं के असाधारण स्वरूप को उन्मीलित करने के लिये नयी भाषा का आविष्कार करते हैं। प्रेम को परिभाषित करना आसान नहीं है। हर्षदेव अपनी 'प्रणव' शीर्षक कविता में प्रणय को परिभाषित करते हैं–

प्रणयः/कम्बलसदृशोऽस्ति/दुःखशैत्ये जीवनं रक्षितुम्।/ प्रणयः/ वासयष्टिसदृशोऽस्ति/हृत्पारावतकस्य क्लममपनेतुम्।/प्रणयः वातायनसदृशोऽस्ति/ आकाशस्य वृष्टिं मनसि ह्यनुभवितुं/गगनस्य विशालत्वं प्राप्तुं च।/प्रणयः वीणागुणसदृशोऽस्ति/जीवनविविक्तं सोल्लासं पूरयितुम्।–प्रणयः–पृ.–126

हर्षदेव नवीन शब्द बराबर गढ़ते रहे हैं। निश्चित रूप से हर्षदेव की कविता की भाषा रचनात्मकता की जटिल चुनौतियों से जूझते एक समकालीन संस्कृत कवि की भाषा है। हर्षदेव ने अपने काव्य में अनेकत्र प्राचीन संस्कृत–काव्य से आये हुए पदों का प्रयोग न करके नये पदों, मुहावरों और अभिव्यक्तियों का संधान किया है।

8. आसीच्च मे मनसि

यह डॉ. हर्षदेव माधव का सप्तम संस्कृत काव्य संग्रह है। यह संस्कृत भाषा का सर्वप्रथम मोनो इमेज काव्य (Mono Image Poems) है। मोनो इमेज का आशय यह है कि–किसी एक बिम्ब को लेकर उसे भिन्न–भिन्न काव्य रूपों में ढालना। उदाहरण के रूप में अछांदस, गीत, ग़ज़ल तथा उसी तरह अछांदस के काव्य खंडों को भाव सातत्य के अनुसार बाँटकर एक ही बिम्ब को पौराणिक बिम्ब, फेन्टसी आदि में समरूप हो जाने देना। एक ही बिम्ब का चयन करने से प्रारंभ के परंपरागत संवेदन दूर हो जाते हैं और उसके बाद विशेष प्रयत्नों द्वारा कवि सामान्य साहचर्यों को भेदकर आंतरिक संवेदना का स्पर्श करता है। इससे अनुभव के दायरे में न आये हुए भावों का अनुभव होता है।

16 पृष्ठ वाले इस काव्यसंग्रह में 16 विषय है।

1. हृदयम्	2. कीलकः
3. शरः	4. कवचम्
5. रथः	6. विद्युद्दीपः
7. स्नानगृहम्	8. शयनकक्षः
9. पुस्तकम्	10. मुखचूर्णम्
11. कुहूकारः	12. शाखा
13. चीत्कारः	14. रोगः
15. स्मृतिः	16. संन्यासी

जैसे विषयों का निरूपण किया गया है।

'आसीच्च मे मनसि' मोनोइमेज काव्यसंग्रह जब प्रकाशित हुआ तब संस्कृत के अन्य विद्वान् सर्जकों ने हर्षदेव माधव की मोनो इमेज काव्य की सर्गशक्ति की प्रशंसा की थीः– **सीधे–सादे शब्दों में कल्पना को, सत्य की भावप्रवणता को उच्च तर्क शुद्ध मोनोइमेज में ढालने का कवि का यह अनायास प्रयास सर्ग शक्ति के नवोन्मेष को**

प्रकट करता है। शब्द भाव और विचार तीनों के रसायन के पश्चात् उपमा, उत्प्रेक्षा, सजीवारोपण, रूपक वगैरह अलंकारों से आवृत ये मोनोइमेज काव्य प्रासादिक एवं सात्त्विक आनंद की सृष्टि करते हैं, तरंगे छोड़ते हैं, जिसका आस्वादन करना किसे नहीं भायेगा?

ये मोनो–इमेज कविताएँ डॉ. हर्षदेव माधव का प्रशंसात्मक योगदान है।

9. पुरा यत्र स्त्रोतः

डॉ. हर्षदेव माधव का नौवाँ संस्कृत काव्य संग्रह है। इनकी बहुत सी कृतियाँ गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी में भी हैं। यह इनकी लेखनी की उर्वरता का प्रमाण है। प्रस्तुत संग्रह में कुल 70 कविताएँ हैं। अधिकतर कविताओं में प्रेमालाप मुखरित है, जिसमें प्रणयी (कवि) बोलता है, प्रणयिनी (अलकनन्दा) मूकवत् केवल सुनती जाती है। इस कारण इसे प्रणयालाप न कहकर प्रणय–प्रलाप कहें, तो कोई हर्ज नहीं।

प्रणयी अभिधा में कुछ नहीं बोलता। व्यञ्जना और कल्पना उसके सर पर और होंठो पर सदा सवार रहती है। जिस तरह कविताओं में प्रणयी प्रकट रूप में सदा उपस्थित रहता है और प्रणयिनी छिपी ही रह जाती है, उसी तरह कवि की भाषा में उपमान ही अधिकतर सामने आते हैं, उपमेय प्रच्छन्न रह जाते है। संस्कृत के अलंकारशास्त्रों में अभिव्यक्ति की यह युक्ति अतिश्योक्ति अलंकार के नाम से विदित है।

आज–कल ऐसे उपमान को प्रतीक कहते हैं, सारी कविताएँ ऐसे प्रतीकों से भरी हैं। **"प्रतीक के तीर चलाने में कवि मानो अपर अर्जुन है। सफल प्रतीक–प्रयोग निःसन्देह इन कविताओं को असाधारण उत्कर्ष बिन्दु पर पहुँचाता है।"** प्रतीकों (उपमानों) का अम्बार तो कालिदास, भवभूति, माघ, श्रीहर्ष आदि महाकवियों ने भी खूब लगाया पर वे सभी आज पुराने पड़ गये हैं। कवि माधव ने उन प्रतीकों के स्थान पर एकदम तरोताजा प्रतीकों की सृष्टि की है। उदाहरणार्थ कवि की प्रणयिनी अलकनन्दा की आँख कमल की नहीं, शुक्ति (सीप) की है और कवि उस सीप के भीतर संजोये हुए प्रेम का मोती खोजने के लिये प्रणयिनी की आँखों में उतरना चाहता है–

"अहं त्वन्नेत्रयोरवतरामि/स्वप्न शुक्तिसंपुटेषु कुत्रचिन् निहितं/प्रेम मौक्तिकमन्वेष्टुम्।।" (पृ.सं.–27)

नये–नये प्रतीकों के चयन में कवि उपमेय–उपमान की अधिकाधिक समानता को उतना महत्त्व नहीं देता, जितना अभिव्य×जकता को, प्रभाव की तीव्रता को। उदाहरणार्थ पूर्व में मानसिक व्यथा का प्रतीक ताप–सन्ताप (HEAT) हुआ, जो क्रमशः तीव्रता की ओर बढ़ता गया–ताप–सन्ताप–ज्वाला–प्रदाह–आग–ज्वालामुखी–लावा। कवि ने इनमें सबसे अधिक और अनुरूप प्रतीक लावा को अपनाया हैः **"यो लावाद्रवो मय्यस्ति/असौ नास्ति पर्वते।" (पृ.सं.–29)**

यहाँ कवि प्रणयी ने अपने अन्तस्ताप (मानस–व्यथा) का वैषम्य पर्वत की कठोरशीलता (बेदरदी) से दिखाया है। तथा–

लावाद्रव श्वासाः श्रूयन्ते/भूकम्प स्पन्दनम् अनुभूयते/वक्षः स्थल पाषाणाद्/विशीर्यते हिमप्रवाहो विषादरूपः/मौनपातालं विदीर्यते/ओष्ठ स्फुरण शब्देन। (पृ.–31)

यहाँ श्वास लावा है तो स्पन्द भूकम्पः वक्षस्थल चट्टान है तो उससे निकला विषाद हिमप्रवाह। बोलना क्या है, मौन रूपी चट्टान का फटना। इसी तरह कवि प्रतीक रूपी मनके मूल भावरूपी धागे में पिरोते जाते हैं, भाव तीव्र से तीव्रतर होता जाता है और कविता का हार पाठक के गले में पहुँचता जाता है। आलोच्य संग्रह में यही है कवि की क्रिया–विधि, यही है मोडस ओपरेण्डाइ।

इसी क्रिया–विधि का एक रूपान्तर है अध्यारोपण, जिसे अलङ्कार शास्त्र की भाषा में रूपक कह सकते हैं। इस युक्ति का भी प्रयोग कवि ने बड़े प्रभावकारी ढंग से किया है। कहीं–कहीं एक अध्यारोपण के फलस्वरूप अध्यारोपों की शृङ्खला बन जाती है और साङ्गरूपक या पूर्ण बिम्ब का समां बंध जाता है। एक उदाहरण देखें–

अलकनन्दे/मम नेत्रयोः प्रज्वलन्ति दावाग्नयः/येषु भस्मसात् भवन्ति हस्ति स्वप्नाः/शुष्कपर्णानीव दह्यन्ते यौवनोल्लासरहिताः क्षणाः/कोटरस्थविहगचीत्कारा इव निःश्वासाः सन्ति वक्षसि x x x । स्मृतयः/नष्ट गुल्मवत् तिरोभवन्ति.......। (पृ.–41)

इस तरह वन में आग लगने का पूरा दृश्य उपस्थित हो जाता है और अन्त में प्रणयी चाहता है कि उसकी प्रणयिनी वृष्टि बनकर आवे। दिल में आग लगना तो ग़ज़ल की घिसी–पिटी चीज़ हो गया है, पर किसी भी ग़ज़ल में मुझे ऐसा साङ्ग रूपक नहीं मिला है। इस तरह के उदाहरणों से प्रकट होता है कि कवि प्रखर

नव्यतावादी होते हुए भी (और छन्द के बन्धन से मुक्त होते हुए भी) अलंकार से विमुख नहीं है बल्कि अलंकार को भी (श्री हर्ष की तरह) नये–नये ढाँचों में ढालकर उसे मस्तिष्क की उपज से अधिक हृदय की उपज बनाया है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के आज के अधिकतर कवियों की दृष्टि समकालीन लोकजीवन की विविध विडम्बनाओं और नई चहल–पहलों में लगी पाई जाती है। अतः आज की कविताओं में यथास्थिति के प्रति आक्रोश, विद्रोह, मजाक, व्यङ्ग्य–प्रहार, राजनैतिक नारेबाजी और बहुत–सारी इसी तरह की चीज़े भरी पड़ी हैं। इस मक्कार खाने में मानव के शाश्वत् मधुर संवेदन का स्वर मानो तूती की आवाज़ बनकर रह गई है। ऐसी स्थिति में आलोच्य कवि ने शाश्वत् शृंगार का अमृतोपम स्वर भरकर अपनी रचना को एक आपवादिक स्तर पर स्थापित किया है। फिर भी वे युग की ज्वाला से परे नहीं है। 'सुधा–गरल वाली इस धरती' को वे दोनों आँखों से पूरा–पूरा देखते हैं। वे अपनी प्रतिक्रिया कुण्ठा, सन्त्रास, आक्रोश या विद्रोह के रूप में नहीं, केवल व्यंग्य के रूप में व्यक्त करते हैं। एक अच्छा उदाहरण हैः–

अश्रु वायुग्रस्तानां श्वासानां मध्ये/मलिनरथ्यासु वाराङ्गनानां दुःखपीडितानां शीत्काराणां मध्ये/रक्त पिपासुजनवृन्दानां मध्ये/निर्जन निबिड़ान्धकारे वासनानां मध्ये/कज्जल श्यामावाप्यायां/प्रज्वलन्तीनां चितानां मध्ये/मद्यालय–मदालसनेत्रेषु/ विगलन्मैत्रीस्नेहवात्सल्यादीनां शब्दानां मध्ये/मानवताया अन्त्येष्टि संस्कारकाले/ उपस्थितां राजनीतिज्ञानां/सत्तान्धहस्तानां मध्ये/ मह्यं/ पिपीलिका–प्रतिच्छायामितमीश्वरं देहि।। पृ.–9

इससे भी अधिक तीखा व्यंग्य निम्नलिखित कविता में देखें– **मधु बिन्दु पङ्के पिपीलिका मृताऽत्र/ तत्र/ गृहेषु सुप्ता जना नरराक्षसैरातङ्कवादिभिर्हताः/**x x x x x /**सत्यस्य विपणी तत्रास्ति/ यत्र न्यायदेवी नेत्रयोर्वस्त्रपट्ट धारयति/**x x x x x /**मृतकुक्कुरसदृशं वर्तमानपत्रं/दृष्टिप्रहारैः खादति वर्तमानकालः/नपुंसक ईश्वरः/क्लोरोफोर्म–मूर्च्छितः स्वपिति/कदाचित्/जागृयात् सः/सृष्टिरचनाऽपराधं वीक्ष्य/स्वात्महत्यां कुर्यात्। (पृ.–12)**

समझ में नहीं आता कि कवि ने अमृत और गरल दोनों की अनुभूतियों को संग्रह में अलग–अलग क्यों नहीं रखा? और यह भी समझ में नहीं आता कि अधिकतर शाश्वत् शृंगार से सजाये इस संग्रह का नाम पुरा यत्र स्रोतः कैसे सङ्गत हुआ?

संग्रह के अंतिम भाग में मिथः उपनाम से कुछ लघु बिम्बकाव्य दिये गये हैं, जो क्षणिका, हाइकु आदि की कोटि में आते हैं। चुभते प्रभाव और लघुतम कलेवर के कारण ये बड़े ही आकर्षक हैं। इस विधा का अपना कोई खास विषय या विषय क्षेत्र नहीं होता है, फिर भी कवि ने इस संग्रह में इन्हें विषय के धागे में पिरोकर मालाबद्ध किया है, जैसे मन, सैनिक, गृहिणी आदि। इनमें आये कुछ मार्मिक बिम्ब देखा जाये–

प्रज्वालय मनः/दीप्तिमद् भविष्यति ब्रह्माण्डम् (पृ.–78)/x x x x **/सैनिकस्य रुधिरेण/देशे पाटलपुष्पाणि प्ररोहन्ति/किन्तु तानि/कस्यापि नेतुः कण्ठं/मण्डयन्ति बत।। (पृ.80)/**x x x x**/अश्रुभिः/स्वयमेव वर्धिता/गृहिणी/ तुलसीरूपा दृश्यते/पातिव्रत्य–दीपप्रकाशे (पृ.85)/** x x x x **/गृहिणी हसति/ मुख्य कक्षः पश्यति/रोदिति/तत् स्नानगृहं शृणोति (पृ.84)/** x x x x **/इष्टकायां स्त्रीहृदयमस्ति/यत्/प्रहारान् विस्मृत्य/रक्षति गृहम्।। (पृ.90)**

कवि ने कहीं–कहीं, विश्व के कोने–कोने से बटोर कर, कविता को ऐसे–ऐसे निर्देशों से सँवारा है, जिनका रसग्रहण महान् सामान्यज्ञानी ही कर पायेगें, जैसे आस्ट्रेलिया के पर्थ नगर की नौका–प्रतियोगिता, उत्तरी ध्रुव का रेण्डिअर, ग्रीक मिथ का हेरो इत्यादि। **तव मूर्तिः** शीर्षक कविता तो मानो अजायबघर खड़ा करती है। कवि को ऐसी विश्वव्यापी अभिज्ञता वाले संस्कृतज्ञ पाठक कितने मिलेंगे? इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रवृत्ति के पीछे अपनी व्यापक अभिज्ञता से पाठक को चौंकाने की उनकी कामना हो सकती है। इसी तरह इस कविता–संग्रह से संगीत के प्रति कवि का अनुराग झलकता है। साहित्य और संगीत की मैत्री चिर–विदित है। इसलिये इस संग्रह में यमन–कल्याण, जयजयवन्ती, जोगिया कलिंगड़ा, गौर–सांग आदि राग–रागिनियों के नामों का आना, संगीत में रूचि न रखने वालों को छोड़, किसी को अखरेगा नहीं।

भाव को वांछित संवेदन के साथ हृदयंगम कराने में कवि का भाषा ने सर्वत्र साथ दिया है। काठिन्य में बदनाम संस्कृत–भाषा भी सरल हो सकती है, इसका एक अच्छा निदर्शन है यह काव्य–संग्रह। इसकी भाषा में यदि कोई दोष है तो वह है, जहाँ–तहाँ आ पड़ी कुछ अशुद्धियाँ। कुछ अशुद्धियाँ छापे की हैं जो अपरिहार्य होने के कारण क्षम्य है, अतः उनका उल्लेख नहीं है। डॉ. गोविन्द झा कहते हैं कि पुरा यत्र स्त्रोतः पूरा पढ़ने पर जो मन में पहली अनुक्रिया हुई–जिसमें ऐसे–ऐसे

उत्कृष्ट काव्य लिखे जाने लगे हैं, वह संस्कृत–भाषा अब समकालीन साहित्य में भी उतना ही ऊँचा आसन पा लेगी, जितना ऊँचा आसन प्राचीन साहित्य में उसे प्राप्त है।

10. कालोऽस्मि

प्रस्तुत बहुभाषीय एकबिम्बात्मक काव्य प्रयोगशील चेतना के कवि डॉ. हर्षदेव माधव का एकादशवाँ काव्यसंग्रह है जो मृत्युशतकम् सुषुम्णायां निमग्ना नौका–जैसा ही आकार में छोटा है। इस संग्रह में काल से सम्बन्धित लगभग 45 संस्कृत काव्यखण्ड हैं जो 31 अंग्रेजी काव्यखण्ड का सीधा अनुवाद तो नहीं, परन्तु भाव का रूपान्तर अवश्य है जिसमें कवि ने काल विषयक कल्पनाओं का इस काव्य संग्रह में मुक्तक शैली में चित्रण किया है चार भाषाओं में लिपिबद्ध इन कविताओं के क्रम में सबसे पहले अंग्रेजी फिर संस्कृत, गुजराती एवं हिन्दी की कविता दी गई है। कवि ने पुस्तक का शीर्षक भी चार भाषाओं में रखा है जिसमें पहले संस्कृत है, कवि ने बहुभाषीय काव्यकला का उत्तम उदाहरण दिया है। इनमें विषय के अनुसार चित्र भी कवि ने ही स्केच किये हैं। हर पृष्ठ के एकपार्श्व में कविता के भाव के अनुरूप एक चित्र प्रस्तुत किया गया है जो स्वयं कवि की ही सृष्टि है। कविताओं को चार भाषाओं में एकसाथ प्रकाशित करने से संग्रह के पाठक वर्ग में व्यापकता आती है। कवि ने बहुआयामी विषय को लेकर अपने अनुभव जन्य दर्शन को एक सफल सर्जनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। काल अर्थात् समय ही सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न है। काल की असीमता को घड़ी की सुईयों में बांधा नहीं जा सकता। सृजन और विनाश की लीला में सतत् सक्रियकाल क्षण मात्र में ही मनुष्य के गगनचुम्बी अहंकार को मिट्टी में मिला देता है।

इस संग्रह का वैशिष्ट्य यह है कि इसकी हर कविता काल के लिए उद्दिष्ट है जिसमें मानो काल ही स्वयं अपनी आत्मकथा कह रहा हो। कवि की भाषा में–

सिक्थवर्तिवत्/प्रज्वलामि/समयायतने/त्वदन्धकारं/दूरीकर्तुम्। (पृ. 27)

समय को कवि ने जीवन दर्शन से जोड़कर कुछ अच्छा विचार व्यक्त किया है–**समयसिकतासु/जीवनं जीर्णमूलायते/नश्यत्यतीतः/अस्थि खण्डेषु/इतिहासस्य। (पृ.5) एकश्चषकोऽस्ति जीवनम्/अपरोऽस्ति मृत्युः/अस्मिन् कालास्ये शरावे/ विश्वफलके(पृ. 29) क्षतः विक्षतः समयः/मरणासन्नः/प्रतीक्षते/चिरशान्त्यै (पृ.11)**

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, भाषान्तर करते समय कवि ने अक्षरक्षः अनुवाद नहीं किया। भाव का शब्दान्तर कर दिया है। उदारण के लिए संग्रह की प्रथम कविता की तुलना की जा सकती है–

अंग्रेजी – SAND like time/There would be only bones/and decaying roots/of lost time/of dead and deserted time.

हिन्दी – वक्त का सहारा दबे पावों तले/एक लम्हा जी लिया/अब तो चले।

संस्कृत–समयसिकतासु जीवनं/जीर्ण मूलायते/नश्यत्यतीतः/अस्थिखण्डेषु इतिहासस्य (पृ.5)

कभी–कभी अंग्रेजी तथा हिन्दी में बात संक्षिप्त एवं स्पष्ट होने पर भी कवि का संस्कृत करते समय शब्दजाल में उलझता है–

अंग्रेजी – Only time is on the track of time.

हिन्दी – है समय केवल समय का हम सफर।

संस्कृत – समयाख्ये रेलयाने/चिटिकारहितोऽहं/पश्यामि प्लवयोग्यसमययानं/ निःसमयं प्रति/चालकनियन्त्रणरहितः/समयोऽयं कुत्र नेष्यति मामिति/अजानन्नेव/ जृम्भते जीवोफलकेऽस्मिन्। (पृ.13)

समय को परिभाषित करते समय कवि द्वारा प्रयुक्त प्रतीकादि काव्य धर्म मनन करने योग्य तथा सहृदयश्लाध्य है–

पुष्पस्य वक्षसि/पतंगः शृणोति/मुद्गरप्रहारम्/अयमेवकालोऽस्ति (पृ.55)
समयरूपे कासारे/प्रफुल्लितामिदं जीवितपुष्पम् (पृ. 41)
समयस्तु विश्वपुष्पस्य मधुकोषः/पतंगो भूत्वा संचरति जीवः (पृ. 49)
जीवितकोटरे/समयः/उलुकायते (पृ. 47)

रचनाकार काल के इस व्यापक लीला–लोक में विहार करता हुआ उसके एक–एक पहलू को छूता है, उसके मर्म तक पहुँचाता है और उसे भिन्न–भिन्न प्रतीकों–बिम्बों के माध्यम से मूर्त रूप देने का प्रयत्न करता है।

कवि ने अपने अनुभव को शब्दों के साथ–साथ चित्रों में भी बाँधा है, प्रतीकात्मक रेखाचित्रों में एक ओर शब्द–चित्र और दूसरी ओर रेखाचित्र अर्थात् स्केच। शब्दकला और चित्रकला का यह सामंजस्य अपने आप में एक सुखद प्रयोग है।

हर्षदेव मूलतः तो संस्कृत के रचनाकार हैं। संस्कृत के माध्यम से आधुनिकता को अभिव्यक्ति देने वाले प्रयोगशील रचनाकार हैं। अन्य भाषाओं पर भी उनकी अच्छी पकड़ है। समय की निरंतरता और निरंकुशता कवि की चेतना को बराबर आंदोलित करती रहती है। कवि के विचार से समय केवल समय का हमसफर है, लेकिन उस पर नियंत्रण किसी का नहीं। ड्राइवर के नियंत्रण के बिना समय किसे, कब, कहां ले जाएगा कुछ पता नहीं फिर भी उसकी पटरी पर जीवन की गाड़ी चलती ही रहती है।

इस प्रकार काल के इर्द–गिर्द घूमती हुई कवि की सर्जनात्मक चेतना एक नये भाव–विश्व का सृजन करती हुई रचनाशीलता की नई संभावनाओं की ओर निर्देश करती है। छोटे–छोटे मुक्तकों में भाव की गहनता और अर्थ की सघनता का संतुलन बराबर बना रहता है।

प्रस्तुत काव्य–संग्रह में जीवन का क्षण भंगुरत्व, यौन–प्रीति, मृत्युभीति, शून्यता, अवकाश के आनंत्य की अनुभूति कवि के साथ–साथ पाठक को भी आकृष्ट किये बिना नहीं रहती।

"मृत्युकपालं धृत्वा / भ्रमति / समयप्रेतः

समयवह्निः / मुखस्य मासं दगध्वा / कपालं सृजति।" (पृ. 37)

11. मृत्युशतकम्

इस काव्य संग्रह में कवि ने मृत्यु के विषय पर 104 लघुबिम्ब (Mono Image Poems) लिखे हैं। कवि ने इस काव्य संग्रह में मृत्यु जैसे भयंकर विषय को सहजता से प्रस्तुत किया है।

"मृत्युशतक में कवि कलम चलाता है मृत्यु पर और लिखता जाता है प्रतिशब्द गहरी जिजीविषा को। अतः इसे जीवन का, वस्तुतः जीने योग्य जीवन का साक्षात्कार लेने वाला काव्य कहना चाहिए। मृत्यु–मीमांसा की गहरी एवं हृदय–स्पर्शी अभिव्यक्तियाँ यहाँ हुई, वे कवि प्रतिभा के समक्ष दर्शनादि को नतमस्तक करती है, ऐसा कोई सहृदय कहे, तो वह कथमपि अतिशय नहीं होगा, अपितु आचार्य मम्मट प्रभृति विद्वानों द्वारा कवि भारती की गई प्ररोचना वास्तविक अनुभूति होगी।"

'मृत्युशतकम्' मृत्यु की अनिवार्यता को कुछ इस प्रकार कह जाती हैं– **मृत्युकपालं धृत्वा/भ्रमति समयप्रेतः।**[25]

समय का चक्र घूम रहा है पता नहीं किस द्वार पर रुके और उसे लेकर प्रयाण कर जाये। मृत्यु कब आयेगी? कुछ निश्चित नहीं। यह तो ऐसी पुस्तक है जिसके पृष्ठों का क्रम नष्ट हो गया है। मृत्यु सर्प का स्पर्श, बिच्छू का दंश, गरुड की दृष्टि, व्याघ्र की छलांग, चींटी की घ्राण शक्ति है परन्तु उसका आलिंगन अजगर के समान कष्टदायी है। वह छोड़ती किसी को नहीं है। जब सब कुछ निश्चित ही है तो फिर उससे पलायन कैसा। लेकिन व्यक्ति अपनी बेबसी को स्वीकार नहीं करता। मरने से अधिक मज़बूरी तो उसे जीने में लगती है फिर भी आवागमन से मुक्त होने की राह नहीं ढूँढता।

"लम्हा लम्हा कर रहा है खुदकुशी जिन्दगी जीने की कैसी बेबसी।
घोंट देता है समय सबका गला चाहता फिर आदमी क्यों वापसी।"[26]

संवेदना की शय्या पर भावों का बिछौना डालकर कवि की लेखनी विश्राम लेती है। यह उनके लेखन का ही चमत्कार है कि जीव मरकर भी दूसरे के शरीर में पहुँचकर उसकी धड़कन बन जाता है।

डॉ. इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव' कहते हैं कि 'डॉ. हर्षदेव माधव' की कविता ने मृत्यु को इतना सुन्दर और कौतुहलपूर्ण बना दिया है कि उससे साक्षात् होने पर वह अपरिचिता नहीं लगेगी। मुझे डॉ. सुमन की एक काव्यपङ्क्ति स्मृतिपथ में कौंध गई– **"मुझे मृत्यु इसीलिये भाती है**
क्योंकि वह आता नहीं–आती है।"[27]

मृत्यु जैसे चरमसत्य और भारतीय संस्कारों के मिथ, दर्शन और लोक चैतन्य में खौलते विभिन्न भावों को जो शब्द सम्भार आपने कविता में दिया है वह अनूठा है।

"अविहा!
किमियदेव मेपुण्यं
यमराज!
यत्–
स्वर्गे ह्यप्सरसो भवेयुः
न भवेदुपनेत्रं मे!" (कविता सं.–6)

बीसवीं सदी के नचिकेता हो गये हो मित्र! अन्यथा वार्ताहीन, समाचारपत्र, चश्माविहीन नेत्र, सूर्यरहित दिन, सुखविरहित रात्रि, डेड टेलीफोन और बिना शक्कर की चाय तथा निर्दयीप्रेमिका जैसी मृत्यु से आँखें कैसे चार कर पाते!

"निजानन्दमग्नायात्मकलापिने

प्रतीयतेऽयं

घनश्यामः।" (कविता सं.–31)

कालयवन के भय से दो माधव भाग गये–प्रथम माधव वासुदेव और द्वितीय माधव हर्षदेव! दोनों ही कालपुरुष की छाती पर लातमारकर अपने–अपने जीवनदर्शन की कविता समय के वक्ष पर अंकित कर द्वारका में पधारें थे। बीसवीं शती की संस्कृत कविता के नूतन घनश्याम माधव हर्षदेव तुम वही हो, तुम वही हो, तत्त्वमसि तत्त्वमसि।

कवि ने आत्मा की अमरता को दर्शाने हेतु कुछ सुन्दर काव्य का प्रयोग किया है। वह शरीर को पक्षी तथा उसमें बसी आत्मा को उसके कुहुतान से व्यक्त करता है–**हे मृत्यो! त्वं विहगं हर्तुं शक्तोऽसि। न प्रसृतं कुहूकारम् (11)**

कवि एक शांत पीड़ारहित मृत्यु के पक्ष में है। अतः कहता है–

देहि मे वातानुकूलिते कक्षे/वातानुकूलितं मृत्युम् (28)

मृत्यु प्राणी को जड़ बना देती है। कवि की भाषा में–

मृत्युकिरणः। मयिप्रविशति/मम मणित्वम्/उपलायते (84)
अहम् अस्तं गच्छामि/मद्विरहितम् रुधिरं श्यामायते (74)

एक ही बिम्ब को आधार मानने वाला करुण रस प्रधान यह संग्रह संस्कृत के आधुनिक काव्य–साहित्य का एक निदर्शन है। डॉ. माधव मोनो इमेज काव्यकला में पारंगत है। ऐसी प्रतीति 'मृत्युशतकम्' को देखकर हुए बिना नहीं रहती। मृत्यु की छाया काली मानी जाती है, इसी बात को ध्यान में रखकर ही शायद कवि ने काव्य संग्रह के आवरण पृष्ठों को काले रंग का रखा है।

मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता' श्रीहर्ष की इस उक्ति की सार्थकता को दर्शाते हुए कवि इस संग्रह की समस्त कविताओं को यथासंभव संक्षिप्त करते हुए भी कविताओं के भाव को स्पष्ट और सरस बनाये रखने में सफल हुआ है। गिरीश जानी ने ठीक ही लिखा है–

'मृत्युं विषयीकृत्य रचितेष्वेतेषु लघुकाव्येषु कवेः कल्पनवैशिष्टयस्य सम्यक् निरूपणं दृश्यते। अभिनवपरिकल्पनया काव्यानीमानि हृदयंगमानि भवन्ति। अत्र प्राचीनार्वाचीनस्वदेशीयवैदेशीयसन्दर्भोल्लेखैः काव्यवस्तु समलंकृतम्। मृत्योः विषये कवेः वैविध्यपूर्ण–विचाराः प्रतिकाव्यमपूर्वतां नयन्ति।'[28]

'मृत्युशतकम्' काव्य संग्रह जिसको अर्पित किया गया है ऐसे डॉ. जगन्नाथ पाठक का अभिप्राय भी इस प्रकार है– **'मृत्युशतकम्' को लेकर इतनी हृद्य और नूतन भंगी–भणितियाँ प्रथम बार पढ़ने को मिली। इसके लिए बधाई.....'मृत्यु' को इतने नये भावों, मुद्राओं, बिम्बों में आपने अभिव्यक्ति दी है, इससे चित्त केवल चमत्कृत ही नहीं हुआ, आपके कवित्व के स्पर्श से उद्भासित 'कथनों' की उस पर एक गहरी–छाप की अनुभूति हो रही है।[29]**

इच्छाराम द्विवेदी ने लिखा है– 'मृत्यु' जैसे चरम सत्य और भारतीय संस्कारों के मिथ, दर्शन और लोकचैतन्य में खौलते विभिन्न भावों को जो शब्द संभार आपने कविता में दिया है, वह अनूठा है।[30]' संग्रह के प्रारम्भ में एक प्रकार की निराशा और हताशा की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। जैसे 'शुष्कतां यातः', 'निष्कासितोऽहम्', 'भ्रष्टोऽस्मि', 'प्राणाः शलभायन्ते' इत्यादि शब्द।[31] इस काव्य में कवि ने मृत्यु को भी अपनी मर्यादा–रेखा दिखा दी है और साथ में 'मृत्यु व्यक्ति का हरण कर सकती है किन्तु उसमें रहने वाले सयानेपन का नहीं–ऐसा दार्शनिक ख्याल भी काव्यरूप में प्रस्तुत किया है। यहीं पर भर्तृहरि का निम्नलिखित पद्यपाठक के स्मृति पट में अवश्य आयेगा–

"अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजल भेदविधौ प्रसिद्धां।
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः।।"[32]

'नाम उसका नाश' यह तो सनातन सत्य है, लेकिन कई लोग काल के सर्वनाश को भी पार कर जाते हैं। जीवन भर स्वाभिमान के साथ जीने वाला व्यक्ति 'फिनिक्स' पक्षी की तरह फिर से खड़ा होता है और मृत्यु को भी आश्चर्य में डाल देता है। **जैसे–यदा/भस्म मे मिलिष्यति/समुद्रजलेन, तदा/समुद्रे वेला प्रादुर्भविष्यति/समुद्रादेको जलदः वर्षिष्यति, समुद्रे शुक्तौ मुक्ता भविष्यति/तदा मृत्युरपि/स्वबद्धभुष्टिमुद्घाटयिष्यति/साशंकम्।।"** (कविता सं.–48)

अंग्रेजी कवि ज्होन उन ने भी मृत्यु के बारे में एक काव्य में ऐसी ही बात लिखी है।[33] भर्तृहरि का एक पद्य है– **'नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्'**[34] **ऐसी खुमारी वाला व्यक्ति मृत्यु को भी ललकारता है– समाधौ/तृणानि प्ररुढानि;/हे मृत्यो!पश्य मे प्ररोहान्।।** (कविता सं.–101)

मृत्यु का सामना करने का दृढ़ निश्चय भी ऐसे लोगों में होता है। उन लोगों को मृत्यु 'मूषक' (चूहा) जैसी ही पामर लगती है। 'मृत्यु' जीवन का बड़ा रहस्य है। कवि मृत्यु के रहस्य को पाने के लिए शब्द की सहायता लेता है–

मृत्योरनुभवः/सरोजलनिमज्जनकल्पः। (कविता सं.–61)

इस प्रकार 'मृत्युशतकम्' एक विशिष्ट शतक काव्य है। प्राचीन कवियों ने छन्दोबद्ध शतक काव्य लिखे थे, मगर हर्षदेव ने 'मोनोइमेज' कविताओं का शतक काव्य दिया है।

'जातस्य ध्रुवो मृत्युः' जैसे शाश्वत सत्य को बताने के लिये कवि प्राचीन सुभाषित का सहारा लेते हुये कहता है–

शैले–शैले न माणिक्यं/गजे–गजे न मौक्तिकम्/किन्तु/मस्तके मस्तके मृत्युरस्ति। (कविता सं.–43)

यहाँ हर कोई मृत्यु के कब्जे में है इस बात को बताने हेतु कवि इन शब्दों का सहारा लेता है–**मृत्योः कर्दमे/निमग्नमस्ति/मम रथचक्रम्।**

कवि मृत्यु को कभी वर्षाकाल बताता है तो कभी उसे कांच पात्र में उष्ण जलधारा या दर्पण में पाषाणगुटिका से तुलना करता है–

मृत्युर्वर्षाकालोऽस्ति (कविता सं.–32)

मृत्युः/कृष्णपात्रे/उष्णजलधारा/अथवा दर्पणे/पाषाण गुटिकाऽस्ति

(कवितासं.–18)

12. सुषुम्णायां निमग्ना नौका

इस काव्य संग्रह का गुजराती में अनुवाद और प्रकाशन रवीन्द्र खांडवाला द्वारा किया गया है। इस काव्य संग्रह में 8 विषयों पर मोनो इमेज कविताएँ लिखी गई है–

1. रणम्	2. ईश्वरः
3. समुद्र	4. मार्गः
5. जलद	6. कन्दरा
7. राक्षस	8. ॐकारः

डॉ. हर्षदेव माधव संस्कृत मोनो इमेज के क्षैत्र में मील के पत्थर हैं जैसे–

ॐकारमयी नौका
सुषुम्णायां निमग्ना
न हि न हि
मां कमलद्वीपं पापयित्वानिमग्नेयम्....। (कविता सं.–8)

तंत्रविद्या के भगवत्स्वरूप में या योगमार्ग में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी का अत्यधिक महत्त्व है। 'ओमकार की नैया सुषुम्ना में डूब गई है, नहीं मुझे कमलद्वीप में पहुँचाकर!' सुषुम्ना छः चक्रों को भेदकर सहस्रार कमल में कुण्डलिनी को जोड़ने वाली नाड़ी है। सुषुम्ना रूपी नदी में ओमकार की नया डूबी है, ब्रह्मत्व की निर्विकल्पक समाधि की संकल्पना मोनो इमेज काव्य की केवल दस पंक्ति में निरुपित कर देना किसी भी कवि के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने लिखा है कि **"माधव की कविता अनुभवों, कल्पनों एवं प्रतीकों का एक विराट संसार है। उनकी प्रत्येक इमेज भास्वरमणि की भाँति अनेक उपकल्पनों के साथ एक अनूठी आभा की सृष्टि रचती है तो इसकी प्रतीति हर्षदेव माधव के उपर्युक्त मोनोइमेज काव्य भली भांति करवा देते हैं।"[35]**

13. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि

डॉ. हर्षदेव माधव का प्रस्तुत स्तबक आधुनिक संस्कृत कविता के महाप्राणों को क्रमशः विविध कविता गुच्छरूपी कृत्यांजली से नमन करता है।

यह वृहत् काव्य संग्रह है, जिसमें 173 काव्य और संवादोपनिषद् के 25 काव्य संग्रहीत है। यह 9 स्तबकों में विभाजित है।

1. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि 2. अस्तित्वमये मर्णिकर्णिका घट्टे

3. तव स्पर्शे स्पर्शे 4. क्षणमये चषके

5. दूराद् दृष्टा निकटनिकटं 6. सागरोऽयं पृथकप्राणः

7. शापान्तो मे 8. परकाय प्रवेशः

9. शनैः शनैः गलन्त्यः प्रतिच्छायाः

इस समालोच्य कविता संग्रह में कवि ने कई सामाजिक और राजनीतिक सवालों को खड़ा किया है। कवि ने राष्ट्रवादी तथा देशभक्ति की भावना को न केवल भावनात्मक लेप से सिक्त किया है अपितु इस भावना में निहित उसके मानवीय आर्थिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं को भी साफ ढंग से उठाकर विषय–विवेचन में नूतनता के साथ समग्रता भी लाने का भरसक प्रयास किया है।

डॉ. माधव के कुछ प्रयोग नितान्त, उनकी व्यक्तिगत साधना का ही परिणाम है। 'भावस्थिराणि सौहृदानि' संग्रह में आय–व्यय पत्रकम्, रिक्तस्थानपूर्ति कुरु, योगप्रश्न, कविताएँ कविता न होकर विचार–बिन्दु है। आय–व्यय पत्रम् में देश की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था पर कठोर व्यंग्य किया गया है। अन्त में अवशेष शीर्षक द्वारा 'कशेरुका रहित अर्थतन्त्र' कहकर देश की अर्थ व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। नवीन प्रयोगों के धनी डॉ. माधव से कोई भी विषय छूट नहीं सका है। गणितिक संज्ञाओं द्वारा जीवन की घुटन, दर्द और पीड़ा कुछ इस प्रकार कही गई है कि पाठक स्तब्ध रह जाता है–

ऑफिस–चिन्ता x गृहिणी+उपनेत्रं+क्षयः=जीवितम्

इस समालोच्य कविता–संग्रह में जीवन तथा मानव के नाना प्रसंगों की उलझनें और उनसे पैदा हुई दरारों की टीस जनमानस को सोचने के लिए बाध्य करती है। चकलाघर की औरतों की परेशानी तथा लाचारी का चित्रण कवि ने बड़े ही आक्रोश–भरे शब्दों में किया है–

वासना–यूपे बद्धा सा/दूयते, किन्तु न हन्यते (वेश्या) (कविता सं.–42)

लेकिन यहाँ ध्यान रहे कि कवि ने यह भी कहा है–

केनापि रामेण त्यक्ता/केनापि नलेन निर्वासिता।
केनापि दुष्यन्तेन वचिंता/केनापि हरिश्चन्द्रेण विसृष्टा। (पृ.सं.–71)

यहाँ डॉ. माधव अपनी यथार्थवादी सोच से खिसक कर कुछ अधिक ही भावुक लगते हैं क्योंकि इसमें उनकी नारीवादी सोच की स्निग्धता तो जरुर है, लेकिन मनुष्य का पुरुष के रूप में उसका चेहरा थोड़ा धुँधला कर दिया है। इस कटु सत्य का आकलन भारतीय चिंतन के ऐतिहासिक सांस्कृतिक वातायन से भी थोड़ा होना चाहिए था फिर भी पुरुष द्वारा किया गया औरत पर अत्याचार और शोषण को नकारा नहीं जा सकता है। वर्तमान संदर्भ में नारी के पारिवारिक दबदबा को सुकवि डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने मजाकिया लहजे में लिखा है, उसका भी कुछ खास अर्थ है.........

पतयः पचन्ति किल महानसे
पत्न्यश्च समाजोद्धारताः।।

इनकी कविता 'हठसंभोग' में सहादतमंदो की रचना 'खोल दो' जैसा ही बलात्कार का दृश्य मन को दहला देने वाला है। चन्द्रमा को संभोग तथा पटरी के बिना (औरत का) जीवन से दूर–छूट गये श्वास और उनका साँप की तरह छूटना और निकलना, उनका बहता हुआ खून, अंधकार की योनि में गिरता हुआ तारों का तेज बलात्कार का अंकन दिल को बड़े अंदर से झकझोरता नजर आता है–

लोहपट्टिका हीनश्चन्द्रः
कीर्णः क्षीणश्छन्नाङ्गों ननु जातश्चन्द्रः यातश्चन्द्रः
लोहपट्टिकाहीना सर्पाः श्वासायन्ते,
लोहपट्टिकाहीनाः श्वासाः सर्पायन्ते। (पृसं.–248)

यद्यपि इन पंक्तियों में कथ्य और बिम्ब के बीच भाव की दूरी है। लेकिन भाव की गंभीरता और सच्चाई का ऐसा मंथन आज संस्कृत–कविता में स्वल्प ही दिखता है। भीड़–भाड़ के महानगरीय जीवन में मनुष्य की अपनी खोती हुई पहचान कीट–पतंग की तरह ही सामाजिक भाव–शून्यता की पुष्टि करती है–

संकेतरहितं पत्रं भूत्वा/अहं निवसामि तव नगरे।। (पृ.सं.–23)

यही कारण है कि अपनी अन्य कविता 'मुम्बापुर्यां बॅम्बस्फोटः' में कवि ने कहा है कि गिद्ध की तरह आदमी इंसानियत को निगल रहा है, धर्म का पालन करना तो दूर की बात है—

गृध्रा इव मनुष्याः/मानवतां खादन्ति।
धर्मो न धारयति प्रजाः
अपितु/हन्ति दयालेशमपि। (पृ.सं.—39)

यद्यपि डॉ. माधव की कविताओं में दार्शनिकता की दुरूहता तथा प्रतीकों का दबदबा अधिक है तथापि इनके इस कविता गुच्छ में उपर्युक्त दोनों मिसाल उनके प्रसाद गुण तथा कोमलकांत पदावली के प्रतीक है जो बड़ा ही मन भावन तथा हृदयाह्लादक भी हैं। एक और उदाहरण—

फुल्लकुसुमरमणीयं गात्रम्।
परमपावनं तव हृत्पात्रम्।
पश्यसि सदयं त्वं हिकुपात्रम्। (पृ.सं.—151)

उपर्युक्त कवितांश की अंतिम पंक्ति में राष्ट्र विरोधी तत्त्वों को कोसा गया है जिसमें राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता की भावना भरी पड़ी है इसी संदर्भ में उन्होंने 'स्वतन्त्रतागानं कुर्वन्तु' में देशवासियों को यह कहकर एहसास दिलाया है कि राष्ट्रगान को विशेष उत्सव पर गाने मात्र से राष्ट्र—भक्ति नहीं होती बल्कि उसे जीवन में उतारने से होती है। यही शहीदों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है—

प्राणाहुतिदानोज्ज्वलचरिताः/सत्य—दया—संयमगुणप्रथिताः।
स्वतन्त्रताप्रणयिनस्सन्तु/स्वतन्त्रतागानं कुर्वन्तु। (पृ.सं.—152)

इसी सिलसिले में उन्होंने 'कारगिलम्' में शहीदों को नमन करते हुए उन नेताओं तथा चिकित्सकों के खिलाफ खुलकर आवाज उठायी है, जो क्रमशः कर—चोरी तथा गरीब—बीमार जनता का शोषण और दोहन करते हैं—

करचौर्यं कुर्वतां रजतपरमलङ्कुर्वतामभिनेतृणां कृते। (पृ.सं.—102)

प्रस्तुत समालोच्यरचना "भाव—स्थिराणि जननान्तरसौहृदानि" में संकलित तरानों के आयामों का आकलन थोड़े में कर पाना कठिन है लेकिन इतना जरुर है कि भारतीय कविता—साहित्य में डॉ. माधव ने जो तरोताजा संस्कृत के नगमें पाठकों तक परोसे हैं उसमें निश्चित तौर से बहुचर्चा के कई पैमाने जुड़े लगते हैं।

भूतप्रेतशतकम्' पाठक को मृत्यु के बाद के विश्व में विहार कराता है। मनुष्य की मृत्यु के बाद की पहचान का एक नाम 'प्रेत' या 'भूत' भी है कवि हर्षदेव माधव ने मृत्यु के बाद इस भाव–विश्व को अपनी कलम से आधुनिकता में समाविष्ट करते मानो नजर के सामने खड़ा कर दिया है।

परास्तवाद या बिम्बवाद की एक प्रणालिका के अनुसार निर्जीव वस्तुओं का सजीव वस्तुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करना या दृश्य बिम्बों का अन्य बिम्बों के साथ जोड़ने का कवि का अभिगम यहाँ सफल होता हुआ दिखता है।

जैसे एक दृश्य श्रव्य बिम्ब रचते हुए कवि कहता है–**प्रेतोधावति सर्पवत / हसति शुष्क पर्णवत् / रोदितिश्वानइव / वदति काकवत् / जल्पति शृगालवत्।**

इस काव्य में भूत की पलायनवादिता, भीरूता और मन्त्र से वशीभूत हो जाने की लोकमान्यता दृश्य बिम्ब के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

14. सुधासिन्धोर्मध्ये

'सुधासिन्धोर्मध्ये' में दो उपनिषत्काव्य संगृहीत हैं– (1) प्रकाशोपनिषद् (2) मन्त्रोपनिषद्।

प्रकाशोपनिषद् में छन्दरहित 31 काव्य है, जिनमें 'प्रकाश' को केन्द्र में रखते हुए काव्य की रचना की गई हैं। दूसरे भाग 'मन्त्रोपनिषद्' को कवि 'Bilingual Mystic Poems' नाम देते हैं। इसमें मंत्र के आधार पर 24 मोनो इमेज काव्य और 12 गुजराती मुक्तक है। 'प्रकाशोपनिषद्' कवि के द्वारा अपने भीतर प्रकाश के साक्षात्कार की रहस्यानुभूति है। यह उपनिषद् पढ़ते हुए लगता है कि कवि ने सचमुच आत्मसाक्षात्कार के क्षण में प्रकाशमय संवित् की प्रत्यक्षानुभूति को ही शब्द दिया है।

यह कविता राधावल्लभ त्रिपाठी के इस मन्तव्य की भी सजीव पुष्टि है कि कविता मुक्ति के लिये है और कवि तथा सहृदय दोनों को मुक्त करती है। प्रकृत काव्य में 'माधव–प्रकाश' को अभिसार के लिये पास बुला लेते हैं, निर्वसन या निरावरण होकर प्रकाश को अपने में समा लेते हैं प्रकाश को छूते हैं और स्वयं प्रकाश हो जाते हैं–

"ते तपस्यन्ति प्रकाशमन्वेष्टुम्/अहमाहवयाम्यभिसारायप्रकाशम/
ते रचयन्ति प्रकाशस्य भाष्याणि/अहं स्पृशामि तम् यथा त्वाम/
ते भित्तिषु बध्नन्ति प्रकाशाभासम्/तत्रजल्पन्ति किमपि/अहं
निर्वस्त्रावस्थायाम् तं बध्नामि मयि।" (पृ.–12)

इस भूमि पर पहुँच कर यह करना असंभव होता है कि प्रकाश मेरे भीतर है या मैं प्रकाश के भीतर हूँ। हम प्रकाश को अनुभव कर रहे हैं या प्रकाश हमें अनुभव कर रहा है।

निवातस्था दीपा भूत्वा/तम् अनुभवत/तं तथा अनुभवत/यथा असावपि युष्मान् अनुभवेत्। कुल मिलाकर माधव की निराली प्रतिभा ने एक बार फिर नई विधा रच दी है।

15. तव स्पर्शे स्पर्शे

यह कवि का सन् 1970 से 1990 ई. तक की कवि यात्रा का परिपाक है, इसमें गीति–गज़ल–खंडकाव्य अछांदस आदि विविध विधाओं कौतुकरागिता–वास्तववाद–अस्तित्ववाद–प्रतिबद्धता–दलितचेतना–आधुनिकता से संबंधित काव्य रचनाएँ है। वैश्विक सौन्दर्य की पिपासा से अनुप्राणित इस संग्रह में अनेक नये–नये विषयों को नये बिम्बों व प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। बांग्लादेश की सीमा के पास कपोताक्षी नदी के तट पर बंदूकों की आवाज, मई मास में द्रवीभूत होता मानस सरोवर का जल, केलिफोर्निया की येशोमाइट गुफाओं में 'लेकून' प्राणी की आँखों में चमकता अंधकार, रहस्य गर्भ प्रणय के आवेग जैसे जलप्रपातों वाली अमेजन नदी, गजासुर के चमड़े जैसा अंधकार, पत्थर के कण–कण सा होकर बिखरता अस्तित्व खजूरी के पत्तों की परछाइयों में कांपती चाँदनी, गरदन की हडिड्यों के टूटने की वेदना को अनुभूत करता 'एटलस' राक्षस, पुष्पों का रथ लेकर मेघधनुष के मार्ग पर प्रियतमा को ढूंढता प्रेमी और केसर पुष्पों की महक से मदहोश बनती–पूर्णिमा जैसी प्रीति आदि वैश्विक संवेदना के बिन्दु है।

16. बुद्धस्य भिक्षापात्रे

'बुद्धस्य भिक्षापात्रे' यह एक कविता संग्रह है जिसमें सुपरिचित प्रयोगधर्मी कवि "हर्षदेव माधव की प्रतिनिधि संस्कृत–कविताओं" का हिन्दी भाषा में रूपान्तर किया गया है। माधव जी की ये कविताएँ उनके काव्य संग्रहों से चुन–चुनकर मूल

संस्कृत के साथ प्रस्तुत की गई है। इस संग्रह के दो अनुवादक हैं– डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी एवं प्रवीण पण्ड्या जो स्वयं संस्कृत कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा अनूदित कविताओं को 14 विभिन्न शीर्षकों में विभाजित किया गया है। यह विभाजन कविताओं की विषय–वस्तु की दृष्टि से किया गया है यथा–उष्ट्रः, पुस्तकम् स्नानगृहम् इत्यादि। डॉ. त्रिपाठी ने अपने अनुवाद में कवि की मूल भावनाओं को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखा है, यथा–

प्रणयः कम्बलसदृशोऽस्ति	कम्बल की तरह है प्रेम
दुःखशैत्ये जीवितं रक्षितुम्	दुःख की सर्दी में जीवन बचाने के लिए
प्रणयो वासयष्टिसदृशोऽस्ति	बल्ली की तरह है प्रेम
हृत्–पारावतकस्यक्लमपनेतुम	मन का कबूतर जिस पर बैठकर मिटा
	सकता है थकान (पृ.सं. 2–3)

राजस्थान के युवा कवि प्रवीण पण्ड्या द्वारा अनूदित कविताओं की संख्या संग्रह में सर्वाधिक है, जिनको पूर्ववत् विषय–वस्तु की दृष्टि से 49 शीर्षकों में विभाजित किया गया है। पण्ड्या जी ने हर्षदेव माधव जी की प्रायः मुक्तक–कविताओं का हिन्दी रूपान्तरण किया है। हर्षदेव माधव की कविताएँ हिन्दी–भाषा में भी वैसा ही आस्वाद देती है जैसा कि मूल संस्कृत में–

वृक्षस्यच्छायायां	वृक्ष की छाया में
बोधिसत्त्वस्य शान्तिरस्ति	बोधिसत्व की शान्ति है।
पर्णेषु	पर्णो में
कृष्णसंगीतमाधुर्यम्	कृष्ण की वंशी का माधुर्य,
शाखासु	शाखाओं में
महावीरस्य तितिक्षा	महावीर की तितिक्षा
वृक्षमूले	और मूल में है
उपनिषदो याज्ञवल्क्यस्यसत्यमस्ति	उपनिषद् के याज्ञवल्क्य का सत्य।

(पृ.सं.–34–35)

17. व्रणो रूढग्रन्थिः

समकालीन कविता का प्रतिनिधित्व करता हर्षदेव माधव का काव्य संकलन है। इस संकलन में जीवन के अनछुए पहलुओं को अभिव्यक्त करती 120 कविताएँ हैं। ये कविताएँ अनेक आयामों का संस्पर्श करने वाली हैं क्योंकि इनमें अन्तर्वस्तु तथा शिल्प के स्तर पर यथार्थ, अति–यथार्थ, मिथक, प्रतीक, बिम्ब के साथ ही साथ मनुष्य के पंचेन्द्रियबोध इत्यादि का सर्जनात्मक एवं नवबोध के स्तर पर निर्वहण किया गया है। वे कविता में व्यापक विषयों को उठाते हैं तथा इनको प्रयोगशील काव्य रूपों के स्तर पर अभिव्यक्त करते हैं। इनके काव्य संकलन का शीर्षक इस तथ्य की ओर संकेत करता है 'उत्तररामचरितम्' के एक श्लोक का उत्तरार्ध इस प्रकार है–

व्रणो रुढग्रन्थि स्फुटित इव हृतकर्मणि पुनः
पुराभूतः शोको विकलयति मा नूतन इव।।[36]

अर्थात् "प्ररूढ गांठ वाले पुनः फटे हृदय के मर्मस्थल में घाव के समान भूतकाल में हुआ शोक नये के समान मुझे व्याकुल कर रहा है।" कवि ने काव्यसंकलन का शीर्षक तो 'व्रणो रुढ़ग्रन्थि' दिया है परन्तु वर्तमान में समस्त संवेदनाएँ समाप्त हो गयी है अतः व्रणग्रन्थिः प्रस्फुटित न होकर स्वयं जीवन का पर्याय बन गई है। यूं भी बाह्य अर्थात् शरीर पर लगे घावों का उपचार तो संभव है किंतु हृदय पर लगे आघातों का कोई उपचार नहीं होता। इस पीड़ा से कोई तत्त्वबोध या बुद्धत्व की प्राप्ति भी नहीं होती।

व्रणे व्रणे / जायते न तत्त्वबोधा
दुःखेन बुद्धत्वमपि न जायते
शनैश्शनैर्विस्मृतं भवति जीवितम्।
केवल / रुढ़ग्रन्थिर्व्रणो भवति नूनम्
अस्तित्वस्य पर्याय। पृ.–107

'व्रणोरुढग्रन्थिः' संकलन की प्रथम कविता 'हे जीवनबीमा–प्रतिनिधे' में कवि जीवन बीमा की समस्त योजनाएँ, प्रकृति, पशु–पक्षी व समस्त प्राणीमात्र पर लागू होती हो और उन्हें सुरक्षा प्रदान करती हो तो वह समस्त योजनाओं का शुल्क भरने को तैयार है। यह कविता कवि के प्रकृति–प्रेम, मानवीय–प्रेम व शाश्वत् मूल्यों का स्वीकार है तो बॉम्बमहाशयः, आह्वयति वृद्धाम्बा, प्रणयमार्गे कश्चित् सूचनाः,

जीवितसङ्गणके, मृत्योः सेवाकेन्द्रम्, वर्तमानपत्रस्य लघुकानि विज्ञापनानि आदि कविताओं में वर्तमान कालिक विडम्बनाओं को कवि ने नये निराले ढंग से नये बिम्बों व प्रतीकों के द्वारा प्रस्तुत किया है।

'व्रणोरुढग्रन्थिः' काव्यसंकलन के द्वितीय खण्ड में 'अलकनन्दा' शीर्षक से कुछ कविताएँ संकलित हैं। अलकनन्दा कवि की वह दिव्य प्रेयसी है, जो जीवन की विषमताओं के मध्य जीवन जीने का आलम्बन व आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करती है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी के शब्दों में "ध्वंस को स्वीकार कर लेने के बाद ही उसकी खोज आरम्भ होती है, जो सार्थक है और अभी शेष है। हर्षदेव ने इस शेष सार्थक अवशिष्ट को 'अलकनन्दा' कहा है।"[37]

'अलकनन्दा' कवि के सर्वस्व जीवन की वह शाश्वत् संवेदना है, जो कविता के माध्यम से उसे नवजीवन प्रदान करती है। हर्षदेव माधव की 'अलकनन्दा' भवभूति के 'पुरायत्रस्रोतः' की करुणा को लेकर बाणभट्ट की कादम्बरी को पुनर्जीवन प्रदान करती है– **अलकनन्दे!/**

आसीद् यत्र पुरा स्त्रोतस्तत्रैव मे शवं पतितमस्ति।
मां पुनर्जीवनं दातुं/कादम्बरीवत् पुनरपि प्रयच्छ मे
वसन्ताऽऽविष्कार सूचकंचुम्बनम्।। **पृ.–123**

'अलकनन्दा' का सौन्दर्य अनुपम है। विश्व के सभी सुन्दरतम् उपमानों से तुलना करते हुए कवि ने कहा है कि वेनिस नगर का जल हो, क्लियोपेष्ट्रा का सौन्दर्योन्माद हो, त्रिवी के धारायन्त्र का आवेग हो, डेन्टि कवि की मुग्धता हो, टाइबर नदी का प्रवाह हो, माइकेल एंजोलो का शिल्प हो अथवा मोनालिसा की दिव्य मुस्कान हो सभी कुछ उसमें समाहित है।

'व्रणोरुढग्रन्थिः' काव्यसंकलन का तृतीय खण्ड 'मृगया' है। कवि ने मनुष्य के उस मृगत्व (लघुरूप) की चर्चा की है जो स्वयं के सामने अन्य किसी के विषय में सोच ही नहीं पाता। वर्तमान में भय व संत्रास में जी रहे मनुष्य की तुलना उन्होंने 'मृग' से की है। "शिकारी के बाण के भय से भयभीत मृग की लघुता–भीरुता–दीनता वास्तव में वर्तमान मनुष्य की मनोग्रन्थियों का पर्याय बन गयी है। लघु से मुक्ति के लिए मृगत्व से मुक्ति ही मानो एक मात्र विकल्प है।"[38] वर्तमान में आतंकवाद, पर्यावरण–प्रदूषण, प्रान्तीयतावाद, नक्सलवाद आदि समस्याएँ मृगया के ही नवसंस्करण है। मृग (मनुष्य की लघुता) की मृत्यु ही मृगया का फल है–

व्याधानां नामानि परिवर्तनाधिगच्छति।/किंतु
मृगस्यमृत्युमृगयायाः फलमस्ति। पृ.–157

यही कारण है कि 'दिशः' कविता में कवि, हिमालय से मस्तक समुद्र से वेदना का विनाश, सूर्य से कमल का उन्मीलन, जल की प्रचण्ड उर्मियों में स्वयं को स्थापित करने की प्रार्थना विषम परिस्थितियों में जीवन जीने की अदम्य जीजिविषा उत्पन्न करता है।

18. भाति ते भारतम्

काव्यकार डॉ. हर्षदेव माधव की नवीनतम कृति है– 'भाति ते भारतम्'। यह एक प्रतिकाव्य (पैरोडी) है जो स्वनामधन्य कवि रमाकान्त शुक्ल जी की बीस भागों में प्रसूत दीर्घ कविता 'भाति मे भारतम्' से प्रेरित है। मूल कवि द्वारा प्रयुक्त 'स्रग्विणी छन्द' को ही कवि माधव ने अपनाया है। 'भाति ते भारतम्' में कविवर हर्षदेव माधव ने विश्व के संभावित सबसे बड़े उपभोक्ता–बाजार (जनसंख्या के आधार पर) भारत में आज क्या हो रहा है आदि विषयों को 104 श्लोकों में समेटने का सफल प्रयास किया है। प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, विदेशी आर्थिक मदद से चलने वाला भारत, नदियों का प्रदूषण, ढोंगी एवं पाखण्डी धर्मगुरु, राम–जन्मभूमि विवाद, बिहार का चारा घोटाला, आधुनिक निरकुंश नारी, मूल्यवृद्धि, महंगाई, एड्स का बढ़ता प्रकोप, काश्मीर में आतंकवाद, ह्रास होते जीवन–मूल्य, संवाद पत्रों एवं टी.वी चैनलों का गिरता स्तर, काला–धन, हिन्दी–फिल्मों का बढ़ता प्रभाव, बहुराष्ट्रीय–कम्पनियों द्वारा फैलाया गया पेप्सी–कोक का मायाजाल, शंकराचार्य को कारावास एवं शिबू सोरेन की मुक्ति, स्वामीनारायण सम्प्रदाय के साधुओं का 'सेक्स सी.डी. काण्ड', दहेज–प्रथा, नारी–प्रताड़ना, आतंकवाद, नक्सलवाद की बढ़ती समस्या, बांग्लादेशियों की घुसपैठ, विश्वविद्यालयों में व्याप्त अनाचार, शिक्षा का गिरता स्तर, अध्यापकों की अनैतिकताएँ, अंग्रेजी–भाषा एवं संस्कृति का प्रभुत्व, आधुनिक सुख–सुविधाओं के भोगी धर्मगुरू, सत्ता में सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार, प्रदूषण, दलाईलामा, सारहीन पंचशील–नीति, वृद्धों की अवमानना मुम्बई के भाई लोग, दक्षिण–भारत का राष्ट्रभाषा–हिन्दी–विरोध, राबड़ी–लालू–मायावती–मुलायमसिंह जैसे राजनेता, क्रिकेट खिलाड़ियों को प्रभूत–मान–सम्मान–धन किन्तु सैनिकों की उपेक्षा, कागजों पर बनी किन्तु क्रियान्वयन न होने वाली नीतियाँ, लेखकों की अवहेलना (पुस्तकों की उपेक्षा) वनों का विनाश, कारगिल युद्ध (सैन्य–शवच्छदकाफीन) काण्ड, भ्रष्ट एवं अपराध–संकुल

राष्ट्र, बढ़ती अपरिमित जनसंख्या, शेयर बाजार का गिरता–उठता अंक (सेन्सेक्स) तेलगी काण्ड, लक्ष्यहीन–संस्कारहीन युवावर्ग, टी.वी. द्वारा प्रदूषित पारिवारिक वातावरण, बढ़ता आयकर, नौकरी में भाई–भतीजावाद, धर्म–कर्म धन बटोरने का सर्वोत्कृष्ट साधन, भारत से प्रतिभा–पलायन, सेक्सगर्त में निमग्न भारत, आतंकवाद से त्रस्त भारत, राम को रामा, योग को योगा कहने वाला बुद्धिहीन भारत, संसद पर हुआ आतंकवादी हमला, गुटखा–धूमपान, मद्यपान का बढ़ता जोर, दाउद–सलेम और निम्नपृथिवी (अण्डरवर्ल्ड) की सक्रियता, वीरप्पन द्वारा हस्तिदन्तों तथा चन्दनवृक्षों की तस्करी, प्रदूषित जलवायु आदि–आदि ऐसा कौन–सा ज्वलन्त विषय है जो कवि की लेखनी से अछूता रह गया है।[39]

शुक्ल जी की रचना **"भाति मे भारतम्"** को पढ़ने के बाद हर्षदेव माधव की कविता पढ़ते हुए लगता है मानो एक ही नाम के दो भिन्न देशों के विषय में पढ़ रहे हैं। शुक्ल जी भारत के स्वर्णिम अतीत की बात करते हैं। शुक्ल जी द्वारा वन्दित प्राचीन भारत की विश्वबन्धुत्व, विश्वकुटुम्बत्व की नीति आज के भारत में किस अवस्था में है–

विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत्पावनं / प्रान्तभाषा विभक्तञ्च धर्मादिभिः।
स्वं गृहं वह्निना सेचयत्सन्तते / चीनपाकादिभीतं प्रियं भारतम्।। श्लोक सं.–1

नेहरू, मालवीय, गोखले, तिलक जैसे नेताओं के देश में राबड़ी, लालू मायावती जैसे आज के नेता सुशोभित हैं–

"राबिड़ी–लालु–मायावती–मण्डितं / फूल्लदेवी (फूलनदेवी)–मुलायमस्वरैर्गर्जितम्।।
तर्जितं त्रासवादेन संसद्गृहं / गान्धि–मार्गाच्च्युतं कीदृशं भारतम्।।" श.सं.–27

हमारे तीर्थ–स्थान जो पहले मोक्ष एवं धर्म–कर्म के केन्द्र थे, वही आज लालची पण्डों, पाखण्डी साधुओं की लीलाभूमि बन गये हैं–

"यच्च तीर्थेषु कोलाहलैराकुलं / लुब्ध–पण्डा–जनैर्वञ्चकैः साधुभिः
धर्मपाखण्डदिग्धैर्जनैश्चादितं / धार्मिकैर्वञ्चितं लुण्ठितं भारतम्।।" श.सं.–6

तथाकथित संस्कृत–भाषा के पण्डितों के हाथों बन्दी संस्कृत भाषा की अवस्था पर एक पद्य द्रष्टव्य है–

"सूत्रपारौर्सबद्धाऽस्ति भाषाप्रिया/प×जरस्था मृता मूर्च्छिता स्पन्दते।

क्लासिकल लेखने का नवा चेतना/पैतृके कूपके मूर्च्छितं भारतम्।।" श.सं.–32

आधुनिक भारत के युवकों की दिशाहीनता एवं बेरोजगारी पर कवि कहते हैं–

"नाभिजात्यं न विद्या न भक्तिस्तथा/नैव विद्यारतिर्नैव शास्त्रे गतिः।

ते हि कालेज उद्यानभृङ्गा सखे/ध्येयहीनाः युवानो हि ते भारते।।" श.सं.–77

ऐसा हमारा भारत आज इस प्रकार की परिस्थितियों से जूझ रहा है–

"यत्र मोक्षस्य मार्गं भणन्त्यागमा/स्तत्र भोगस्य मार्गं गतास्साधवाः।

द्रव्यमाप्तुं मनीषा क्रियां वै विना/भाग्यवादं भजद् भावुकं भारतम्।।" श.सं.–89

इस प्रकार कवि ने भारत की वर्तमान परिस्थितियों की ओर पाठक–वर्ग का ध्यान आकृष्ठ किया है।

19. 'तथास्तु'–हास्ये किं नु हास्यप्रदम्ः

सिसृक्षा की अविरल जिजीविषा डॉ. हर्षदेव माधव की–तथास्तु। हास्य व्यंग्य तथा तज्जन्य अवसाद/तरस की मिली–जुली प्रतिक्रिया का अवतरण।

कथमपि भ्रमित होने का अवसर नहीं है। कारण स्पष्ट है। कृति के प्रत्येक चयनित शीर्षकों (विषयों) के उत्पाद्य व्यंग्योक्तियों से गर्भित हैं जो समाज की तमाम समसामयिक कुरीतियां, विरूपताओं, विपर्यताओं की जमकर खिल्ली उड़ाते हैं। कहीं–कहीं तो इन पर हर्षदेव जी ने सीधा संधान किया है। 'कृति' तथास्तु में डॉ. माधव के विचार कुल 34 शीर्षकों में विषय–वैविध्य के अनुसार मुखरित हुए हैं जिनमें 'भाति ते भारतम्' तो पूर्व में भी इसी शीर्षक से एक कृति का स्वरूप ग्रहणकर साहित्यिकों का अतिशय मनोरंजन कर चुका है। सर्जना 'तथास्तु' एक अनुकरण काव्य (PARODY) है। 'भाति ते भारतम्' को छोड़कर शेष सभी शीर्षकों की विषयवस्तु में अनुकरणात्मकता की छटामुखर हुई है। इन अनुकरणों में श्रीमद्भगवत् गीता, दुर्गासप्तशती, विख्यात स्तोत्रों यथा 'अधरं मधुरं वदनं मधुरम्......', 'भज गोविन्दं भज गोपालं' पुराणों की शैली का अनुकरण करते श्लोकों, यहाँ तक कि वेदमंत्रों तथा उपनिषद्–मंत्रों पर आधृत अनुकरण की भी झलक देखने को मिलती है। श्रीमद्भगवत्गीता के श्लोकों का संबल बहुतायत रूप से ग्रहण किया गया है।

ग्रंथ का आवरण पृष्ठ पलटते ही–**शान्ताकारं भुजग शयनं पद्मनाभं सुरेशं....** पर आधृत निम्न अनुकरण से ग्रंथ के हास्य–व्यंग्य का श्रीगणेश होता मिलता है जिसमें हर्षदेव जी ने सर्वप्रथम भवदुःखहर हास्य की वन्दना की है–

कान्ताकारं कुसुमसदृशं हर्षनाभं मुदेशं
विश्श्वाधारं विकचवदनं शोभमानं मनोज्ञम्।
वक्त्रे कान्तं कमलमसृणं योगिभिर्नैव प्राप्तं
हास्यं वन्दे भवदुःखहरं ब्रह्मवत् सर्वव्याप्तम्।। पृ.सं.–1

किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ में स्तवन की अति प्राचीन परिपाटी का निर्वहन। प्रस्तुत कृति हास्य–व्यंग्य की बाँह पकड़ कर चली है अतएव हास्य का स्तव विषय–संगत है। शब्द अधरों की कारागार से मुक्त होते ही यदि अपना चमत्कार कर दिखाएँ तो यह कृति की सिद्दि के शुभ संकेत ही कहलायेगें। प्रकारान्तर से इन शब्दों के प्रयोक्ता का प्रयास भी उतना ही सफल कहा जायेगा जिसके कौशल ने इनके साथ क्रीड़ा करने में पूरी जागरुकता का परिचय दिया है। जगत् का समस्त हलन–चलन शब्दों के ही व्यापार से, उसी के चमत्कार से है क्योंकि–

शब्द मिस्री, शब्द काँटे/शब्द लोरी, शब्द चाँटे
शब्द मंत्रों के प्रणेता/शब्द जनता, शब्द नेता
ठाल पर जुबानों के/फूल जैसे डोलते हैं
शब्द जब–जब बोलते हैं– पृ.सं.–1

साधारण व्यक्ति से लेकर डॉन तक, देश से परदेश तक, गृहशिक्षा (ट्यूशन) से लेकर विद्यालय तथा महाविद्यालयीय शिक्षा, शिक्षक तथा शिक्षार्थी तक, बाहर से लेकर घर के भीतर तक, सास–ससुर तथा वधू तक, मोबाइल की मोबाइलिटी, मुद्रा, डॉलर, नेता, पत्रकार, जीवधारी तथा निर्जीव (बॉम्ब) सभी को सर्जक ने अपने व्यंग्य–जाल के ताने–बाने में आवृत्त कर प्रस्तुत कर दिया है जहाँ जो कुछ भी हो रहा है आवश्यकता है इस जाल के झरोखे से आँख फाड़ कर झाँकने की। सभी कुछ इसमें दिख जायेगा। आज देश तथा समाज में जो कुछ भी घट–खट रहा है। 'तथास्तु' समाज का चित्र है जो सर्जक के मन की प्रतिकृति के रूप में उत्कीर्ण हुआ है।

संस्कृत नाट्य संग्रह

(1) मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति

'श्री हर्षदेव माधव' का यह प्रथम नाट्यसंग्रह है। इसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम विभाग में सात आधुनिक नाटिकाएँ हैं और दूसरे विभाग में सात आलोचनात्मक निबंध हैं। पाँच नाटिकाओं में मृत्यु की भ्रांति होने के कारण कवि ने इस कृति का नाम 'मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति' रखा है।

नखक्षतः नामक दूसरे भाग में कवि ने सात आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं जैसे–

1. सन्धानस्यानुसन्धानम् में प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी के 'सन्धानम्' नामक काव्यसंग्रह की समीक्षा है।
2. राधावल्लभ त्रिपाठी के ही 'गीतधीवरम्' नामक रागकाव्य का विश्लेषण
3. डॉ. केशवचन्द्र दास की साहित्य साधना का विवेचन
4. जापानी काव्य प्रकार 'तान्का'
5. हाइकु
6. डॉ. केशवचन्द्र दास के 'विसर्ग' उपन्यास की समीक्षा
7. स्वयं लेखक की साहित्य साधना का विवरण

2. कल्पवृक्ष

श्री माधव का यह दूसरा नाट्यसंग्रह है। इसमें पाँच नाटकों की कथावस्तु 'कल्पवृक्ष' पर आधारित है। प्रथम और द्वितीय नाटक में कल्पवृक्ष प्राप्त करने वाले को दूसरी कामनाओं की इच्छा नहीं रहती है। जबकि उसे 5 नाटकों में प्राप्त हुए कल्पवृक्ष की कीमत मालूम नहीं पड़ती है और वह कल्पवृक्ष की मांग करते हैं। कवि ने इस नाट्यसंग्रह में परोक्ष दृष्टि से वृक्ष की महिमा बतायी है।

"Kalpavrksah absurdity of the present age/Indian philosophic mystery, novel experiments of stage, New style and new thinking are the features of this collection. The play writer gives new approach to myths."[40]

डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा लिखित इन दोनों नाटकों का विस्तार से विवेचन तृतीय अध्याय में किया गया है।

संस्कृत उपन्यास (डायरी)–मूकोरामगिरिर्भूत्वा

डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा लिखित इस डायरी का विस्तार से विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

आधुनिक संस्कृत का आलोचनात्मकग्रंथ–नखदर्पण

विवेचन ग्रंथ

1. **महाकवि माघ** – डॉ. हर्षदेव की यह पुस्तक उनकी साहित्यिक विवेचना शक्ति का परिचय देती है। इस पुस्तक में कवि ने माघ का जीवन समय और 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य का काव्यमय शैली में वर्णन किया है।

2. **संस्कृत समकालीन कविता** – श्री हर्षदेव माधव का यह दूसरा विवेचन ग्रंथ है, जिसमें सात प्रकरण है। प्रथम प्रकरण में साहित्य विकास के भिन्न–भिन्न स्तर, दूसरे में साम्प्रतम् और आधुनिकता का भेद तीसरे में आधुनिक कविताओं का परिचय, चौथे में आधुनिक कवियों के मुख्य काव्य संग्रहों की समीक्षा, पाँचवें में आधुनिक कविताओं की चर्चा, छठवें में आधुनिक कविताओं में प्रेम की अभिव्यक्ति और अंतिम प्रकरण में आधुनिक कविताओं में प्रकट होने वाले युगबोध की प्रस्तुति की है।

3. **पौराणिक कथाएँ और आख्यान– एक अवलोकन** – इस पुस्तक में 16 पौराणिक कथाओं का विवेचन किया है। पुरुरवा–उर्वशी कथा, जय–विजय की कथा, वामन अवतार की कथा, मत्स्यावतार की कथा आदि कथाओं और आख्यानों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

4. **नखानां पाण्डित्यम्**– श्री हर्षदेव माधव का यह प्रथम विवेचन ग्रंथ है, इसमें 15 लेख हैं। प्रथम लेख पुराण विषयक है। चार, पाँच, पन्द्रह तंत्र विषयक हैं। दूसरें और आठवें लेख में प्रधान कृति के बारे में वर्णन किया गया है और बारहवें लेख में सौन्दर्यलहरी के आधार पर शंकराचार्य की काव्य शैली और भाषा की विशेषताओं का मार्मिक विवेचन किया गया है।

5. **नखचिह्न –** यह विवेचन ग्रंथ 2001 में प्रकाशित हुआ है इसमें नौ गुजराती लेख, दो हिन्दी और एक अंग्रेजी लेख हैं।

प्रतिनिधि कविताएँ

(1) **Head Lines Again** – कवि ने अंग्रेजी भाषा में अनूदित काव्यों का संकलन किया है। यह कवि और भरत याज्ञिक की संस्कृत कविताओं का अनुवाद संकलन है। जो Indian Literature Triveni कैलीफोर्नियाँ से प्रकाशित Poet में प्रकाशित हो चुके हैं।

(2) **पक्षी के पंख पर गगन –** यह पुस्तक चारुतर संस्कृत परिषद् से प्रकाशित है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विनोद नारायण सिंह, ओमप्रकाश गुप्ता, राजेन्द्र मिश्र और सुरेन्द्र जोशी आदि कवियों की कविताओं का अनुवाद किया गया है।

शब्दकोष

(1) **श्री वाणी शब्द कोष (2000 ई.)** यह पुस्तक Picture Dictionary के सहित शब्दकोष है, श्री माधव ने इसे चतुर्मासी कोष कहा है, क्योंकि इस शब्दकोष में संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी इन चार भाषाओं के पर्याय शब्दों का संग्रह है।

शोध–निर्देशन – (Got Ph.D. and under Ph.D.) डॉ. हर्षदेव माधव के मार्गदर्शन में तीन छात्रों ने अपना शोधकार्य पूर्ण किया है।

1.	डॉ. रवीन्द्र खांडवाला –	वेदमाता गायत्री मंत्र–तंत्र अने यंत्र परिप्रेक्ष्य में एक अभ्यास, सन् 2004
2.	डॉ. जातुस जोशी –	शाक्त तंत्र सन्दर्भ में सौन्दर्यलहरी–एक अभ्यास सन् 2006
3.	डॉ. स्नेहल जोशी –	आधुनिक संस्कृत ग़ज़ल–स्वरूप और भाषाकर्म सन् 2008

डॉ. हर्षदेव माधव के मार्गदर्शन में अध्ययनरत शोध–छात्र एवं उनके विषय

1. प्रो. भरतकुमार परमार –"संस्कृत रूपकों में मानव सम्बन्ध एक अध्ययन मुख्य शास्त्रीय नाटकों के संदर्भ में"।

2. प्रो. मनोज प्रजापति –"प्रक्षिप्त संस्कृत रूपकों में युद्धों अने युद्ध वर्णनोः एक अभ्यास"।
3. प्रो. अशोक पटेल–"सर्वशुक्लानां कवि डॉ. रमाकान्त शुक्ल एक अध्ययन"।
4. कु. पारुलबेन चौहान–"आधुनिक गद्य मा नया आयामों–एक अभ्यास डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी और डॉ. बनमाली विश्वाल के आधुनिक गद्य साहित्य के संदर्भ में"।
5. प्रो. सुभाष गरासिया–"संस्कृत रूपकों मां विवाहपूर्वना अनेपछीनाप्रणय सम्बन्धों"।
6. कु. सुषमा ढोलकिया–"सम्राट गद्य स्वामी कलानाथ शास्त्री–देवर्षिकलानाथ शास्त्री का आधुनिक संस्कृत साहित्य में योगदान एक अध्ययन"।
7. प्रो. जयसिंह गामवित–"संस्कृत रूपकों मां गोण पात्रो ना विनियोग"।
8. प्रो. प्रवीण पण्ड्या–"काव्यशास्त्र–अभिनवकाव्यलंकारसूत्र अभिराजयशोभूषणम् प्रदेयम् (संस्कृत)"।
9. अश्विनी जोशी–"भगवान सूर्य नारायण–मंत्र, तंत्र, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र और मूर्तिविधान के संदर्भ में"।
10. प्रो. विनोद पटेल–"संस्कृत शास्त्रों में चन्द्र का महत्त्व"।
11. महेश भाई जोशी–"महादेवी लक्ष्मी–लक्ष्मी तन्त्रस्य विशेष परिप्रेक्ष्य एक अध्ययनम् (संस्कृत)"।

डॉ. हर्षदेव माधव की कविताओं पर शोध

डॉ. हर्षदेव माधव की नूतन रसभरी कविताएँ भला किसे लिखने को प्रेरित नहीं करती है। भारत वर्ष के विद्वानों एवं शोधार्थियों ने माधव जी के काव्य संग्रहों पर शोध एवं पुस्तकें लिखी हैं जिनकी सूची निम्न प्रकार है–

1. आधुनिकता और मृगया की कविता/नीना देवासकर M.phil (1996) सागर वि.वि.
2. आधुनिक भावबोधनीसंस्कृतकविता : मृगया/रीता त्रिवेदी M.phil (1997)
3. हर्षदेव माधवनी कविताएँ 1985–1994/डॉ. रश्मिकान्त ध्रुव Ph.D. (1998)
4. हर्षदेव माधवनी कविता (1995–1999)/डॉ. सी.बी. बालस Ph.D. (2005)
5. "मोनो इमेज काव्य स्वरूप अने हर्षदेव माधवनी कविता"/डॉ. मनसुख पटोलिया Ph.D. सरदार पटेल वि.वि. (2006)

6. गुजरात के स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत नाटक/डॉ. स्वाति कुलश्रेष्ठ Ph.D. आगरा वि.वि. 2006
7. हर्षदेव माधव की कृतियों का आधुनिक संदर्भ में मूल्यांकन/प्रो. प्रताप कुशवाहा दिल्ली वि.वि. (2007)
8. अन्तिम दशकनी आधुनिक संस्कृत कविता (अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी, हर्षदेव माधव के काव्यों के संदर्भ में Ph.D./सौराष्ट्र वि.वि.
9. आधुनिकता अने आधुनिकताना कवि हर्षदेव/प्रो. हंसागुजरिया सौराष्ट वि.वि
10. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अने हर्षदेव माधवना काव्योंमाप्रणय निरूपण/प्रो. ज्योति बेन के. भट्ट, सौराष्ट्र वि.वि.

डॉ. हर्षदेव माधव की कविताओं पर शोध–पुस्तकें

1. डॉ. रीता त्रिवेदी 'आधुनिक भावबोधिनी कविता–मृगया (1999) पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद
2. डॉ. रश्मिकान्त ध्रुव, साम्प्रतं संस्कृतमा आधुनिकतानोसंदर्भ (2000) श्रीवाणी अकादमी, चाँदखेड़ा।
3. श्रुति हर्षदेव–संस्कृत में अर्थ पूर्ण अभिव्यक्ति की कविता (2004) श्रीवाणी अकादमी, चाँदखेड़ा।
4. डॉ. रश्मिकान्त ध्रुव, आधुनिक काव्यवादों अने संस्कृत कविता (2006)
5. डॉ. सी.बी. बालस और डॉ. के. एम त्रिवेदी 'आधुनिक संस्कृत काव्य समीक्षा' 2008 (In Reference to Harshdev Madhav's Literature)
6. संस्कृतमा आधुनिकतानो पगरवः अछान्दस काव्यों (हर्षदेव माधवनी कवितानापरिप्रेक्ष्यमा)

Posts Held

1. President-Shri Vani Academy
2. Member & Trustee-Sanskrit Seva Samiti since 1990
3. Member-Brhad Gujarat Sanskrit Parishad
4. Member of Reserch Board of Advisors, The American Biographical Institute Since 2003

5. Member of Editional Board ‘DRIK’ Sanskrit Magazine
6. Ex-Member of General Body of Sanskrit Sahitya Academi from 1994-1999
7. Ex-Member of executive council of Sanskrit Sahitya Academi from 2000-2004
8. Served as a Resoruce Person-Saurashtra Uni., Rajkot for three years.
9. Member of academic council Somnath Sanskrit Uni. nominated by H.E. The Governor Shri, Gujarat State from 2007
10. Recognized as the Ph.D. guide in Kaccha Uni. Bhav Nagar Uni., North Gujarat University, Somnath University and Gujarat University.

प्रशस्ति–पत्र

आचार्य हर्षदेव माधव की कविताओं का रसपान करने वाले विद्वानों ने उनकी काव्य रचनाओं के बारे में अनेकानेक सूक्तियों में अपना अनुभव प्रकट किया है।

महान् आचार्य डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने डॉ. हर्षदेव माधव के काव्य को और उनकी नूतन विचारधारा को एक विलक्षण कवित्व बताते हुए कहा है कि–

"अन्धास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णः परेर्भवेत्।
परेषां तु यदाक्रान्तः पन्थास्ते कवि कुञ्जराः।"

इति नीलकण्ठदीक्षितसूक्तस्यनुसारेण सर्वथा कवि कुञ्जरतां स्वां प्रमाणयितुंसन्नद्धः रूढ़मार्गपरित्यागे रूढ़ीनां ध्वंसाय समुत्साहे च सर्वथा अनेन संस्कृत काव्य परम्परा परित्यक्ता। अत एव मौलिकाऽयं कवि न पारम्परिकः।

"नूतनप्रयोगविचक्षणो माघकविविलक्षणं
कवयति, विलक्षं च विषये पण्डितजनम्।"

डॉ. हर्षदेव माधव के 'मृगया' काव्य संग्रह के विषय में 'राष्ट्रवीणा' मासिक पत्रिका में डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता अपने शब्दों में इस प्रकार बताते हैं– "पिछले दो दशकों से संस्कृत एवं गुजराती काव्य रचना में सक्रिय कवि हर्षदेव माधव की सृजन यात्रा का चतुर्थ पुष्प है– 'मृगया'।

दोनों ही भाषाओं के प्रतिष्ठित सामयिकों में स्थान प्राप्त यह युवा कवि गुजरात में संस्कृत कविता का माहौल बनाने के लिए बराबर प्रयत्नशील है। परम्पराबद्ध संस्कृत कविता को आधुनिक वैश्विक संदर्भों से जोड़ने का कवि का काव्य पुरुषार्थ सचमुच सार्थक है।"

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक संस्कृत–साहित्य जगत् में अपने नवीन रचनाशिल्प, भाव–गाम्भीर्य के साथ सहज एवं मर्मस्पर्शी काव्य के सर्जक डॉ. हर्षदेव माधव अपने अनुपम प्रकाश के साथ अवतरित हो चुके हैं। चमत्कारिक चिन्तन के धनी डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा रचित 24 काव्य संग्रह, 2 नाट्य संग्रह, एक उपन्यास (डायरी), 4 विवेचन ग्रंथ कुल मिलाकर 117 कृतियों में वर्तमान समाज के ज्वलन्त मुद्दों को प्रस्तुत किया गया है। वे समाजचेता कवि हैं और उनकी कविताएँ समाज से सीधा साक्षात्कार करती हैं। वे सूर्योदय, सूर्यास्त और चन्द्रोदय, चन्द्रास्त का वर्णन करने में नहीं खपे हैं बल्कि वह अपने आस–पास के वातावरण से दैनन्दिन घटने वाली घटनाओं से व्यथित है। वे स्वयं को 'व्यथा का कवि' मानते हैं इसलिये उनकी रचनाओं में 'आह से उपजा गान' है किन्तु यह प्रियतमा–वियोग–जन्य आह नहीं है बल्कि लुप्त होती जा रही मानवता के कारण उपजी आह है। समस्त विश्व में घटने वाली अमानवीय घटनाओं से कवि व्यथित होता है उनकी रचनाएँ उनके मन–दर्पण पर पड़ने वाली विभिन्न संवेदनाओं का प्रतिबिम्ब है। वे अपने वर्ण्य विषय को चित्रात्मकता, इन्द्रियग्राह्यता से सजाते हुए भी उसमें अलौकिक पारमार्थिक चिन्तन का समावेश बहुत सहजता से कर देते हैं।

इनके समग्र कविकर्म पर दृङ्निक्षेप करने पर किसी अध्येता को आश्चर्य हो सकता है कि ये प्रणय के भावुक गायक भी है और विद्रोह–विमति–असन्तोष के ऊँचे स्वर भी। शिल्प के साथ कथ्य का वैविध्य भी इनकी रचनाधर्मिता की खूबी है। कहाँ तो प्रणय की अकुलाहट, तड़पन और कहाँ आक्रोश, अस्वीकार की दहाड़? कहाँ 'अंगुल्याख्य पुंश्चलियों की क्रीड़ा' का संकेतन और कहाँ औपनिषदिक प्रवाह? वस्तुतः डॉ. माधव उस जीवन के उद्गाता है जो आरोह–अवरोह को झेलते हुए चलता है।

अपने भावों के संप्रेषण के लिए हाइकु, तान्का, सिज़ो और पारम्परिक स्रग्विणी छन्द के प्रयोग में सिद्धहस्त डॉ. हर्षदेव माधव की कविता समकालीन संस्कृत भाषा की नयी प्रयोगधर्मी कविता है जो जीवन के संघर्ष व भटकाव के मध्य सफलता के नये अर्थ खोजती है। परम्परागत बन्धनों से मुक्त वह वैश्विकता के उस धरातल पर पहुँचना चाहती है जहाँ देश, जाति, धर्म–सम्प्रदाय की कोई सीमा न हो, जहाँ सृष्टि का रम्य प्रकाश व वरेण्य तेज हो। संवेदनशील कवि की यही कविता यात्रा उसे समकालीन ही नहीं सार्वकालिक भी बनाती है।

❖❖❖

संदर्भ सूची

1. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.सं.–221
2. भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि– डॉ. इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव'–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–164
3. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–276
4. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, प्ररोचना से उद्धधृत
5. स्पर्श लज्जाकोमला स्मृतिः–हर्षदेव माधव, पृ.–113
6. भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–144
7. भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–164
8. भारती पत्रिका अक्टूबर 1998, पृ.–48
9. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–246
10. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–2
11. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–68
12. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–168
13. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–228
14. अर्वाचीन संस्कृत–साहित्य दशा व दिशा–डॉ. मंजुलता शर्मा, पृ.–47
15. तव स्पर्शे स्पर्शे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–73
16. तव स्पर्शे स्पर्शे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–78
17. अलकनन्दा–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–74
18. ऋषेः क्षुब्धे चेतसि–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–22
19. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–3
20. ऋषे क्षुब्धे चेतसि–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–54
21. कण्णक्याक्षिप्तं–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–49
22. Rajendra Nanvati Review of रथ्यासु A Journal of the oriental Insitute vol.36 nos 1-4 sept. 1986 June 87 PP.312-314
23. स्पर्शलज्जा कोमला स्मृतिः –डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–122
24. पुरा यत्र स्रोतः –डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–27
25. कालोऽस्मि– डॉ. हर्षदेव माधव 1999, पृ.–37

26. कालोऽस्मि– डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–25
27. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि– डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–164
28. आधुनिक संस्कृत में अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति की कविता–श्रुति हर्षदेव, श्री वाणी अकादमी चांदखेड़ा (डॉ. हर्षदेव माधव की कविता पर विवेचन लेखों का संचय)
29. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि– डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–34
30. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि– डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–164
31. मृत्युशतकम्, काव्य 1 से 4
32. भर्तृहरि 'नीतिशतकम्' श्लोक 18
33. Those whome thou thinj'st, thou dost overthrow, Die not, poore death, nor yet canst thou kill mee.
34. नीतिशतकम्–भर्तृहरि–श्लोक 24
35. दृक् पत्रिका 6 पुस्तक चर्चा अजय कुमार मिश्र, पृ.–106
36. उत्तररामचरित–महाकवि भवभूति 2/26
37. सब कुछ का निष्क्रमण–डॉ. हर्षदेव माधव की कविता– प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.–8
38. मृगयाः आधुनिकता की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति की कविता–डॉ. ओमप्रकाश गुप्त, पृ.–21
39. दृक् अंक–21 जनवरी–जून 2009, पृ.–94–95
40. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी सागरिका : 2002 ग्रंथसमीक्षणम् : पृ.–88–89

द्वितीय अध्याय

गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास अर्वाचीन संस्कृत साहित्य तक

प्राचीन गद्य का उद्भव एवं विकास

साहित्य में जीवन का स्वाभाविक प्रतिबिम्बन होता है, इसी कारण संस्कृत में भी पद्य साहित्य के समानान्तर ही गद्य साहित्य प्रतिष्ठित है। संस्कृत में गद्य का प्रयोग वैदिककाल से होता आया है। प्राचीनतम संहिता ऋग्वेद में गद्य शैली के दर्शन नहीं होते। इस सम्बन्ध में ओल्डेनबर्ग आदि प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति में ऋग्वेद के संवाद सूक्त मूलतया गद्य–पद्य सम्मिश्रित थे, किन्तु कालान्तर में शनैः शनैः उनका गद्य भाग लुप्त हो गया इसका कारण यह है कि पद्य की अपेक्षा गद्य शीघ्रता से विस्मृत हो जाता है। ऋग्वेद में भले ही गद्य प्राप्त न होता हो किन्तु अन्यत्र सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में गद्य का प्राचुर्य है। 'कृष्ण यजुर्वेद', 'ब्राह्मण' तथा 'उपनिषद्' अधिकांश गद्य में ही है। अथर्ववेद में भी गद्यांश प्रचुर मात्रा में हैं। संहिताओं का यह गद्य स्वाभाविक, सरल तथा रोचक है। व्यावहारिक संवादों के गद्य की भांति ही संहिताकालीन गद्य में समास बहुलता का अभाव है।[1] वेदों के व्याख्या रूप ग्रन्थ–ब्राह्मणों में, विशेषतया ऐतरेय ब्राह्मण, तैतिरीय ब्राह्मण एवं गोपथ ब्राह्मण में गद्य का बहुत प्रयोग किया गया है। इन ब्राह्मणग्रन्थों में वैदिक मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या, प्राचीन आख्यान तथा कर्मकाण्ड विधि का वर्णन होने के कारण गद्यशैली का प्रयोग ही अधिक समीचीन था। ब्राह्मणकालीन गद्य भी सहज, सुन्दर तथा सरल है। साथ ही अनेक स्थलों पर अलंकार भी सहजतया द्रष्टव्य है।[2] ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यकों और उपनिषदों में भी गद्य का पर्याप्त प्रयोग किया गया है इस गद्य में बहुत छोटे–छोटे सूत्रात्मक वाक्यों एवं पुनरुक्ति के द्वारा विषय को हृदयङ्गम करा देने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। तत्पश्चात् गद्य का प्रयोग 'महाभारत' में दिखाई पड़ता है। यास्क (600 ई.पू.) का 'निरुक्त' गद्य में ही है। पतंजलि ने अपना 'महाभाष्य' गद्य में ही लिखा है। पद्य की अपेक्षा गद्य की श्रेष्ठता दिखलाने के लिए प्राचीनकाल से यह उक्ति प्रचलित है– 'गद्य कवीनाम् निकषं वदन्ति'–गद्य ही कवियों की कसौटी है।

संस्कृत गद्य काव्य का उद्भव कब और कैसे हुआ यह निश्चित रूप से कहना कठिन है गद्य काव्य का सर्वप्रथम दर्शन दण्डी, सुबन्धु, बाण की कृतियों में मिलता है, वह भी पूर्ण विकसित रूप में उनके पूर्व के लेखकों तथा रचनाओं का

इतिहास निविड़ अंधकार में छिपा है। हां इतना तो निश्चित है कि गद्य काव्य भी संस्कृत साहित्य की एक परम प्राचीन शाखा है। कात्यायन (300 ई.पू.) अपने 'वार्तिक' में आख्यायिका का उल्लेख करते है।[3] पतंजलि अपने 'महाभाष्य' में तीन आख्यायिकाओं से परिचित है—वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमीरथी[4]। 'वृहत्कथा', 'पंचतन्त्र' की कथाएँ तथा 'तन्त्राख्यायिका' में 'कथा' और 'आख्यायिका' (जो गद्य काव्य के ही दो भेद है) का जो उल्लेख है, उनका गद्य—काव्य से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं। पर यह निर्विवाद है कि गद्य—काव्य की सृष्टि पद्य—काव्य से लोक—कथाओं के माध्यम द्वारा ही हुई है। कुछ उपलब्ध शिलालेखों से गद्य—काव्य का प्रचार एवं प्रसार स्पष्ट लक्षित होता है। रुद्रदामन के शिलालेख (150ई.) में अलंकृत गद्य—शैली का प्रयोग हुआ है जिसकी तुलना बाण की गद्य शैली से हो सकती है।

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्राप्त गद्य साहित्य का विकास इस प्रकार मुख्यतया दो भागों में विभक्त दृष्टिगोचर होता है— वैदिक साहित्य का गद्य तथा लौकिक साहित्य का गद्य। वैदिक गद्य एवं लौकिक गद्य के सन्धिकाल में सूत्रग्रन्थों की रचना हुई। ये सूत्र भी गद्यात्मक ही थे, किन्तु गम्भीर भावों और विचारों को कम से कम शब्दों में प्रगट करने की प्रवृत्ति की प्रबलता के कारण इन सूत्रग्रन्थों का गद्य नितान्त दुरुह एवं जटिल हो गया। इस सूत्रशैली में क्रियापद का अधिकांशतया अभाव ही रहता था। छः वेदांग, निरुक्त तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी इसी सूत्रशैली के सुन्दर निदर्शन है। परवर्ती युग में दर्शन शास्त्र के आचार्यों तथा वैयाकरणों ने इसी शैली का अवलम्बन करके ग्रन्थों की रचना की ओर कम शब्दों में अधिक से अधिक विचार प्रगट किए।

लौकिक साहित्य का गद्य इससे भिन्न प्रकार का था। यह गद्य पाणिनि की व्याकरण की दृष्टि से नितान्त शुद्ध और परिष्कृत था। यह लौकिक गद्य भी प्रमुखतया तीन प्रकार का माना जा सकता है—पौराणिक गद्य, शास्त्रीय गद्य, साहित्यिक गद्य।

पौराणिक गद्य महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा कतिपय पुराणों में उपलब्ध होता है। पुराणों का अधिकांश भाग तो पद्यमय है किन्तु बीच—बीच में गद्यांश भी प्राप्त

होते हैं। विद्वानों ने वस्तुतः पौराणिक गद्य को वैदिक तथा लौकिक गद्य के बीच की कड़ी माना है क्योंकि इस पौराणिक गद्य में दोनों ही गद्यरूपों की विशेषता प्राप्त होती हैं एक ओर वैदिक गद्य के समान इसमें लघु बन्ध, आर्ष प्रयोग तथा भाषा का सहज प्रवाह है तो दूसरी ओर लौकिक गद्य के समान अलंकारप्रियता एवं प्रौढ़ि भी है। विष्णु पुराणा का गद्य तो विशेषतया प्रासादिक एवं प्रांजल है।[5] शास्त्रीय गद्य का विकास सूत्रग्रन्थों की परम्परा में हुआ। मीमांसासूत्रों के शबरस्वामी कृत भाष्य, वेदान्त सूत्रों के आद्य शंकराचार्य कृत भाष्य आदि में विवेचनात्मक, तर्कसम्मत तथा परिष्कृत शास्त्रीय गद्य देखने को मिलता। साहित्यिक गद्य शैली के अन्तर्गत संस्कृत गद्यकाव्यों का समावेश होता है। यद्यपि शिलालेख गद्यकाव्य नहीं कहे जा सकते, तथापि कतिपय शिलालेखों का संस्कृत गद्य वस्तुतः ही गद्यकाव्य का आनन्द दे जाता है। इस दृष्टि से क्षत्रप रुद्रदामन् का गिरनार का शिलालेख (160 ई.) अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस शिलालेख का रचियता 'स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृत–गद्यपद्यप्रवीणेन' विशेषण से विभूषित किया गया है। हरिषेण की समुद्रगुप्त प्रशस्ति भी सुन्दर गद्यकाव्य के रूप में विशेषतः उल्लेखनीय है।[6] यह प्रशस्ति लगभग पैंतीस पंक्तियों के एक ही समस्त वाक्य में लिखी गई है। यह दोनों शिलालेख बाणभट्ट आदि की समास बहुल शैली के पूर्वरूप माने जा सकते हैं।

इन प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गद्य–काव्य की कला का प्रचार दण्डी, सुबन्धु और बाण से कई शताब्दी पूर्व से हो रहा होगा। किन्तु इन कलाकारों ने अपने अनुपम तथा उत्कृष्ट गद्य–काव्यों के प्रभाव से अपने पूर्ववर्ती लेखकों को ऐसा आच्छादित कर दिया कि उनमे ंबहुतों के नाम भी उपलब्ध नहीं होते। दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट गद्य–काव्य के विकास–काल की चरमोन्नति के प्रतिनिधि लेखक है। इनसे पूर्व दीर्घकाल तक साहित्य के इस अंक का आभास होता रहा होगा, यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं। वररूचि कृत 'चारुमती' कोमिल सोमिक कृत शूद्रक कथा तथा श्रीपालिकृत 'तरंगवती' इस कथन की पुष्टि करते हैं। यद्यपि ये लेखक और ये ग्रन्थ हमारे लिए केवल नाममात्र के ही परिचायक है, तथापि वे गद्य–काव्य की उत्पत्ति और विकास में सहायक है।

गद्यकाव्य के इस उद्भव और विकास को जान लेने पर एक आश्चर्यजनक तथ्य उभरकर सम्मुख आता है कि गद्यकाव्य शैली का इतिहास इतना प्राचीन होने पर भी सातवीं शती ईस्वी के सुबन्धु, बाण, दण्डी आदि की रचनाओं से पूर्व रचे गए गद्यकाव्यों में एक भी आज प्राप्त नहीं होता। इस विचित्र स्थिति के लिए एक ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दण्डी आदि में संस्कृत के साहित्यिक गद्य का जो अत्यन्त परिष्कृत और प्राञ्जल रूप प्राप्त होता है, उसके पीछे अनेक सदियों की सतत साधना और अभ्यास की पृष्ठभूमि अवश्य थी किन्तु दण्डी, बाणभट्ट आदि के गद्य ने जनमानस को इतना चमत्कृत एवं मुग्ध कर दिया कि पूर्ववर्ती गद्यलेखक विस्मृत ही कर दिए गए और उनके ग्रन्थों का पठन–पाठन न होने के कारण विस्मरण के अभेद्य अन्धकार में लुप्त हो गए।

गद्य शब्द गद् धातु (गदि व्यक्तायां वाचि) से यत् प्रत्यय जोड़ने पर निष्पन्न होता है यत् प्रत्यय विधि अर्थात् योग्य (चाहिए) अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः व्युत्पत्ति दृष्टि से गद्य शब्द का अर्थ 'कहा जाने योग्य' है। 'कहने' तथा 'कहने योग्य' में मूलभूत अन्तर है– जितना कुछ संसार में प्रतिक्षण कहा जाता है, उस सबको 'कहने योग्य' निर्धारित नहीं किया जा सकता। इसी कारण गद्य को भी काव्य में परिगणित किया गया है। पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि गद्य के द्वारा विचार अधिकारिक रूप में व्यक्त हो जाते हैं। पद्य की अपेक्षा गद्य की अभिव्यक्ति अधिक सहज भी है और यथार्थ के अधिक समीप भी। यह लय प्रधान पद्य से नितान्त भिन्न है। भाषा के जिस स्वरूप में पद्यबन्ध का परित्याग करके भी भाव एवं रस का समुचित परिपाक पाया जाता है, उसी को गद्य काव्य कहा जाता है।[7] पद्य के रचयिता पर छन्द रचना की विविध व्यवस्थाओं एवं नियमों का नियन्त्रण होता है, किन्तु गद्यकार भावों के अनुकूल भाषा का स्वछन्द प्रयोग करने में स्वतंत्र होता है। इसी स्वतंत्रता के कारण गद्यकार का कार्य अधिक कठिन बन जाता है।

संस्कृत के काव्यशास्त्रकारों ने गद्यकाव्य को मुख्यतया दो विभागों–कथा एवं आख्यायिका में विभक्त किया है। सर्वप्रथम भेदों की चर्चा अग्निपुराण में प्राप्त होती है।[8] इसमें गद्यकाव्य के पाँच भेद कहे गए हैं– आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा एवं कथानिका। तदुपरान्त गद्यकाव्य के भेदों का विवेचन भामह के

अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ में प्राप्त होता है, जिसमें आख्यायिका एवं कथा–इन दोनों भेदों का निरूपण किया गया है। आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में 'गद्यकाव्य' के इन्हीं भेदों का स्पष्ट कथन किया है।[9] आचार्य हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' में गद्यकाव्य के उपर्युक्त दो प्रसिद्ध भेदों के साथ–साथ दस प्रभेदों के स्वरूप को भी स्पष्ट किया है और उन प्रभेदों के उदाहरण स्वरूप रचना का नाम भी उल्लिखित किया हैं।[10] आचार्य विश्वनाथ ने भी इन दोनों गद्यबन्ध–भेदों का विवेचन किया है।[11] कथा और आख्यायिका ये दो भेद ही समस्त शास्त्रीय परम्परा में एक मत से स्वीकृत हुए है। इन समस्त शास्त्रीय परम्परा में एक मत से स्वीकृत हुए है। इन समस्त आचार्यों के मतों का संग्रहण संक्षिप्त रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. आख्यायिका की कथावस्तु इतिहास से ग्रहण की जाती है तथा उसमें तथ्यपूर्ण घटनाओं का समावेश होता है; किन्तु कथा का इतिवृत कल्पना प्रसूत होता है।

2. आख्यायिका में वक्ता स्वयं नायक ही होना चाहिए अर्थात् वस्तु कथन उत्तम पुरुष में होना चाहिए; किन्तु कथा में वक्ता स्वयं नायक अथवा अन्य कोई व्यक्ति भी हो सकता है।

3. आख्यायिका को उच्छ्वासों में विभक्त किया जाता है और भावी घटनाओं की व्यंजना के लिए वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग किया जाता है; किन्तु कथा में यह सब नहीं पाया जाता। (आचार्य विश्वनाथ ने कथा में भी कहीं–कहीं उपर्युक्त छन्दों तथा आर्या के प्रयोग का कथन किया है। सम्भवतः कादम्बरी को दृष्टि में रखकर उन्होंने यह विधान किया हो)।

4. आख्यायिका मे ंकन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ एवं संयोग श्रृंगार, विपत्तियाँ, नायक की उन्नति आदि विभिन्न वर्णन पाए जाते हैः किन्तु ये सारे वर्णन कथा में नहीं होते हैं।

5. आख्यायिका केवल संस्कृत में रची जाती है; किन्तु कथा संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश में भी रची जा सकती हैं।

आचार्य दण्डी ने आख्यायिका एवं कथा में विशिष्ट भिन्नताओं का कथन करके इनकी निःसारता स्वयं ही प्रदर्शित कर दी है। उनके अनुसार ये पारस्परिक भेद वास्तविक नहीं है। कथा या आख्यायिका आदि सब एक ही है, जिन्हें भिन्न–भिन्न नाम से पुकारा जाता है।[12] संस्कृत के विभिन्न गद्यकाव्यों का अनुशीलन करने पर दण्डी का यह कथन नितान्त औचित्यपूर्ण दृष्टिगोचर होता है क्योंकि संस्कृत गद्यकाव्यों में उपर्युक्त शास्त्रीय नियमों का सर्वात्मना पालन नहीं किया गया। तथापि समीक्षक गणों ने बाणभट्ट रचित कादम्बरी को कथा एवं हर्षचरित को आख्यायिका माना है।

गद्यकाव्य में भाषा की रचना अथवा संघटना की दृष्टि से भी शास्त्रकारों ने पर्याप्त विचार किया और गद्यबन्ध के विभिन्न भेदों का उल्लेख किया। वामन ने वृत्तगन्धि, चूर्ण तथा उत्कलिका–गद्यबन्ध के ये तीन प्रकार स्वीकार किए।[13] अग्निपुराण में भी यही वर्गीकरण उपलब्ध होता है।[14] आचार्य आनन्दवर्धन ने समास के आधार पर तीन प्रकार की संघटनाएँ स्वीकार की।[15] आचार्य विश्वनाथ ने उपर्युक्त तीनों के साथ–साथ एक भेद और परिकल्पित करके उनकी संख्या चार कर दी।[16] इनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. **मुक्तक** – जिस गद्य रचना में समासों का नितान्त अभाव हो, वह मुक्तक प्रकार का गद्य है। छोटे–छोटे वाक्यों के प्रयोग के कारण इस गद्य का शब्दार्थ अति सरल होता है। यह गद्य सर्वाधिक भाववाही होने के कारण संवाद के लिए उपयुक्त है।

2. **वृत्तगन्धि** – जहाँ गद्यरचना के मध्य में वृत्तों अर्थात् पद्यों के अंश स्वाभाविक प्रवाह में आ जाएँ, वह गद्य वृत्तगन्धि प्रकार का गद्य है। वाक्यों के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में इसकी रचना स्वतः हो जाती हैं

3. **उत्कलिका** – गद्य के इस प्रकार में दीर्घ समासों की बहुलता पाई जाती है। इससे भाषा में ओजगुण एवं परुष वर्णों का भी प्राधान्य हो जाता हैं। दीर्घ समास के कारण वाक्य भी दीर्घ बन जाते हैं। सुबन्धु की वासवदत्ता में विकटाक्षर बन्ध युक्त उत्कलिका गद्य प्राप्त होता है। बाण की कादम्बरी में भी उत्कलिका गद्य है किन्तु वह मनोरम है।

4. **चूर्णक** – जिस गद्यरचना में छोटे–छोटे समास होते हैं, वह चूर्णक प्रकार का गद्य है। अल्पसमास के कारण गद्यबन्ध भी शिथिल नहीं होता और भाव भी सुखावह बन जाते हैं। चूर्णक गद्य वैदर्भी रीति के उपयुक्त माना गया है।

संस्कृत के गद्यकाव्यों की विशेषताओं का समुचित आकलन करते हुए डॉ. भोलाशंकर व्यास ने अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया है– 'वस्तुतः गद्यकवि का लक्ष्य सुसंस्कृत श्रोताओं का मनोरंजन होता है। यही कारण है कि काव्यों की तरह यहाँ उदात्त अलंकृत आहार्य दिखाई देता है और उसी की तरह कथावस्तु को गौण बनाकर वर्णनों को प्रधानता दे दी जाती है। काव्योपयुक्त लम्बे–लम्बे समास, श्लेषवैचित्र्य, अनुप्रास और अर्थालंकार प्राचुर्य की ओर गद्यकवि विशेष ध्यान देता देखा जाता है। वह प्रकृति–बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति–के वर्णन करने की ओर अधिक ध्यान देता है। काव्योपयुक्त वातावरण की सृष्टि के लिए ही इन कवियों ने प्रायः प्रणयगाथा को चुना है पर ध्यान देने की बात यह है कि प्रणय कथा के कथांश पर गद्यकवि इतना ध्यान देता दिखाई नहीं देता, जितना वर्णन शैली पर। संस्कृत गद्यकाव्यों की यह शैली जिस काव्य में सर्वप्रथम दिखाई पड़ती है, वह है सुबन्धु की 'वासवदत्ता'[17]

आधुनिक संस्कृत गद्य का उद्भव

सामान्यतः 'आधुनिक' शब्द का अर्थ नवीनता का भाव लिए हुए है। जब हम आधुनिक काल की बात करने लगते हैं तब यही आधुनिक शब्द इस बात की सूचना देने लगता है कि यह काल पूर्व कालों से भिन्नता लिए हुए है। आधुनिक शब्द से जो अर्थ ध्वनित होता है, वह है इहलौकिक दृष्टिकोण। डॉ. राधावल्लभत्रिपाठिनो वक्तव्यमिदं विचारणीयम्–**"विश्वस्मिन् देशे च परिवर्तमानानां राजनैतिकीनां सामाजिकीनाञ्च स्थितीनां बोधेन समं समग्रस्य राष्ट्रस्य ऐकात्म्यमधिश्रितादृष्टिः न्यूनान्न्यूनमेकं व्यावर्तकमस्ति या कालस्य विषयवस्तुनश्च दृष्ट्या आधुनिकस्य साहित्यस्योपक्रमं विधत्ते।"**[18]

धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र सभी के प्रति नए दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। मध्यकाल में पारलौकिक दृष्टि से मनुष्य इतना अधिक आच्छन्न था कि उसे अपने

परिवेश की सुध ही नहीं थी, पर आधुनिक युग में वह अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सतर्क हो गया। आधुनिक युग की पीठिका के रूप में इस देश में जिन दार्शनिक और धार्मिक व्याख्याताओं का आविर्भाव हुआ उनकी मूल चिन्तनधारा इहलौकिक ही है। सुधार, परिष्कार और अतीत का पुनराख्यान नवीन दृष्टिकोण की देन है।

अंग्रेजी साहित्य में आधुनिकता के पुरस्कर्ता 'टी.एस. इलियट' ने लिखा है, "मधुकाल में जीवन्त वृक्ष अपने जीर्ण पत्तों को झाड़ देता है, उनकी जगह लाल–लाल कोमल पत्ते निकलते हैं। मरे पत्तों को डाल से चिपकाना बेमाने है। पर वास्तविक कवि जीवन्त और अजीवन्त तत्त्वों की पहचान में दक्ष होता है। इस प्रकार उपयोगिता के आधार पर पुरानी बातें भी चलती रहती है। परम्परा का गलत अर्थ लगा लेने के कारण आधुनिकता को परम्परा विरोधी मान लिया गया है।"[19] जबकि सत्य यह है कि परम्परा भी एक गतिशील प्रक्रिया की देन है। हमने अपनी पिछली पीढ़ी से जो कुछ प्राप्त किया है, वह समूचे अतीत की पूंजीभूत विचार राशि नहीं है। सदा नये परिवेश में कुछ पुरानी बाते छोड़ दी जाती हैं और नई बातें जोड़ दी जाती हैं। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हू–ब–हू वही नहीं देती, जो अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से प्राप्त करती है। कुछ न कुछ छँटता रहता है, बदलता रहता है, जुड़ता रहता है। यह एक निरन्तर चलती रहने वाली प्रक्रिया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "परम्परा का शब्दार्थ है, एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है परम्परा जीवन्त प्रक्रिया है जो अपने परिवेश को संग्रह त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरन्तर क्रियाशील रहती है। कभी–कभी इसे गलत ढंग से अतीत के सभी आचार–विचारों की बोधक मान लिया जाता है।"[20]

गद्य काव्य को प्रायः विद्वानों ने भावात्मक निबन्धों के अन्तर्गत विवेच्य समझा है। बाबू गुलाबराय ने इन दोनों का पार्थक्य निरूपित करते हुए लिखा है– "दोनों में भावना का प्राधान्य तो अवश्य है किन्तु भावात्मक निबन्धों की अपेक्षा गद्यकाव्य में कुछ वैयक्तिकता और एकतथ्यता अधिक होती है। उसमें एक ही केन्द्रीय भावना का प्राधान्य होने के कारण यह निबन्ध की अपेक्षा आकार में छोटा होता है और उसमें

अन्विति भी कुछ अधिक होती है। निबन्धकार विचार–श्रृंखला के सहारे इधर–उधर भटक भी सकता है किन्तु गद्यकाव्य एक निश्चित ध्येय की ओर जाता है, उसमें इधर–उधर विचरण की गुंजाइश नहीं।" बाबू गुलाबराय ने गद्यकाव्य के स्वरूप का विवेचन करते हुए लिखा है–

"गद्यकाव्य की भाषा गद्य की होती है, किन्तु भाव प्रगीत काव्यों के। गद्य शरीर में पद्य की आत्मा बोलती दिखाई देती है। भाषा का प्रभाव भी साधारण गद्य की अपेक्षा कुछ अधिक सरस और संगीतमय होता है।"[21]

गद्यकाव्य के सम्बन्ध में कुछ प्रसिद्ध गद्य–काव्यकार एवं समीक्षकों के मत इस प्रकार हैं– **डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र– "गद्यते इति गद्यम्। या रचना पदैः चरणैः नियम्यते सा तावत् पद्यम् इति उच्यते। परन्तु या रचना केवलं गद्यते, केवलम्उच्यते, नियमान् उपेक्ष्य, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रीत्या यत् किंचिदिपि समुच्यते तद् भवति गद्यम्।"[22]**

सद्गुरूशरण अवस्थी – "मेरी समझ में कल्पनाप्रधान आलेख, जिसमें रागतत्त्व मिश्रित हो और बुद्धितत्त्व अप्रधान हो, उसे गद्यकाव्य कहेंगे।"

डॉ. रामकुमार वर्मा – गद्य साहित्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है। इसमें कल्पना और अनुभूति काव्य–उपकरणों से स्वतंत्र होकर मानव–जीवन के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त और कोमल वाक्यों की धारा में प्रवाहित होती है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी – "भावावेग के कारण एक प्रकार का लययुक्त झंकार होता है, जो ह्दय पाठक के चित्त को भावग्रह के अनुकूल बनाता है" ऐसा गद्य ही गद्यकाव्य का प्राण है।

डॉ. कमलेश – ने गद्यकाव्यात्मक कृतियों का प्रवृत्तिगत विभाजन करते हुए उनके पाँच वर्ग माने हैं– 1. प्रेमात्मक गद्यकाव्य इसके दो उपविभाग हैं– आध्यात्मिक और लौकिक। आध्यात्मिक गद्यकाव्य भी रहस्योन्मुख या भक्तिपरक होता है। 2. राष्ट्रीय भावना से समन्वित गद्यकाव्य। 3. ऐतिहासिक गद्यकाव्य 4. प्रकृति सौन्दर्यमूलक गद्यकाव्य। 5. स्फुट गद्यकाव्य–मनोवृत्ति प्रधान, व्यक्ति प्रधान, तथ्य प्रधान तथा सूक्ति प्रधान।[23]

मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने के लिए जब छन्दों से मुक्त व्यक्त वाणी में शब्दों का प्रयोग होता है तब वह शब्द–समूह गद्य कहलाता है। यह गद्य विषय प्रतिपादन का एक ऐसा सरल मार्ग होता है, जिसमें पद्य की तरह छन्दों का बन्धन और यतियों का नियन्त्रण नहीं होता है। यह सभी बन्धनों से उन्मुक्त होकर कल–कल निनादों के साथ भावना की धारा को प्रवाहित करता है। गद्य में अर्थावगति के लिए पाठक पद्य–सदृश दण्डान्वय/खण्डान्वय के चक्कर में अभिप्रेत भावों को व्यक्त करने में असमर्थ होता है। आरम्भ में भावाभिव्यक्ति की सुगमता, पद–प्रयोग की सरलता तथा लेखक और पाठक के बीच अभिलक्षित संप्रेषणीयता की जो प्रवृत्ति थी, उसमें क्रमशः कई प्रकार की कृत्रिमता का प्रवेश हो जाने के कारण गद्य के भी अनेक भेद–प्रभेद हो गए जिनसे गद्य का भी वर्गीकरण होने लगा।

आधुनिक काल में भी संस्कृत गद्य साहित्य का विपुल विकास हुआ है। अत्याधुनिक काल में अनेक विधाएँ–उपन्यास, कहानी, निबन्ध, जीवनियाँ, इतिहास, यात्रा वर्णन और रेडियों रूपक पत्रकारिता के रूप में विकसित हुई। आधुनिक संस्कृत लेखन युग बोध से प्रभावित है। पाश्चात्य साहित्य, शिक्षा व विशिष्ट शैलियों की अनुभूति के आधार पर संस्कृत काव्य में अभिनव प्रयोग किये जा रहे हैं। समाज संस्कृति की तात्कालिक परिस्थितियों के प्रतिबिम्ब इस साहित्य में झलकता है।

संस्कृत के गद्यसाहित्य के इतिहास की यह पृष्ठ भूमि स्पष्ट करती है कि गद्य की कुछ प्राचीन विधाएँ संस्कृत साहित्य के आदिकाल से मिलती है।

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के मतानुसार इक्कीसवीं शती ई. का संस्कृत–गद्य चार रूपों में व्यवस्थित है[24]–

1. उपन्यास (प्राचीन कथा एवं आख्यायिका)
2. कथानिका (कहानी, Story or Fiction)
3. लघुकथा (प्राचीन खण्डकथा, Short story)
4. दीर्घ कथा (प्राचीन सकलकथा, Large Story)

आज के कुछ कथाकार स्पश–कथा, टुप्–कथा जैसी पृथक् विधाओं को भी सोदाहरण उपन्यस्त कर रहे हैं। इसी प्रकार, रेखाचित्र–संस्मरण, यात्रावृत्तादि भेद भी गद्यलेखन से ही सम्बद्ध हैं।

आधुनिक युग का संस्कृत कवि या गद्यकार देवी–देवताओं की स्तुति या उपाख्यान ही नहीं लिखता, अब उसके नायक हैं राष्ट्रनेता, समाज–सेवक, उसकी विषय–वस्तु है विश्वशान्ति की आवश्यकता, गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का आन्दोलन, सामाजिक विद्रूपताओं पर प्रहार, राजनीति का प्रदूषण, भ्रष्टाचार, विश्वक्षितिज पर हो रही घटनाएँ। सामाजिक सरोकारों पर वह संस्कृत में उपन्यास और कहानियाँ लिख रहा है, आधुनिक युग की विषमताओं पर व्यंग्य और ललित निबन्ध लिख रहा है, विश्व राजनीति की घटनाओं का मूल्यांकन कर रहा है। विषयवस्तु की यह नवीनता और कथ्य की परिधि में यह विस्तार भी आधुनिक युग की विशिष्ट देन है।

यही कारण है कि आधुनिक युग का संस्कृत लेखन विशेषतः गद्य–लेखन इतना बहुआयामी और विस्तृत फलक वाला हो गया है कि उसका समग्र मूल्यांकन और आकलन अतीव दुष्कर कार्य हो जाता है। इसके साथ ही गद्य की शिल्पात्मक प्रवृत्तियों और विधाओं का जो विस्तार हुआ है वह इसे इतनी विराट व्यापकता दे देता है जिसे समेटना एक नई ज़मीन तोड़ने का कार्य होगा।

संस्कृत गद्य काव्य की विशेषताएँ –

संस्कृत गद्य काव्यों के कथानक का मूल प्रायः लोक–कथाओं से लिया गया है लोककथाओं की भांति कथा में उपकथा का सन्निवेश करने का प्रचलन भी गद्य काव्यों में दिखाई पड़ता है किन्तु गद्य–काव्यों की व्यञ्जना–प्रणाली लोक–कथाओं से सर्वथा भिन्न है। इनकी शैली बहुत कुछ पद्य काव्यों से प्रभावित हुई है। शिष्ट तथा सम्भ्रान्त वर्ग के लिए लिखे जाने के कारण इन गद्य–काव्यों में उत्कृष्ट एवं अलंकृत भाषा का प्रयोग हुआ है, साथ ही वर्णन–शैली का भी अत्यधिक परिष्कार हुआ है। दीर्घकाय समास, अनुप्रास, श्लेष, यमक, विरोधाभास, परिसंख्या इत्यादि अलंकारों तथा सूक्ष्म पौराणिक संकेतों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। प्रकृति का विस्तृत चित्रण तथा नायक–नायिका की शारीरिक और मानसिक दशाओं का

अतिरंजित वर्णन भी हुआ है। शृंगार रस ही इन गद्य–काव्यों का प्रधान–रस है। लोक कथाओं के सरल प्रवाहयुक्त आख्यानों पर कल्पना और पाण्डित्य का गहरा रंग चढ़ाया गया है। गद्य–काव्यों के व्यापक प्रभाव के कारण संस्कृत में व्यावहारिक गद्य शैली का विकास बहुत कम दिखाई पड़ता है।

संस्कृत के गद्य काव्य इस धारणा के पोषक हैं कि कविता में छन्द अनिवार्य तत्त्व नहीं है, छन्दोबद्धता उसका केवल एक बाह्य परिच्छेद है गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से कविता की संरचना हो सकती है यही कारण है कि संस्कृत गद्य काव्य सहृदयों के हृदय में वास्तविक काव्यानन्द का संचार करते हैं। यदि भाषा–सौष्ठव, वर्णन–नैपुण्य, कल्पना–वैचित्र्य, रसास्वाद, पदलालित्य, श्लेष–चातुर्य्य और अलंकार–वैभव इस समस्त काव्यात्मक गुणों का एकत्र अवलोकन करना है, तो संस्कृत के गद्य काव्यों का अनुशीलन अपेक्षित है। ऐसी अलंकृत, उदात्त एवं परिष्कृत गद्य शैली का विकास शायद ही किसी अन्य भाषा के साहित्य में हुआ है।

सामान्यतया संस्कृत गद्य काव्य के मूल कथानक लोक कथाओं (Folk Tales) से लिये गये हैं, किन्तु इनकी व्यंजना प्रणाली लोक–कथाअें से सर्वथा भिन्न है। इनकी भाषा उत्कृष्ट एवं अलंकृत है जिसमें दीर्घ समास, अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के अतिरिक्त पौराणिक संकेतपूर्ण वर्णन होने से कथा भाग गौण हो गया है। इन पर पद्य काव्यों का प्रभूत प्रभाव पड़ा जिससे व्यावहारिक गद्य शैली का ह्रास दृष्टिगत होता है। इन गद्य–काव्यों में प्रायः शृंगार रस प्रधान है। प्रकृति के विस्तृत चित्रण के अतिरिक्त नायक–नायिकाओं की मनोदशाओं का अतिरंजित वर्णन काव्यमय है। समस्त काव्यात्मक गुणों का इसमें समावेश है ऐसा अलंकृत, उदात्त एवं परिष्कृत शैली का गद्य संसार की किसी भी भाषा के साहित्य में उपलब्ध नहीं होता किन्तु आधुनिक काल में संस्कृत गद्य में सरल, समास रहित ललित और प्रासादिक भाषा के प्रयोग की प्रवृत्ति पर बल दिया जा रहा है।

आधुनिक गद्य की विविध नवीन विधाएँ

वर्तमान युग में आधुनिक गद्य साहित्य का विविधमुखी विकास हो रहा है। आज अनेक विधाएँ सामने आ गई हैं। प्रमुख गद्य–विधाओं में संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा, इन्टरव्यू, डायरी, पत्र–लेखन, फीचर, गीति नाट्य, भाव

नाट्य, रेडियो रूपक, व्यंग्य और यात्रा साहित्य आदि अनेक गद्य–रूपों का विकास हो रहा है। गद्य के पूर्व विकसित अंगों का भी विविधरूपी विकास हो रहा है। नवीन–नवीन प्रयोगों से गद्य–साहित्य का कलेवर भरा जा रहा है। आज गद्य लेखक अपनी अनुभूति के प्रति अधिक सच्चाई दिखाता है, इसलिए युगजनित जटिल एवं उलझी हुई विचारधारा को व्यक्त करने के लिए अपने मन में सभी भावों को व्यक्तकर देने के लिए मन के अनेक स्तरों का विश्लेषण करने के लिए वह नई–नई शैलियों का प्रयोग करता है। गद्य–साहित्य की इन विविधमुखी विकसित अवस्था को देखकर ही कुछ विद्वान साहित्य की रचना के आधुनिक काल का 'गद्यकाल' नामकरण करते हैं। गद्य–साहित्य के विविध अंग–उपांगो के विकास के साथ ही इनकी अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शैलियाँ भी गढ़ी गई। अब नवीन–नवीन प्रयोग हो रहे हैं और भविष्य में गद्य साहित्य की अनेक विधाएँ एवं विकसित रूप के दर्शन होंगे।

साहित्यिक गद्य के विकास में जटिल मनोवैज्ञानिक तथ्यों को सुलझाने वाली प्रतीकात्मक बौद्धिक, व्यंग्यात्मक एवं सरल शैली का विकास महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। आधुनिक गद्य की विविध विधाओं का परिचय इस प्रकार है–

संस्मरण – "व्यक्तिगत अनुभव से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण है।" गद्य–साहित्य में निबन्ध की भाँति ही संस्मरण का भी विशेष प्रचलन हो रहा है। "किसी व्यक्ति को जीवन की चारित्रिक विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए अपने वैयक्तिक सम्पर्क के आधार पर जो लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाता है, वही संस्मरण कहलाता है।"[25] डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है कि भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल–कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं। 'डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी' के अनुसार संस्मरणों में लेखक का अनुभूत जीवन विविध सन्दर्भों में उद्‌घाटित होता है वे आत्मीयता से युक्त होते हैं। वास्तविक जीवन में घटित न होने पर ही कोई घटना संस्मरण का रूप ले सकती है। "संस्मरण में लेखक अपने समय के इतिहास को लिखना चाहता है। वह

जो भी स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ भी रहती हैं। वह वास्तव में अपने चतुर्दिक जीवन का सृजन करता है, सम्पूर्ण भावना और जीवन के साथ।"

संस्मरण के सम्बन्ध में महादेवी वर्मा का कथन है– "संस्मरण[26] में हम अपनी स्मृति के आधारों पर वे समय की धूल पौंछ कर उन्हें अपने मनोजगत के निभृत कक्ष में बैठाकर उनके साथ जीवित रहते हैं और अपने आत्मीय सम्बन्धों को पुनः जीवित करते हैं। इस स्मृति मिलन में मानों हमारा मन बार–बार दोहराता है, हमें आज भी तुम्हारा अभाव है।" इस कथन के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि जब कोई लेखक किसी मनोरम दृश्य, अविस्मरणीय घटना या सम्पर्क में आए हुए व्यक्तियों के सम्बन्ध में अपनी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के संस्पर्श से सजीव चित्र अंकित करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं। यो संस्मरण का विशेष उद्देश्य पात्र विशेष की उस विशेषता का अंकन करना होता है जिसकी छवि हमारे मानस पटल पर अमिट है। संस्मरण में वर्ण्य–व्यक्ति प्रमुख होता है और लेखक अपना परिचय उसी के सहारे देता चला जाता है।

डॉ. शंकरदेव अवतरे की मान्यता है कि– "संस्मरण में आत्म संस्मरण रूप और पर संस्मरण दोनों रहते हैं। ये आत्मकथा और जीवनी के उसी प्रकार संक्षिप्त रूप हैं जैसे उपन्यास का कहानी और नाटक का एकांकी या महाकाव्य का खण्ड काव्य।"

संस्मरण लेखक, सजग, कल्पनाशील, भावुक, ज्ञानी, गतिशील एवं उदार व्यक्ति होता है। वह किसी के प्रति पूर्वाग्रह से आक्रान्त नहीं रहता बल्कि सदैव सब प्रकार के स्तरीय लोगों से सम्पर्क रखता है, सबके आत्मीय रूप में निकटस्थ बना रहता है। संस्मरण लेखक जब तक किसी का निकटतम आत्मीय नहीं बन पाएगा, जीवन्त एवं स्वाभाविक संस्मरण नहीं लिख पाएगा संस्मरण लेखक को इतना प्रबुद्ध होना चाहिए कि वह किसी के गम्भीर व्यक्तित्व की गहराई में प्रवेश कर उसके गुणों का उद्‌घाटन, प्रकाशन, सही–सही कर सके।

संस्मरण के तत्त्व

साहित्य की अन्यविधाओं की भाँति संस्मरण में भी कुछ आवश्यक तत्त्व विद्यमान रहते हैं। संस्मरण की कलात्मकता को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए तत्त्वों का व्यवस्थित समायोजन आवश्यक है, ये तत्त्व मिलकर संस्मरण की सुदृढ़, स्पष्ट, सार–गर्भित रूप रेखा तैयार करते हैं।

1. **वर्ण्य–विषय–** यह साहित्य में किसी भी रचना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्णतत्त्व है। संस्मरण चूँकि जीवन की किसी खास घटना की स्मृति पर आधारित होता है अथवा वह व्यक्ति–विशेष या विषय–विशेष से संबंधित होता है। जिसका वर्णन किया जाता है वही संस्मरण का वर्ण्य–विषय हैं। संस्मरण के विषय चयन में लेखक विद्वता और कौशल की परीक्षा होती है क्योंकि संस्मरण की सफलता विषय–चयन और प्रस्तुति पर निर्भर करती है। संस्मरण किसी भी व्यक्ति, वस्तु, घटना, प्रकृति, धर्म, दर्शन, यात्रा, रहस्य, वातावरण से संबंधित हो सकता है, लेकिन उसमें रोचकता आवश्यक है। विषय की प्रस्तुति में कल्पना का संस्पर्श होना चाहिए। जिससे सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अवधारणा फलीभूत हो सके।

2. **पात्र एवं चरित्र–चित्रण –** संस्मरण साहित्य का द्वितीय तत्त्व पात्र अथवा चरित्र होता है। संस्मरण में लेखक अपने साथ हुई घटना का वर्णन करे या किसी अन्य के साथ घटित घटना का, लेकिन इस तत्त्व की वजह से पात्र के साथ लेखक का भी व्यक्तित्व प्रकाशित होता चलता है। संस्मरणकार चरित्र–चित्रण करते हुये अपने प्रिय पात्र की विशेषताओं को उजागर करते हुये आलोचना भी करता है। समीक्षात्मक दृष्टिकोण के कारण ही संस्मरण स्मरणीय बनता है।

3. **परिवेश–** साहित्य में परिवेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अधिकांशतः वातावरण साहित्य का निर्माता बनने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वातावरण समग्र रूप से वह परिस्थिति है जिसमें पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है। परिवेशाकंन की वजह से विषय विकसित होता है।[27] पात्र और देश दोनों का जीवन परिस्थितियों की शृंखला से सम्बन्धित होता है। परिवेशांकन में समय विशेष, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक आदि युगीन परिस्थितियों का समावेश किया जाना चाहिए यद्यपि परिवेश का चित्रण संस्मरण

काल का उद्देश्य नहीं होता फिर भी पात्र एवं घटना की सत्य अनुभूति के लिये सत्य का चित्रण करना आवश्यक होता है।

4. **उद्देश्य** – पद्य भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, इसीप्रकार गद्य लक्ष्य प्रेरित भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। रचनाधर्मिता के लिए लक्ष्य या उद्देश्य का निर्धारण आवश्यक है। रचना के स्वरूप को निर्धारित करके प्रस्तुत करने का एक विशिष्ट प्रयोजन अवश्य होता है। संस्मरणकार 'देखे–भोगे सत्य' की अभिव्यक्ति करता है जिसके पीछे आत्मसंतुष्टि का भाव तो निहित होता ही है, बल्कि इससे परे वह अपने अनुभवों से दूसरों को परिचित करवाता है।

5. **भाषा शैली** – शैली शब्द अंग्रेजी के 'स्टाईल' शब्द का अनुवाद है। शैली शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'शील' से मानी जाती है।[28] हिन्दी शब्दकोश के अनुसार शैली के अर्थ हैं– चाल, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा तथा वाक्य रचना का विशिष्ट प्रकार आदि। साहित्यकार के अन्तःकरण का क्रियात्मक या सर्जनात्मक–पक्ष शैली में प्रतिबिम्बित होता है। शैली साहित्य रचना का एक स्पृहणीय गुण है। मूल संवेदना को प्रकट करने के लिए किस प्रकार की भाषा–शैली का प्रयोग किया जाये इसका निर्णय लेखक करता है। लेखक विभिन्न विधाओं में अलग–अलग शैली तथा शिल्प का प्रयोग करता है। शैली में प्रभावोत्पादकता, सुसम्बद्धता, घटना का तारतम्य, आत्मीयता, संक्षिप्तता जैसे आवश्यक गुण समाहित होने से संस्मरण कलात्मक विशिष्टता के साथ कालजयी बनते हैं। आधुनिक काल में संस्मरण लेखन में आत्मकथात्मक शैली, निबंधात्मक शैली, पत्रात्मक शैली का प्रचुर प्रयोग हो रहा है।

निष्कर्षतः हम पाते हैं कि संस्मरण प्रारम्भ से ही सर्जनात्मक गद्य का उपयोग करता रहा है और अपनी व्यापक प्रकृति के कारण विविध गद्य रूपों के बीच केन्द्रीय स्थिति में है। तीव्र भावनात्मक गठन और गहरी सर्जनात्मक भाषा के परम्परिक काव्य–रूप जैसे उपन्यास, नाटक, कविता, आधुनिक त्वरित संचार से उत्पन्न तनावों के युग में संस्मरण सरस धारा के रूप में प्रवाहित हो रहे हैं। संस्मरण में लेखक स्वयं प्रकथनकर्त्ता होता है, इसलिये पाठक उसकी रो में बहता चला जाता है।

रेखाचित्र

रेखाचित्र का अंग्रेजी पर्याय 'स्केच' है। स्केच का अर्थ 'चित्रकला' है। चित्रकला में स्केच उन चित्रों को कहा जाता है जिनमें केवल रेखाओं के सहारे किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्राकंन किया जाता है। रेखाओं से बने ये चित्र रंगहीन और वातावरण या पृष्ठभूमि से विरहित होते हैं। यहाँ तो केवल सरल और संक्षिप्त रेखाओं से ऐसे भाव–भीने और आकर्षक चित्र उतारे जाते हैं जिन्हें देखकर पाठक प्रभावाभिभूत हो जाता है। गद्य का वह रूप, जिसमें भाषा के द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना का चित्रण या मानसिक प्रत्यक्षीकरण किया जाता है, रेखाचित्र कहलाता है। महादेवी जी ने लिखा है, "बाह्य जगत् की संघटक सभी जड़–चेतन आकृतियों में कुछ मूलभूत रेखाएँ हैं, जिनके कारण एक रूप वर्ग अन्य रूप वर्गों से भिन्न हैं और कुछ ऐसी हैं, जो एक रूप वर्ग की वस्तुओं या व्यक्तियों को ही परस्पर भिन्न कर देती हैं। जैसे मनुष्य, वृक्ष, पक्षी आदि को भिन्न कराने वाली रेखाएँ भी हैं और व्यक्ति–विशेष को अन्य मनुष्यों से, वट को अन्य वृक्षों से, कोकिल को अन्य पक्षियों से भिन्न कराने वाली भी। रंग, आलोक, छाया से युक्त चित्र में यह रेखाकंन उसके मूलाधार की स्थिति रखता है, किन्तु रेखाचित्र में वह व्यक्ति या वस्तु विशेष को, अन्य व्यक्तियों या वस्तुओं से भिन्न कराने वाली विशेष रेखाओं से आकृतिबद्ध करके स्वतन्त्र रूप से उपस्थित करता है।"[29] रेखाचित्र की प्रकृति स्थिर होती है।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने रेखाचित्र को किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को संक्षिप्त घटनाओं के माध्यम से उभारने का प्रयत्न माना है– "अपने सम्पर्क में आये किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाला, सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभारकर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाय, 'रेखाचित्र' या 'शब्दचित्र' कहलाता है। रेखाचित्र में अनुभूति की मार्मिकता अनिवार्य है। इसप्रकार के चित्रों में संक्षिप्तता और सरलता होती है। इसी चित्रकला या शब्दों के सीधे और संक्षिप्त चित्रों को हिन्दी में रेखाचित्र कहते हैं। साहित्य में इसी प्रकार के चित्र आकर रेखाचित्र बन गए हैं। साहित्य में इसप्रकार के चित्र उतारने की क्षमता जिस व्यक्ति में होती है वे ही सच्चे और

साहित्यिक रेखाचित्रों का निर्माण कर सकते हैं। संक्षेप में रेखाचित्र व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप–विधान है जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अपना निजीपन उँडेलकर प्राण प्रतिष्ठा कर देती है। डॉ. नगेन्द्र ने रेखाचित्र की परिभाषा में लिखा है कि– "जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई अर्थात् रेखाचित्र एक ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएँ हों, पर मूर्त रूप नहीं अर्थात् पूरे उतार–चढ़ाव के साथ। दूसरे शब्दों में कथानक का उतार–चढ़ाव आदि उसमें हो, तथ्य का उद्‌घाटन मात्र नहीं।"

निष्कर्ष रूप में– "रेखाचित्र एक ऐसा साहित्यिक चित्र है जिसमें किसी व्यक्ति के मर्मान्तक चरित्र की अभिव्यक्ति संक्षिप्तता और सादगी से निर्मित कलम का जादू पाठकों पर अपना रंग जमा लेता है। रेखाचित्र के साथ ही साथ शब्द चित्र को भी अपनाया जा सकता है।" रेखाचित्र के तत्त्वों में दो तत्त्वों को बड़ी आतुरता से ग्रहण किया जा सकता है– एक तो यह कि रेखाचित्र काल्पनिक न होकर वास्तविक होते हैं और दूसरे रेखाचित्र का निर्माण किसी व्यक्ति या वस्तु को लेकर होता है। इसके साथ ही साथ रेखाचित्र में रागात्मकता और एकात्मकता भी पाई जाती है। शैली की दृष्टि से रेखाचित्र की विशेषताओं में चित्रात्मकता, भावनात्मकता, सांकेतिकता और प्रभावोत्पादकता होती है।

हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र विधा पर बहुत कार्य हुआ है परन्तु संस्कृत साहित्य में रेखाचित्र विधा में लेखन कार्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है जहाँ तक हमें जानकारी मिलती है।

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज शब्द मूलतः फ्राँसीसी भाषा से आया है। इसका सम्बन्ध 'रिपोर्ट' से है। रिपोर्ताज का निर्माण विशुद्ध साहित्यिक वातावरण में होता है। सामान्य रूप से किसी भी घटना का यथातथ्य वर्णन जो पाठक को प्रभावित करने की क्षमता रखता हो, रिपोर्ताज कहा जा सकता है। कल्पना के अभाव में इसकी पुष्टि सम्भव नहीं। रिपोर्ताज आधुनिक पत्रकार कला के अधिक निकट है। जिस प्रकार समाचार–पत्रों में कोई भी विस्तृत रिपोर्ट एक साथ नहीं स्थापित हो सकती है। "उस रिपोर्ताज

संक्षिप्तीकरण को ही हम साहित्यिक भाषा में रिपोर्ताज कहते हैं। उस दृष्टिकोण से रिपोर्ताज हिन्दी की कहानी तथा निबन्ध के ही अधिक निकट है।.........रिपोर्ताज अपने संक्षिप्त साहित्यिक रूप में देश में दिन प्रतिदिन घटने वाली किसी भी घटना का चित्रण पाठकों के समक्ष रख देता है। रिपोर्ताज को लिखने में लेखक को उत्तरदायित्वपूर्ण पद के गौरव के अनुरूप ही शब्द, भाव तथा पृष्ठभूमि का निर्माण करना होता है।"

रिपोर्ताज के लेखक को तीन बातों का ध्यान रखना पड़ता है–

(i) उसे वर्ण्य घटना या वस्तु के वास्तविक इतिहास को जानना आवश्यक है। इसके बिना रिपोर्ताज की सफल सृष्टि सम्भव नहीं है।

(ii) घटना से सम्बन्धित पात्रों का चाहे वे कल्पित ही क्यों न हों, रेखाचित्र प्रस्तुत कर देना आवश्यक है।

(iii) रिपोर्ताज लेखक को बड़ी सजगता के साथ घटना के मर्म और पात्रों की मनः स्थिति का चित्रण करना चाहिए। सच्चे कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह सांसारिक स्वार्थों की सतह को छोड़कर उस निर्मल सतह पर जाकर रिपोर्ताज की रचना करें जहाँ निरपेक्ष भाव से घटनाओं को संजोया जा सके। रिपोर्ताज का निखार इसी निरपेक्ष चित्रण पर निर्भर है।

रिपोर्ताज आधुनिक गद्य की विद्या है, जिसमें पत्रकारिता एवं साहित्यकारिता का मिलन बिन्दु प्रस्तुत किया गया है। बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि "रिपोर्ट की भाँति वह घटना या घटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है किन्तु उसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह रहता है, जो वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार का आवरण डाले उसको प्रभावमय बना देता है।"[30] जब किसी घटना की समाचार पत्र हेतु लिखी रिपोर्ट में साहित्यिकता आ जाती है तो वह रिपोर्ताज का रूप धारण कर लेती है। इसमें तथ्यांकन कलात्मक एवं मार्मिक ढंग से किया जाता है किन्तु विशेष बात यह है कि घटनाएँ एवं तथ्य वास्तविक होते हैं, कल्पनाप्रसूत नहीं, किन्तु शैली व्यंजनापूर्ण एवं कलात्मक होती है। रिपोर्ताज स्मारक साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें चित्रण की तटस्थता अन्य विधाओं की अपेक्षा अपेक्षित है। इसमें यथातथ्य कलात्मक वर्णन एवं सजीव–चित्रण ही महत्त्वपूर्ण है।

सफल रिपोर्ताज के लिए कुछ वांछित गुण और अपेक्षाएँ इस प्रकार हैं–

1. प्रत्यक्षदर्शन एवं स्वानुभूत तथ्य ही रिपोर्ताज का आधार है। इतिहासकार के समान घटित घटनाओं पर अथवा उपन्यासकार के समान विशुद्ध काल्पनिक कथानक के आधार पर रिपोर्ताज–सृजन संभव नहीं है।

2. घटना का प्राधान्य होता है और घटना–चित्रण कथात्मक पद्धति से होता है।

3. घटना एवं वृत्त सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान लेखक की अनिवार्यता है। ज्ञान के अभाव में, केवल अनुमान या कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज संभव नहीं।

4. तथ्यपरकता के लिए लेखक में सूक्ष्म–दृष्टि और विवेक तो आवश्यक है ही, पर साहित्यिक विधा होने के कारण लेखक में गहरी भावुकता और संवेदना के तत्त्व अनिवार्य है।

5. रचना में प्रवाह होना चाहिए जिससे जिज्ञासा, उत्सुकता और आकर्षण उत्पन्न हो। इसी से रसात्मकता और काव्यानन्द की सिद्धि संभव होती है।

6. आकार की दृष्टि से न तो यह अत्यधिक दीर्घ विधा है, और न अत्यन्त लघु। उपन्यास के समान जीवन का सर्वांग इसमें अपेक्षित नहीं, पर एक सूचना, समाचार या टिप्पणी के समान यह लघु भी नहीं होना चाहिए। यह किसी घटना या स्थिति का भावपूर्ण विवरण होने के कारण उसकी पृष्ठभूमि, समकालीन स्थिति घटना के घटक, उसका वृत्त, उसके उपांग और उसकी परिणति का दिग्दर्शक तो होगा ही। अतः यह यथावश्यक रूप में एक कहानी के समान स्वतःपूर्ण , नातिदीर्घ, नातिलघु होगा। वाक्यों–पृष्ठों आदि में आकार–निर्धारण अवश्य सम्भव नहीं है।

7. स्थिति या घटना के पात्रों का बहुत सजीव, यथार्थ और सटीक चित्रण अपेक्षित है। पूर्ण चरित्र–विकास न अपेक्षित है, न सम्भव । पर यथा प्रसंगपूर्ण चित्रण अवश्य अपेक्षित है। इसमें मनोविज्ञान के सिद्धान्तों और यथार्थता की मांगों का भावात्मक एवं संवेद्य तत्त्वों के साथ समन्वय आवश्यक होता है।

रिपोर्ताज के प्रकार – रिपोर्ताज की उत्कृष्टता को देखते हुए हम उसको विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं–

1. राष्ट्रीय रिपोर्ताज
2. सांस्कृतिक रिपोर्ताज
3. सामाजिक रिपोर्ताज
4. अन्तरराष्ट्रीय रिपोर्ताज
5. घटना–प्रधान रिपोर्ताज
6. व्यंग्यात्मक रिपोर्ताज
7. डायरी शैली के रिपोर्ताज
8. संस्मरणात्मक रिपोर्ताज

संस्कृत साहित्य में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री द्वारा रचित रिपोर्ताज (उत्तराखंड यात्रा), स्थल वृत्त (अमरकंटक), रेडियो–रूपक (मंजुला) आदि रचनाएँ प्राप्त होती है।

आत्मकथा

आत्मकथा गद्य की एक संस्मरणात्मक विधा है। आत्मकथा अपने जीवन की घटनाओं का स्वयं लिखा हुआ विवरण है। जिसमें लेखक स्वयं अपने जीवन के विषय में निरपेक्ष होकर लिखता है। आत्मचरित्र किंचित विश्लेषणात्मक तथा तर्कप्रधान साहित्यिक विधा है जिसमें लेखक अपनी सबलताओं और दुर्बलताओं का संतुलित एवं व्यवस्थित चित्रण करता है। आत्मकथा व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्‌घाटन में समर्थ होती है। आलोचक शिप्ले ने आत्मकथा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है, "यद्यपि आत्मकथा और संस्मरण दोनों में देखने पर समानता लगती है, किन्तु दोनों में अन्तर है यह अन्तर बल सम्बन्धी है। एक में चरित्र पर बल दिया जाता है तो दूसरे में बाह्य घटनाओं और वस्तु आदि के वर्णनों पर ही लेखक की दृष्टि रहती है।" आत्मकथा को लेखक के जीवन का एक श्रृंखलाबद्ध विवरण कह सकते हैं जिसमें वह अपनी विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को लेकर उनको व्यवस्थित ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत

करता है या फिर अपनी अन्तर्दृष्टि से उनको संस्मरण रूप में प्रस्तुत करता है।"[31] कोई भी आत्मकथा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति की, उसकी महत्त्वाकांक्षाओं के मार्ग में आने वाली बाधाओं के साथ संघर्ष का ब्यौरा होती है। इस प्रकार आत्मकथा जहाँ एक ओर कौतुहलवर्द्धक घटनाक्रम के लिए होती है, वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे तथ्य भी प्रस्तुत करती है जो संघर्षों के उभरने के लिए समाधान दे सकें।

प्रायः देखा जाता है कि आत्मकथा की रचना व्यक्ति उस समय करता है जब वह सक्रिय जीवन से अलग हो जाता है या कर दिया जाता है। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय जेल के एकान्त क्षणों में महात्मा गांधी ने अपनी 'आत्मकथा' लिखी। इसीप्रकार अनेक नेताओं ने इस दिशा में प्रयास किया। लेखक अपने एकान्त से मुक्ति पाने के लिए भी आत्मकथा लिखता है और स्मृतियों का बोझ हल्का करके तुष्टि प्राप्त करता है। रोचक ढंग से लिखी गई आत्मकथाएँ कथा–साहित्य को आनन्द प्रदान करती हैं। महापुरुषों की आत्मकथाएँ प्रेरणा प्रदान करती हैं। कुछ आत्मकथाएँ इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री अपने में समेटे होती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर आत्मकथा की विशेषताएँ–

1. आत्मकथा में व्यक्ति या लेखक स्वयं अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन करता है।
2. यह विवरण एक क्रमबद्ध श्रृंखला में प्रस्तुत किया जाता है।
3. व्यक्ति अपने जीवन की सभी छोटी–बड़ी घटनाओं का चित्रण करता है। वह अपने गुण–अवगुणों का तटस्थ होकर चित्रण करता है।
4. वह अपने से सम्बद्ध परिवेश को आत्मकथा में उभारता है।
5. आत्मकथा संस्मरणात्मक ढंग से लिखी होती है।

हिन्दी साहित्य में हमें सर्वप्रथम महाकवि बनारसीदास जैन द्वारा रचित आत्मकथा उपलब्ध होती है। इसका नाम "अर्द्धकथानक" है। इसका रचनाकाल सन् 1641 ई. है। यह आत्मकथा पद्यबद्ध है। इसमें कविवर ने अपने जीवन के गुण–दोष भरे समस्त कथानक प्रस्तुत किये हैं। इस आत्मकथा से जैन महाकवि के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता व्यक्त होती है और वह है उनकी सच्चाई। कवि अपने लेखन में

सत्य का आश्रय ग्रहण करता है। वह अपनी बुराइयों एवं कमजोरियों को निःसंकोच प्रस्तुत करता है। इस आत्मकथा से कवि के युग की परिस्थितियों का परिचय मिलता है, इसलिए भी इसका द्विगुणित महत्त्व है। यह आत्मकथा अत्यन्त प्रेरक एवं हमें बुराइयों से बचाने वाली है। संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम आत्मकथा **पं. गणेशराम शर्मा** द्वारा रचित है।

डॉ. कलानाथ शास्त्री द्वारा रचित **'संस्कृतोपासिकाया आत्मकथा'** यह लघु उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में निबद्ध है। इस उपन्यास को छः उपशीर्षकों में विन्यस्त कर शब्द–शास्ता देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने विस्तार दिया है उपन्यास की भाषा का शिल्प तो बाण भट्ट–जैसा नहीं है किन्तु इसका वस्तु–वैचित्र्य उससे भिन्न भी नहीं है। अत्यंत विलक्षण है। 'संस्कृतोपासिकाया आत्मकथा' अपनी मधुर तथा तरल भावों की स्मितउर्मियों से मन को गुदगुदा जाती है। इसमें कहीं तरुण मन की मनोवैज्ञानिक भावों की अठखेलियाँ हैं तो कहीं वस्तु–विधान की अपनी ही लुका–छिपी। हिरण्यमय कल्पनाओं का आसिक्त कौतूहल पाठक को अपने पास में जकड़ लेता है।

इन्टरव्यू

इन्टरव्यू का प्रचार पाश्चात्य देशों में बड़ी तत्परता से हुआ और विशेष महत्त्व भी प्रदान किया गया और अनेक लेखकों ने इन्टरव्यू लिखकर साहित्य को गौरवान्वित किया। इन्टरव्यू को साहित्य विधा के रूप में अपनाने का कार्य भारतीय साहित्यकारों ने भी किया और आज इन्टरव्यू को साहित्य विधा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इन्टरव्यू का अर्थ है–**साक्षात्कार**। साहित्य में इसका अर्थ होता है– जब कोई व्यक्ति किसी से प्रथम बार मिलता है तो बातचीत के दौरान में उस पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी जो प्रतिक्रिया होती है, उसे साहित्य के रूप में लिपिबद्ध कर देना। अपनी प्रतिक्रियाओं और प्रभावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए जिस भाषा और शैली का प्रयोग किया जाता है वह बड़ी मधुर, प्रभावोत्पादक किन्तु सीधी–सादी होती है। शैली में अधिकांशतः प्रश्नोत्तर और वार्तालाप शैली का प्रयोग किया जाता है।

इन्टरव्यू बिना व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किए संभव ही नहीं है। इन्टरव्यू में अभीप्सित व्यक्ति से सम्बन्ध के साथ–साथ बातचीत भी आवश्यक है। अंग्रेजी साहित्य अनुकरण पर हिन्दी में भी इन्टरव्यू पद्धति को प्रोत्साहन दिया गया है।

संचार–माध्यमों के विकास–प्रसार के साथ–साथ भेंट–वार्ता की यह नव्यतम गद्य–विधा अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। पत्र–पत्रिकाओं के विकास के साथ–साथ जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण एवं विचारवान लोगों की विविध घटनाओं, स्थितियों, व्यवस्थाओं एवं व्यक्तित्वों संबंधी विचार और प्रतिक्रियाएँ जानने के लिए पत्रकार उनसे भेंट करके उनकी प्रतिक्रिया जानना चाहते हैं। उनसे प्राप्त सूचनाओं को तथ्यात्मक रूप में या सम्पादित रूप में साहित्यिक भाषा तथा शैली में पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता है। अपनी तथ्यपरकता और रोचकता के कारण यह विधा बहुत लोकप्रिय होती जा रही है। रेडियो पर प्रसार की सुविधा के कारण श्रव्य रूप में इन भेंटवार्ताओं को अधिक विस्तृत श्रोता वर्ग प्राप्त होने से यह विधा और भी अधिक विकसित हुई। इसमें इलेक्ट्रोनिक साधनों के विकास ने तो क्रान्ति ही पैदाकर दी है। अब भेंट वार्ता का आयोजन करने वाले और भेंटवार्ता के आधार व्यक्ति के मूल प्रश्नोत्तर को यथा–तथा रेडियों पर प्रसारित किया जा रहा है। दूरदर्शन के विकास प्रसार के कारण तो भेंटवार्ता को प्रत्यक्ष देखा और सुना जा सकता है। उनके प्रश्नोत्तर से दर्शक–पाठक स्वयं अपना निर्णय भी प्राप्त कर सकता है और उससे काव्यात्मक आनन्द भी प्राप्त कर सकता है। भेंटवार्ताएँ प्रायः दो प्रकार की होती हैः–

1. किसी सामयिक समस्या पर किसी व्यक्ति–विशेष, वर्ग–विशेष या वृहत्तर जनसमुदाय की निजी प्रतिक्रिया जानने के लिए आयोजित भेंट–वार्ता, जिसका प्रभाव और महत्त्व केवल सामयिक होता है तथा
2. क्षेत्र–विशेष के विशेषज्ञ अथवा विशेषज्ञ समूह से विषय–विशेष की समस्या या पक्ष–विशेष में ली गई भेंट–वार्ता, जिसका काफी स्थायी महत्त्व होता है।

भेंटवार्ताएँ विषय, शैली और माँग के आधार पर विविध प्रकार की हो सकती हैं। इनके प्रकाशन, प्रसारण अथवा प्रदर्शन के आधार पर भी इनके विविध वर्ग हो सकते हैं। इनके आकार–विस्तार और सीमा के आधार पर भी इनके विविध रूप हो सकते हैं।

भेंटवार्ताओं के सम्बन्ध में कुछ नियमों, व्यवस्थाओं और परम्पराओं का विकास हुआ है। मांग, आवश्यकता, भेंट देने वाले का व्यक्तित्व, पद और महत्त्व तथा वांछित सूचना के आधार पर प्रश्नावलियों का पूर्व–नियोजन होता है। कुछ वार्ताओं में निश्चित प्रश्न पूछे जाते हैं और निश्चित उत्तर लेकर पाठक–दर्शक के सामने प्रस्तुत कर दिए जाते हैं और भेंट अन्ततः किसी निर्णय या परिणति की ओर बढ़ती है। कई बार प्रश्नोत्तर प्राप्त करके भेंट करने वाला स्वयं सारी बातचीत का विवरण और विवेचन प्रस्तुत करके निर्णय देने का प्रयास करता है।

आधुनिक संस्कृत जगत् में भी ये भेंटवार्ताएँ बहुत प्रचलित है। जैसे दृक् पत्रिका अंक 20 में बनमाली विश्वाल की संस्कृत कवि एवं कथाकार पद्मशास्त्री जी से भेंटवार्ता दृक् अंक 22 में संस्कृत कवि, समालोचक प्रो. रहस बिहारी द्विवेदी से अपराजिता मिश्रा की बातचीत। दृक् अंक 18 में हरिदत्त शर्मा से शिवकुमार मिश्र/बनमाली विश्वाल की बातचीत आदि अनेक भेंटवार्ताएँ संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित होती है।

यात्रा–साहित्य

यात्रा–विवरण लिखने की परम्परा प्राचीन है। 'मेघदूत' तथा 'रघुवंश' जैसे ग्रन्थों में इसकी झलक मिल जाती है। ह्वेनसांग, इब्नबतूता, फाह्यान आदि यात्रियों ने अनेक देशों की यात्राएँ की तथा अपने अनुभवों को लिपिबद्ध किया किन्तु इन लेखकों के विवरण तथ्यात्मक अधिक है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन यात्रा वर्णनों का मूल्य बहुत अधिक है।

मनुष्य अनादिकाल से यात्राएँ करता आ रहा है। निश्चय ही इन यात्रा–वृत्तान्तों को वह अपने सम्पर्क में आने वाले जिज्ञासुओं को सुनाता भी रहा होगा। यात्रा वर्णन आज अलग साहित्यिक विधा के रूप में अपना अस्तित्व प्रमाणित कर चुका है। यात्रा वर्णन के साहित्यिक रूप में लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखें प्रकृति–सौन्दर्य, मानव–सौन्दर्य तथा क्षेत्र–सौन्दर्य का चित्रण–बेबाक् होकर करता है। इन यात्रा वर्णनों में फक्कड़ता, मस्ती, उल्लास का पुट रहता है जिससे ये वर्णन आत्म–विभोर करने वाले होते हैं। ये यात्रा वर्णन तभी संभव है जबकि लेखक बहुत संवेदनशील हो तथा यात्रा के दौरान होने वाले अनुभवों की प्रतिक्रिया उसके मानस पर बड़ी तीव्रता से होती हो। यात्रा–लेखन की विशेषता यह भी है कि जिस भी

दृश्य का वर्णन लेखक करता है, उसके साथ उसका रागात्मक तादात्मय हो जाता है इसलिए यात्रा वर्णन इतना प्रभावशाली बन जाता है कि पढ़ने वाला स्वयं यात्रा का रस लेने लगता है। राहुल सांकृत्यायन ने अपने यात्रा वर्णनों के प्रभाव के विषय में लिखा है कि "मेरी यात्राओं को पढ़कर कितने ही माता–पिताओं को अपने सपूतों से वंचित होना पड़ा।"[32] अतः आनन्द तथा मस्ती भरा उल्लास यात्रा–वर्णन के आवश्यक अंग है।

यात्रावृत्तों में हम दृश्यों, स्थितियों और उनके अनुकूल–प्रतिकूल लेखक की मानसिक प्रतिक्रियाओं से साथ–साथ परिचित होते चलते हैं। इसलिए लेखक की रूचि, संस्कार, संवेदनशीलता और मानसिकता के अनुसार यात्रावृत्तों का स्वरूप भी अलग–अलग ढल जाता है। यही कारण है कि यात्रावृत्त–लेखक के साथ सहयात्रा करते हुए जिज्ञासा–तुष्टि के सामान्य सुख के साथ हमें कहीं कविता, कहीं कथा, कहीं संस्मरण, कहीं चित्र–दर्शन और कहीं नैरेशन का सुख भी मिलता है। यात्रावृत्तों को पढ़कर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि आज का गद्य–साहित्य कितना समृद्ध हो चुका है। उसमें वस्तु–वर्णन, दृश्यांकन, बिम्बविधान और मनःस्थिति रेखाकंन की क्षमता कितनी बढ़ गयी है। देश–विदेश की महत्तम सांस्कृतिक–दार्शनिक उपलब्धियों को आत्मसात् करने की उसकी शक्ति कहाँ से कहाँ पहुँच गयी है। पहले यात्रावृत्त यात्राक्रम में लिखे गये स्थूल वृत्त मात्र होते थे। अधिक से अधिक उनमें लेखक के स्वभाव और रूचि का निदर्शन हो जाता था किन्तु आज तो हम यात्रावृत्तों में वस्तुओं, व्यक्तियों और स्थितियों के बाह्य संश्लिष्ट बिम्ब–विधान के साथ ही लेखक के अन्तर्जगत् का पूरा साक्षात्कार कर सकते हैं। यात्रा–वृत्तान्तों में देश–विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर–नारियों के विविध जीवन–संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु–चित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिम्बविधायिनी कल्पनाशक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा–वृत्ति को तुष्ट कर देता है। यात्रा–काल में यायावर का साहस, संघर्ष–शीलता, स्वछन्दता, आकस्मिक रूप से आने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना लेने की क्षमता आदि चारित्रिक विशेषताएँ उसे नायक की गरिमा प्रदान कर देती है। पाठक उसे प्यार करने लगता है। यायावरों की साहसिक यात्राएँ मानव की जिजीविषा का

उद्घाटन करती हैं। जिजीविषा हर जीवधारी की मूलभूत वृत्ति है। यात्रा–वृत्तान्तों के पढ़ने से इस वृत्ति की तुष्टि होती है इसीलिए यात्रा–साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। यात्रा–वृत्तान्त सामान्य वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त डायरी, पत्र और रिपोतार्ज शैली में भी लिखे जाते हैं। इसलिए इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई गद्य–रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है।

संस्कृत साहित्य में श्री शैल दीक्षित ने यात्रा साहित्य को प्रतिष्ठापित किया है। कावेरी गद्यम् प्रवास वर्णनम् रचनाएँ लिखी हैं। पद्य में चक्रवर्ती ए.राजगोपाल ने 'तीर्थाटनम्', कवयित्री क्षमाराव ने विचित्र परिषद्–यात्रा, डॉ. के. गणपति शास्त्री ने 'सेतुयात्रावर्णनम्', सूर्यनारायण व्यास ने 'सागर–प्रवास', पद्म शास्त्री ने मदीया सोवियत यात्रा, डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने विमान यात्राशतकम्, अरुणोदय जानी ने 'शर्मण्य देश–प्रवास' इत्यादि यात्रा–वर्णन की रचना की है। साहित्य इतिहास में यात्रा–साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

पत्र–साहित्य

पत्र–साहित्य गद्य साहित्य की नवीनतम विधा है। पत्रलेखन तो लिखने की कला के आविष्कार के साथ ही आरम्भ हुआ होगा : किन्तु उसे साहित्य की एक मूल्यवान विधा मानकर प्रकाशित करने और उसके कला–रूप का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति सर्वथा नयी है। पत्र–साहित्य का महत्त्व इसलिए मान्य है कि उसमें पत्र–लेखक मुक्त होकर अपने को व्यक्त करता है। अपने को खोलकर रख देता है।

यों तो पत्र–व्यवहार जीवन का एक आवश्यक अंग है किन्तु कुछ पत्र तो ऐसे हैं जो किसी भाषा के साहित्य की निधि हैं क्योंकि ऐसे पत्रों में पत्र–लेखकों का हृदय उतर आता है। पाश्चात्य विचारकों ने साहित्य के क्षेत्र में पत्रों का महत्त्व स्वीकार किया है। पत्र अनुसन्धान के कार्य में बहुत सहायता पहुँचाते हैं। डॉ. जॉनसन ने अपनी शिष्या को लिखा था 'पत्र लेखक के हृदय का दर्पण होते हैं।'[33] इसी तरह रिचर्डस ने भी लिखा था कि– "पत्र लेखक के जीवन का अध्ययन करने में प्रामाणिक आधार होते हैं।"[34] आत्मीयता तथा व्यक्तित्त्व का प्रतिबिम्बन पत्र की मुख्य विशेषताएँ होती हैं। उपन्यास, कहानी आदि अन्य विधाओं में भी पत्र–शैली का प्रयोग किया जाता है। ये पत्र काल्पनिक होते हैं। उपन्यास लेखक एक पात्र द्वारा दूसरे को पत्र लिखवाता है। इन पत्रों से दो पात्रों के अन्तरंग सम्बन्धों की सूचना

मिलती है जो दोनों ही पात्रों के व्यक्तित्व–विश्लेषण में सहायक होती है। यात्रावृत्तों में लिखे गये पत्र काल्पनिक नहीं होते। इनमें यात्रावृत्त लेखक यात्रा–विवरण प्रस्तुत करता है। इनमें 'पत्रों' का निजी वैशिष्ट्य, अन्तरंग क्षणों की अनुभूति नहीं होती। यात्रा के क्रम में देखे गये दृश्यों, मन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों के दबाव से तरंगित होने वाले भावों, विचारों एवं अनुकूल–प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं को किसी समशील मित्र तक पहुँचाने के लिए यात्रा–वृत्त लेखक पत्र–शैली का प्रयोग करता है।

पत्र, केवल साहित्यकारों के ही नहीं, दार्शनिकों, राजनेताओं, इतिहासकारों तथा वैज्ञानिकों के भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। विदेश में इनके संग्रह की परम्परा है। किसी भी युग का वास्तविक इतिहास तब तक अधूरा रहेगा जब तक उस युग के निर्माता साहित्यकारों और मनीषियों के पत्रों के साक्ष्य पर उसकी प्रामाणिकता की जाँच नहीं की जायेगी। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का आकलन तब तक अधूरा रहेगा जब तक उसके द्वारा लिखे गये पत्रों के साक्ष्य को आधार नहीं बनाया जायेगा। पत्र–साहित्य से न केवल लेखकों की प्रामाणिक जीवनियाँ लिखने में सहायता मिलेगी प्रत्युत् साहित्य का इतिहास लिखने में भी सहायता मिलेगी।

पत्र दो प्रकार के होते हैं एक तो पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले और दूसरे अनौपचारिक। अनौपचारिक पत्रों में किसी प्रकार की बनावट नहीं होती और वे बड़े आत्मीय मधुर एवं मोहक होते हैं और तीखे एवं व्यंग्यपूर्ण भी। हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं में समय–समय पर साहित्यकारों के पत्र प्रकाशित होते रहते हैं। महान व्यक्तियों के व्यक्तित्व एवं उनके अन्तरंग की खोज करने हेतु उनके पत्रों का महत्त्व स्थापित हुआ। इनमें व्यक्ति–विशेष के जीवन का वह अन्तरंग पक्ष सामने आता है, जो सामान्यतः अन्य प्रकार के लेखन में ओझल रहता है।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक पत्र में अपने पत्र लिखने के व्यसन के सम्बन्ध में लिखा है– "कोई भांग पीता है, कोई तम्बाकू खाता है, किसी को अफीम की लत है, तो किसी को गाँजे का शौक है। सुरों की प्रिय सुरा पीने वालों का क्या कहना? और चाय के पियक्कड़ों की संख्या तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है पर इन सब नशों की तरह उतना ही मादक एक नशा और भी है–और वह है चिटिठयों को भेजने का।"[35]

पत्रों में पत्र–लेखकों की साधना व्यक्त होती है और उनके व्यक्तित्व का परिचय भी मिलता है। संस्कृत साहित्य में राजस्थान संस्कृत अकादमी से प्रकाशित नवोन्मेषः पत्रिका में डॉ. शिवसागर त्रिपाठी का पत्र–विधा में विस्तृत शोध–लेख प्रस्तुत है।

जीवनी साहित्य

सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि और आलोचक पोप अपनी सुविख्यात रचना 'ऐस्से आन द मैन' में कहता है कि 'मानव ही मानव के अध्ययन का उपयुक्ततम विषय है।' विशुद्ध भौतिक विज्ञानों को छोड़कर समाज–विज्ञानों और मानविकी सम्बन्धी सब विषयों में भी मानव को ही विविध–पक्षीय अध्ययन का विषय बनाया जाता है। इन विषयों में जहाँ मानव का वस्तुपरक अथवा तथ्यपरक अध्ययन ही प्रस्तुत होता है, वहाँ साहित्य में मानव के इस अध्ययन में हार्दिकता एवं अनुभूति का तत्त्व प्रधान होता है। मानव के अध्ययन में हार्दिकता और तथ्यपरकता का सर्वोत्तम रूप जिस साहित्य विधा में उपलब्ध है, उसे जीवनी कहा जा सकता है।

मनुष्य सदा दूसरे मनुष्य से प्रभावित होता है। जो जीवन में कुछ विशेष, कुछ महत्त्वपूर्ण करने में समर्थ हों, उनके गुण हम में यदि किंचित् मात्रा में हों या उन गुणों को हम महत्त्व तो दें, पर हममें उनका नितान्त अभाव हो, तो उस अवस्था में वे व्यक्तित्व हम पर अमिट छाप छोड़ते हैं। हम उनका आख्यान–प्रत्याख्यान करना चाहते हैं। हम उनके उन गुणों, उपलब्धियों अपनी यथार्थ परिस्थितियों के साथ उनके संघात को और उनकी महनीय सफलता और विफलता को सबको बताना चाहते हैं। चरित्र–विशेष के अन्तर्बाह्य का यह हार्दिकतापूर्ण उद्‌घाटन ही जीवनी है। जब व्यक्ति स्वयं अपने सुख–दुःखों, अपनी परिस्थितियों अपने अनुभवों आदि को निष्पक्ष, भावपूर्ण और तथ्यपरक अभिव्यक्ति देने में प्रवृत्त होता है तो वह जीवनचरित वर्ग की ही आत्मकथा विधा का प्रणयन करता है।

व्युत्पत्ति – जीवनी शब्द जीवन से बना है जीवनी से तात्पर्य यहाँ केवल जीवन की घटनाओं के बाह्य तथ्यपरक अंकन अथवा इतिहास क्रम से न होकर उसके अन्तर्बाह्य उसके घटनाक्रम और उसके आन्तरिक चरित्र दोनों से है। इसीलिए यह कहा जाता है कि जीवनी में जीवन कम और चरित्र अधिक होता है। हिन्दी में

'जीवनी' रूप में नामकरण सीधे अंग्रेजी की साहित्य विधा 'लाइफ' अथवा 'बायोग्राफी' से एवं आत्मकथा का 'ऑटो बायोग्राफी' के आधार पर हुआ।

परिभाषा – जीवनी की यथार्थता–युक्त प्रभविष्णुता के तत्त्व को रेखांकित करते हुए पाश्चात्य विद्वान् लिटन स्ट्रेची जीवनी को 'लेखन कला का सबसे सुकोमल और सहानुभूतिपूर्ण स्वरूप' कहता है।[36] जीवनी लेखन के लेखक के लिए अपेक्षित गुण को रेखांकित करते हुए–

1. **हेरल्ड निकसन** कहता है– 'जीवनी को लिखने के लिए एक विशेष प्रकार के बुद्धि–कौशल की आवश्यकता है।
2. **जॉनसन के अनुसार** – 'जीवनीकार का लक्ष्य जीवन की उन घटनाओं और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन करना होता है जो व्यक्ति–विशेष की बड़ी से बड़ी महानता से लेकर छोटी से छोटी घरेलू बातों तक से सम्बन्धित होती है।
3. **रामनाथ सुमन के अनुसार** – जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी नहीं है। लेखक जहाँ नायक के जीवन में छिपे उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवनधारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है, वहाँ जीवनी लेखन–कला सार्थक होती है। ऊपर से मनुष्य के दिखाई पड़ने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी–लेखन कला संतुष्ट नहीं होती, वह उस आवरण को भेदकर अन्तः स्वरूप और आन्तरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।
4. **बाबू गुलाबराय के अनुसार** – 'जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और इसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है।'
5. **जे.टी. शिप्ले के अनुसार** – 'जीवनी वह साहित्यिक विधा है जिसमें नायक (या किसी विशिष्ट व्यक्ति) के सम्पूर्ण जीवन या उसके यथेष्ट भाग की चर्चा की गई हो और अपने आदर्श रूप में वह एक इतिहास हो।'

जीवन के स्वरूप की व्याख्या करते हुए पश्चिमी विद्वान् वाइपियन डी.सोला ने लिखा है– "इतिहास की दृष्टि से जीवनी आलोचनात्मक, प्रज्ञातटस्थ, उत्सुकता, विवरणों के औचित्यपूर्ण विश्लेषण और चयन पर बल देती है। इतिहास और

साहित्य के अतिरिक्त जीवनी व्यक्ति विशेष का अध्ययन भी है। उसकी अभिव्यक्ति इस ढंग से की जानी चाहिए कि उससे यह प्रतीत हो कि उस व्यक्ति विशेष से लेखक का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जीवनी की अभिव्यक्ति बहुत स्वाभाविक और सहज गति से अथवा बेतकल्लुफी से ही की जानी चाहिए।"[37]

जीवनी लेखन की मूल प्रेरणा मनुष्य में मनुष्य के प्रति जिज्ञासा का होना है। जीवन में किसी व्यक्ति–विशेष के जीवन की स्थूल बाह्य घटनाओं एवं सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों का चित्रण होता है। जीवनी लेखन की परम्परा बहुत प्राचीन है। मध्यकालीन वैष्णव भक्तों एवं भक्त कवियों सम्बन्धी वार्ता एवं चरित साहित्य मिलता है, जो जीवनी न होते हुए भी इसकी परम्परा में है।

जीवनी–साहित्य की विशेषताएँ –

यदि हमें किसी के जीवन को परखना हो तो उसमें हम निम्नलिखित विशेषताएँ देख सकते हैं–

1. किसी व्यक्ति विशेष की जीवन गाथा उसमें हो
2. व्यक्ति के जीवन की घटनाओं का वर्णन ऐतिहासिक क्रम में हो।
3. लेखक जीवनी लिखते समय अनौपचारिकता तथा बेतकल्लुफी के साथ व्यक्ति विशेष के जीवन की घटनाओं का चित्रण करता है।
4. जीवनी की अभिव्यक्ति सहज गति से युक्त होती है।

जीवनी के तत्त्व

जीवनी के तत्त्व किसी समाख्यानात्मक विधा के समान नहीं होते। जीवनी में पात्र भी होता है, जीवन सम्बन्धी घटनाएँ भी होती हैं, विशिष्ट देशकाल भी होता है।, इसका विशेष लक्ष्य भी होता है। भाषा और शैली तो किसी भी साहित्यिक विधा का एकमात्र अभिव्यक्ति माध्यम होता है फिर भी जीवनी के तत्त्व महाकाव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक से पर्याप्त भिन्न प्रकार के होते हैं, जो इसकी इतिहासपरक और तथ्यपरक एवं भावात्मक प्रकृति के अधिक अनुरूप होते हैं। ये तत्त्व प्रसिद्ध विद्वान् रामप्रकाश के अनुसार निम्न है–

1. **मानव केन्द्रिता** – जीवनी वस्तुतः मानव का अध्ययन है। कोई भी साहित्य विधा मानव का अध्ययन ही होती है, पर इसमें लक्ष्य–सिद्धि के माध्यम के

संदर्भ में अभिव्यक्ति–भेद के आधार पर विविध तत्त्व वरीयता प्राप्त कर लेते हैं परन्तु जीवनी में आद्यन्त नायक, चरितनायक अथवा व्यक्ति विशेष अध्ययन का केन्द्र बना रहता है। मानव, उसकी मानवता, उसकी मानवता के सहज रूप में सबल और दुर्बल पक्ष तथा उनका भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण लेखक का एकमात्र उपक्रम रहता है। इस प्रकार व्यक्ति और व्यक्ति केन्द्रिता जीवनी का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

2. **पूर्णज्ञता** – चरितनायक के सम्बन्ध में सुनी–सुनाई कथाएँ जीवनी का आधार नहीं होती। लेखक का यह अपना निजी स्वानुभूत, अपना देखा–पहचाना जीवन होता है, जिसको वह पूर्ण तथ्यपरकता के साथ व्यक्त करता है। लेखक को व्यक्ति, उसके पारिवारिक परिवेश, समाज, जीवन को प्रभावित करने और गतिशील करने वाली हर छोटी और बड़ी घटना के प्रतिपूर्ण रूप में अभिज्ञ होने पर ही जीवनी लेखन में प्रवृत्त होना चाहिए।

3. **संतुलित प्रसंग चयन** – जीवनी–लेखक को चरित्र के जीवन की हर छोटी–बड़ी घटनाओं का विवरण प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। वह जीवन की हर स्थिति और घटना को जाने अवश्य पर चुनाव उनका करें जो व्यक्तित्व की विशिष्ट दिशा के उद्घाटन में महत्त्वपूर्ण हों। यह चुनाव भेद–भाव रहित पर आवश्यकता एवं संतुलन के नियमों के अनुरूप होना चाहिए। इस संदर्भ में स्ट्रेची ने लिखा है कि– 'जीवनी में न तो कोई अनावश्यक बात होनी चाहिए और न कोई आवश्यक बात छूटनी चाहिए।'

4. **क्रमबद्धता** – जीवनी की संरचना में घटनाओं की क्रमबद्धता महत्त्वपूर्ण है। इससे एक तो विश्वसनीयता बनी रहती है तथा साथ ही उत्सुकता, रोचकता और रहस्य का तत्त्व बना रहता है। ऐतिहासिक क्रम जीवन के स्वाभाविक चित्रण के लिए आवश्यक है। इससे मानव के यथार्थ जीवन के समान भविष्य में क्या होने वाला है इसके सम्बन्ध में जिज्ञासा, रहस्यात्मकता और कुतूहल के तत्त्व बने रहते हैं।

5. **बहिरंग–अंतरंग का समन्वय** – इतिहासकार केवल बाह्य परिस्थितियों और बाह्य घटनाओं को ही अपने वृत्त का आधार बनाता है। जबकि जीवनीकार के लिए तथ्यपरकता के साथ–साथ उसके मन–मस्तिष्क की सक्रियता का भी चित्रण करता है। जीवन की किन घटनाओं और परिस्थितियों के कारण

नायक के चरित्र में क्या अन्तर उपस्थित हुआ अथवा उसने किस प्रकार परिस्थितियों को अपने अनुकूल मोड़ा, इन सबका उपयुक्त एवं तर्कसंगत सामंजस्य जीवनी लेखक का कार्य होता है।

फीचर

आधुनिक गद्य के स्मारक साहित्य में फीचर का अपना विशेष महत्त्व है। फीचर भी एक प्रकार का रेडियों रूपक ही है। रेडियों के संदर्भ में 'फीचर' शब्द का अर्थ है–रूपक। आधुनिक स्मारक साहित्य में विभिन्न स्थलों के सम्बन्ध में रोचक कथा–सूत्रों के साथ प्रस्तुत किये जाने वाले साहित्य रूप को जिसमें कि दो कथाएँ साथ–साथ चलती हैं–फीचर कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत काव्य, उपन्यास, कहानियों आदि का अभिनयात्मक पद्धति में रूपान्तरण किया जाता है। लुहमेकनीस ने लिखा है कि– "फीचर वास्तविकता का नाटकीकृत रूप है। फीचर में कलाकार को उसी प्रकार सजग रहना पड़ता है जिस प्रकार रेडियो एकांकी में। लम्बी–चौड़ी कथावस्तु को खण्डशः इस प्रकार सजाया जाता है कि सम्पूर्ण वस्तु की झाँकी प्रस्तुत की जा सके।"[38] फीचर में उपन्यास, कहानी आदि को इस प्रकार कटे–छँटे रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि उसका मार्मिक प्रभाव पड़े और आनन्द की सृष्टि भी हो जाये। इसमें 25–30 मिनट से अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। इसमें ऐसे व्याख्याकार की आवश्यकता होती है जो सफलतापूर्वक मध्य की कथा को रोचकता व प्रभाव के साथ व्यक्त करता चले। इसकी सफलता का श्रेय अभिनेता और व्याख्याकार दोनों पर आश्रित है।

फीचर और संस्मरण में बहुत कुछ एकता होते हुए भी लेखक की दृष्टि में अन्तर है। फीचर में वह स्थान का परिचय देते हुए उससे जुड़े घटना सूत्रों को भी प्रस्तुत करता है। फीचर द्वारा लेखक व्यक्ति अथवा नगर के व्यक्तित्व एवं समग्र रूप को उद्‌घाटित करता है। फीचर लेखक स्थान के विवरण के माध्यम से एक अन्य कहानी भी प्रस्तुत करता है।

भेद

फीचर के दो भेद होते हैं– एक तो स्वतन्त्र अथवा मौलिक और दूसरा रूपान्तरित। रूपान्तरित फीचर के उदाहरणों के लिए हम अनेक कहानियों और नाटकों को रख सकते हैं–

1. प्रेमचन्द की कहानियों के रूपान्तर –

(क) शतरंज के खिलाड़ी (ख) सूरदास (ग) भक्ति (घ) मनोवृत्ति

2. रवीन्द्रनाथ की निम्न कहानियों के रूपान्तरित फीचर ये हैं–

(क) काबुलीवाला (ख) छुट्टी

3. प्रसाद साहित्य के रूपान्तरित फीचर –

(क) देवस्थ और दासी (ख) इरावती

4. कुछ अन्य रूपान्तरित फीचर के नाम पर–

(क) मृगराल – लेखक अनन्तगोपाल शेवड़े।

(ख) मृगनयनी – लेखक वृंदावनलाल वर्मा

5. संस्कृत रूपान्तरित फीचर में–

(क) स्वप्नवासवदत्ता विशेष उल्लेखनीय है।

6. इनके अतिरिक्त कुछ रूपान्तर विदेशी साहित्य से सम्बन्धित होकर भी सामने आए हैं। जैसे 'समाज के स्तम्भ'–लेखक इब्सन।

'प्राइड एण्ड प्रीजूडिस' और 'रॉबिन्सन क्रूसो' इस क्षेत्र में विशेष प्रसिद्ध हैं। इसके साथ ही और भी अनेक फीचर रूपान्तरित होकर सामने आए हैं। रेडियो ने इस विधा की प्रसिद्धि में बड़ा सराहनीय योगदान दिया है। अनिल कुमार, भृंगतुपकरी का योगदान भी इस क्षेत्र में सराहनीय है। स्वतंत्र रूप से लिखे गए फीचर्स कम ही है। इनमें केवल सर्वोदय और वनमहोत्सव के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भाव–नाट्य

भाव–नाट्य का अंग्रेजी अनुवाद 'फैन्टसी' है। नाटकों की यह विधा भी अपने हल्के रूप में आज साहित्य जगत् के सामने है। भाव–नाट्य में कल्पना का अतिरेक होता है और साथ ही मधुरता व कोमलता से युक्त भावों को इस विधा के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने इसकी निम्नांकित विशेषताएँ बतलाई है–

1. ये प्रायः प्रणय–चित्रों से युक्त होते हैं।
2. इनमें भावना और कल्पना की अतिरंजना होती है।
3. भाव–नाट्य में पात्र, स्वप्न या अर्द्धविक्षिप्तावस्था में अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं।
4. इसमें घटनाओं और परिस्थितियों आदि का चित्रण भावात्मक ढंग से किया जाता है।
5. अभिनय में भावातिरेक और विविध हाव–भावों की संयोजना रहती है।
6. भाव–नाट्य में अन्तर्द्वन्द्व का अंकन विशेष रूप से किया जाता है।

इसके अभाव में भाव–नाट्य की सफलता संदिग्ध है।

भाव नाट्य प्रायः दो प्रकार के होते हैं–

1. रेडियो भाव–नाट्य
2. रंगमंची भाव–नाट्य

रेडियो भाव–नाट्य के प्रणेता के रूप में विष्णु प्रभाकर का नाम उल्लेखनीय है। इनके भाव–नाट्यों में 'अर्द्धनारीश्वर' 'शलभ और ज्योति' के नाम प्रसिद्ध है। रंगमंचीय भाव–नाट्यों में उदयशंकर भट्ट के 'विश्वामित्र' और मत्स्यगन्धा प्रसिद्ध है। संस्कृत साहित्य में सागर (म.प्र.) निवासी भागीरथी प्रसाद शास्त्री 'वागीश' रचित व 1957 में प्रसारित 'कृषकाणां नागपाशः' सम्भवतः संस्कृत नाट्य साहित्य का प्रथम रेडियो नाटक है। डॉ. रमाकान्त शुक्ल ने कई रेडियो नाटक लिखे हैं जो समय–समय पर आकाशवाणी के दिल्ली–केन्द्र में प्रसारित हुये हैं। इनके 7 रेडियों–नाटकों का संकलन **'नाट्य–सप्तकम्'** के रूप में देववाणी परिषद्, दिल्ली से प्रकाशित भी हुआ है। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने **'मंजुला'** नामक रेडियों नाटक आकाशवाणी जयपुर के लिए लिखा था। देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने कई रेडियो नाटक रचे हैं जिनमें से कुछ नाटकों का संकलन **'नाट्य वल्लरी'** के रूप में प्रकाशित हुआ है। डॉ. हरिराम आचार्य ने अपने रेडियों नाटकों का संग्रह **'पूर्वशाकुन्तलम्'** के रूप में प्रकाशित करवाया है।

संस्कृत–साहित्य में उपन्यास विधा

गद्य का विकास आधुनिक युग की देन है। गद्य के प्रमुख अंग उपन्यास–साहित्य का उद्भव एवं विकास भी आधुनिक काल में हुआ। यों तो जब

से मनुष्य का जन्म हुआ, वह कथा–कहानियों में रूचि दिखाता रहा है और बहुत प्राचीन काल से दादी, नानी द्वारा एक ऐसे कथा–साहित्य के पल्लवन में पौराणिक और लौकिक दन्त कथाओं का बड़ा योग रहा। इन उपाख्यानों में किसी निश्चित धार्मिक या नैतिक तत्त्व को लेकर उसकी स्थापना की जाती थी। इसके अन्त में उपदेश या स्वस्थ सत् जीवन की स्थापना होती थी, किन्तु इस साहित्य का रूप मौखिक ही था। आधुनिक काल में गद्य के विकास एवं प्रेस की स्थापना के साथ ही हमारा कथासाहित्य भी विकसित हुआ और तोता, मैना, लोमड़ी आदि अनेक कल्पित पशु–पात्रों के स्थान पर यथार्थ जीवन से सम्बन्धित मानवीय पात्रों को महत्त्व मिला। हमारी कल्पना–कपोती के पर काट डाले गये और हम यथार्थ जीवन में, अपने नित्य जीवन में, अपने साथी मानव को महत्त्व देने लगे।

प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा–साहित्य का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'वृहत्कथा' मिलता है और संस्कृत में भी पौराणिक आख्यान तथा अन्य उपन्यासजातीय काव्य मिलते हैं किन्तु आधुनिक युग में उपन्यास एक विशेष तकनीकी पर रचित कथा–गद्य है, जिसका मुख्य आधार वास्तविकता है। प्राचीन कथा–साहित्य में जीवन का कल्पना जन्य विवेचन मिलता है। आधुनिक युग में उपन्यास का प्रादुर्भाव पाश्चात्य प्रणाली पर ही हुआ है। 'उपन्यास' नामक गद्य–विधा की विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने उपन्यास के सम्बन्ध में अपनी सम्मति इन शब्दों में प्रकट की है– "मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का तत्त्व है।"[39]

जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है कि– "महान् उपन्यास हमेशा आदमी को सोचने की प्रेरणा देते हैं, क्योंकि वे जिन्दगी की ऐसी तस्वीरें हैं, जो बड़े दिमागों ने खींची है।"[40]

गद्य में रचित कथा–साहित्य का महत्त्वपूर्ण रूप उपन्यास आज साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। काव्य और नाटक इससे बहुत प्राचीन विधाएँ हैं, पर प्रभाव की दृष्टि से आज यह सबसे आगे निकल गया है। मानव जीवन के वैविध्यपूर्ण चित्रण के लिए जो सुविधा, जो अवकाश तथा जो लचीलापन उपन्यास में हैं, वह अन्य किसी विधा में प्राप्त नहीं। इसमें यदि क्षेत्र सम्बन्धी स्वातन्त्र्य है, तो शैली में भी इसे अनेकविध रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें एक व्यक्ति

का जीवन कथात्मक, घटनात्मक अथवा आत्मविश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति का आधार हो सकता है, तो इसमें पूरे युग को भी चित्रित किया जा सकता है। एक पीढ़ी या अनेक पीढ़ियों का वृत्त इसमें समाविष्ट हो सकता है। एक नगर, एक देश अथवा अनेक स्थल इसके परिवृत्त में आ सकते हैं। इसे वर्णनात्मक, विवरणात्मक, पत्रात्मक या डायरी रूप में भी गठित किया जा सकता है। नाटकीय तत्वों के समावेश से यह कथा और रंगमंच दोनों का प्रभाव प्रदान कर सकता है शायद इसीलिए 'मैरियन काफर्ड' ने इसे 'जेबी थियेटर' कहा था।[41]

उपपत्ति कृतो ह्यर्थः उपन्यासः प्रकीर्तितः अर्थात् किसी अर्थ को युक्तिपूर्वक प्रस्तुत करना 'उपन्यास' है। उपन्यास शब्द उप–समीप तथा न्यास–थाती के योग से बना है, जिसका अर्थ है–मनुष्य के निकट रखी गई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है। संस्कृत के लक्षण ग्रंथों में नाटक की प्रतिमुख संधि के एक भेद–विशेष का नाम भी 'उपन्यास' बताया गया है।

उपन्यास : प्रसादनम् अर्थात् प्रसादन को उपन्यास कहते हैं। उपन्यास में 'उप' और 'नि' इसके उपसर्ग है 'अस्' धातु है जिसका अर्थ है फैंकना (या सम्मुख रखना) अथवा होना। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'उपन्यास' शब्द का अर्थ केवल सम्मुख प्रस्तुत करना या होना ही है। साहित्य रूप के अर्थ में इसका प्रयोग सबसे पहले बंगला में हुआ। इसके अतिरिक्त किसी भी पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए सामान्य भाषा में उपन्यास शब्द प्रयुक्त होता ही रहा है जिसका एक उदाहरण है अमरुक का बहुद्धृत पद्य **"निर्यातः शनकैरलीक–वचनोपन्यासमालीजनः।"**[42]

कहीं–कहीं विचारों की प्रस्तुति और काव्यात्मक प्रतिवेदन के अर्थ में भी मनु[43], कालिदास[44] एवं भवभूति[45] आदि ने इस शब्द का प्रयोग किया है। शिक्षा, उपदेश, भूमिकादि, अर्थों में भी बहुधा 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग किया गया है– ''आत्मान उपन्यासपूर्वम्।'' अमरकोशकार ने 'उपन्यास' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है–

"द्वे वचनोपक्रमस्य–उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्"[46] अर्थात् बात आरम्भ करने के दो नाम हैं– **"उपन्यास एवं वाङ्मुख"**।

उपन्यास ऐसी रचना है, जिसमें जीवन को न केवल व्यापकता से बल्कि निकट से भी देखने, समझने का अवसर मिलता है। इसलिए इस प्रकार की उक्ति सुनने व पढ़ने को मिलती है कि उपन्यास उस इतिहास से अधिक विश्वसनीय है, जो कि वास्तव में घटित हो चुका है। इसके साथ यह भी कहा जाता है कि उपन्यास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त कोई बात सच नहीं होती। संस्कृत के वरेण्य साहित्य में उपन्यास की इसी प्रकार की विधा को पहले 'कथा' या 'आख्यायिका' का नाम दिया गया था। लक्षणकारों ने बड़ी विस्तृत सोदाहरण समीक्षा के साथ इसकी परिभाषा तथा लक्षण आदि भी बनाये थे और वासवदत्ता, कादम्बरी आदि को उनके उदाहरणों के रूप में उल्लिखित किया था। जैन कथाकार सिद्धर्षिगणी की 'उपमित–भवप्रपंचाकथा' जैसे पूर्णतः प्रतीकात्मक उपन्यास एक अलग–थलग विधा का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं जिनमें अत्यन्त सुगठित गद्य है किन्तु कथानक में संसार सागर के आवर्त विवर्तों में जकड़े संसारियों के भवबन्धन को दार्ष्टान्तिक बनाकर अलेगरी (Allegory) के रूप में किसी बंधन में जकड़े व्यक्ति की कथा गूंथी गई है।

उपन्यास : परिभाषा

पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है– "उपन्यास वह साहित्य रूप है जो लेखक या पाठक में इस प्रकार का व्यक्तिगत घरेलू सम्बन्ध स्थापित करता है, जिसमें लेखक को अपने अनुभव सीधे पाठक के पास पहुँचाने की प्रबलतम सम्भावनाएँ उपस्थित रहती है।"[47] साथ ही उपन्यास वह गद्य कथा है, जिसमें विशेष कौशल से कुतूहल उत्पन्न करके कोई ऐसी सत्य या कल्पित कथा कही जाती है जिसमें मनोविनोद होता है या किसी विषय व नीति का परिचय और प्रचार किया जाता है।[48]

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र – उपन्यास को कथा एवं आख्यायिका का मिश्रित भेद मानकर कहते हैं कि उपन्यास में कालखण्ड–विशेष का सांगोपांग जनजीवन, दर्पण में उतरे प्रतिबिम्ब की भांति विस्तारपूर्वक विन्यस्त होता है।

"कथाऽऽख्यायिकयोः कश्चिन्मिश्रभेदोऽपि साम्प्रतम्
उपन्यास इति ख्यातो भाषान्तर–प्रतिष्ठितः।।
कालखण्डविशेषस्य समग्रं जनजीवनम्।
प्रतिबिम्ब इवादर्शे न्यस्तेऽत्र सविस्तरम्।।"[49]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने उपन्यास का लक्षण इस प्रकार किया है– **"गद्य बद्ध उपन्यासों, महाकाव्यमयी कथा"**[50] अर्थात् उपन्यास गद्य में निबद्ध होता है तथा इसकी कथा व्यापक फलक पर चित्रित होती है। डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं कि उपन्यास में जीवन का सर्वाङ्गीण रूप वर्णित होता है। उदात्त अलंकार का प्रयोग अवश्य किया जाता है। प्रेम, आह्लाद, विषाद्, विभीषिका आदि उपन्यास में विशेष रूप से वर्णित होते हैं।[51] प्रसंगवश डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने उपन्यास की चार अवस्थाएँ भी बतलायी हैं–

"उपन्यासे कथारम्भः संघर्षः, आरोहः, अवसानम् समाप्तिर्वेति चतस्त्रोऽवस्था भवन्ति।"[52]

डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी – ने उपन्यास का लक्षण इसप्रकार दिया है–

"गद्यकाव्यवृहद्बन्धं उपन्यासोऽभिधीयते।
अस्मिन् युगोचितं वस्तु पात्रं कवि समीहितम्।।
देशकालोचितं चित्रं गद्यशिल्पं मनोहरम्।
कल्पितं चापि तत्सर्वं यथार्थं सत् प्रतीयते।।"[53]

मानव जीवन की समस्याओं और उसके समाधान को उपन्यास की कथावस्तु के रूप में परिभाषित करते हुए आधुनिक संस्कृत विद्वान्–

प्रो. हरिनारायण दीक्षित कहते हैं कि– "मानवीय जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अच्छाईयों और बुराईयों का गद्यकाव्य भाषा में दिल और दिमाग पर असर डालने वाली रोमांचगर्भित कथा के रूप में समाधानोन्मुख चित्रण करना उपन्यास है।"[54]

डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार – "युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य काव्य उपन्यास कहलाता है।"[55]

श्यामसुन्दर दास – "उपन्यास मनुष्य जीवन के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा हैं।"[56]

प्रेमचन्द – मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ, मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।

उपर्युक्त परिभाषाओं में एक या दूसरे तत्त्व पर अधिक बल देने का प्रयास स्पष्ट है। **डॉ. गुलाबराय** की परिभाषा उपन्यास की प्रकृति को अधिकाधिक स्पष्ट करने में पर्याप्त सार्थक प्रतीत होती है। वह कहते हैं– **"उपन्यास कार्य–कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य–कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।"**

उपन्यास के तत्त्व – उपन्यास के तत्त्व निम्न हैं–

1. कथावस्तु
2. पात्र एवं चरित्र चित्रण
3. संवाद या कथोपकथन
4. देशकाल तथा वातावरण
5. भाषा शैली
6. विचार और उद्देश्य

उपन्यासों का वर्गीकरण

उपन्यास बहुत व्यापक, बेहद विस्तीर्ण और अत्यधिक वैविध्यपूर्ण विधा है। सरल रूप में उपन्यासों का वर्गीकरण संभव नहीं है। मानवीय क्रिया, मानवीय लक्ष्य, मानवीय अभिव्यंजना–शिल्प के जितने विविध प्रकार संभव है, उपन्यास के उतने ही विविध वर्ग हो सकते हैं। उपन्यासों का वर्गीकरण प्रायः असाध्य साधना होने पर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न तत्त्वों की वरीयता के आधार पर उपन्यास विधा को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **रूप विधान** की दृष्टि से उपन्यासों को वर्णनात्मक अथवा घटना प्रधान, भावना–प्रधान, चरित्र–प्रधान, नाटकीय और रसप्रधान रूपों में बांटा जा सकता है।
2. **कथावस्तु** की दृष्टि से उपन्यासों के पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, गार्हस्थिक, राजनीतिक, तिलिस्मी, जासूसी, वैज्ञानिक, साहसिक, प्राकृतवादी, और धार्मिक आदि वर्ग हो सकते हैं। एकाधिक तत्त्वों का समन्वय भी संभव है।

जैसे– सामाजिक और राजनीतिक, वैज्ञानिक एवं जासूसी अथवा पौराणिक एवं धार्मिक कथाओं को समन्वित रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

3. **उद्देश्य** की दृष्टि से उपन्यास सांस्कृतिक, प्रेमाख्यानात्मक अथवा रोमांसिक, नैतिक, सुधारमूलक, मनोविश्लेषणात्मक तथा मनोरंजन–प्रधान रूपों में वर्गीकृत हो सकते हैं।

4. **शैली** की दृष्टि से उपन्यास व्याख्यात्मक, आलंकारिक, हास्य–व्यंग्यपरक, आत्मकथात्मक, जीवनीपरक, आत्म–संस्मरणात्मक, पत्रात्मक एवं डायरी आदि के रूप में हो सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हर विकसित भाषा में उपर्युक्त सभी वर्गों–उपवर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाएँ प्राप्त होती हैं, पर वृहत्तर रूप में यह वर्गीकरण बात की खाल खींचने का ही प्रयास माना जा सकता है। जैसे मानव जीवन संकुल और संश्लिष्ट है वैसे ही उपन्यास विधा भी संकुल और संश्लिष्ट होने के कारण अनेक रूपों, प्रकारों और संश्लेषों में प्राप्त होती है।

आधुनिक काल में संस्कृत गद्य साहित्य का विपुल–विकास हुआ है। आधुनिक संस्कृत लेखन युगबोध से प्रभावित है। पाश्चात्य साहित्य, शिक्षा व विशिष्ट शैलियों की अनुभूति के आधार पर संस्कृत काव्य में अभिनव प्रयोग किये जा रहे हैं। समाज संस्कृति की तात्कालिक परिस्थितियों के प्रतिबिम्ब इस साहित्य में झलकता है।

संस्कृत साहित्य में उपन्यास शैली का सूत्रपात **'अभिनवबाण' की उपाधि से विभूषित पं. अम्बिकादत्त व्यास के 'शिवराजविजय'** से होता है। महाराष्ट्र शिरोमणि छत्रपति वीर शिवाजी के जीवन चरित्र का वर्णन किया है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं का कलापूर्ण, हृदयग्राही और विशद् चित्रण है। पं. अम्बिकादत्त व्यास का रचनाकाल 1858 से 1900 ई. है। शिवराज विजय में संवाद सौष्ठव और विशद् वर्णन शक्ति सराहनीय है।

इस प्रकार कथावस्तु, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, भाषा–शैली, उद्देश्य आदि तत्त्वों की उत्कृष्टता के साथ एक आदर्श उपन्यास के रूप में खरा उतरने वाला 'शिवराज विजय' नई चाल के उपन्यासों का प्रवर्तक माना जा सकता है।

मौलिक उपन्यास – संस्कृत के आधुनिक उपन्यास का प्रारंभ अन्य भाषाओं की इस नूतन विधा के प्रभाव ग्रहण कर लिखे उपन्यासों से हुआ और शीघ्र ही इसकी अपनी मौलिक परंपरा बनने लगी।

शैली में यथार्थपरकता, सरलता और कथानक, चरित्र–चित्रण, देशकाल आदि पर अधिकध्यान–आधुनिक उपन्यास की इन प्रवृत्तियों का प्रतिफलन परवर्ती उपन्यासों में अधिकाधिक होता गया। व्यास–युग में ही नई चाल के उपन्यासों की एक ऐसी लम्बी श्रृंखला शुरु हुई जिसमें बंगला उपन्यासों की तरह घटनाओं की गति और कथोपकथन की यथार्थता के पुट से यथार्थवादी परिवेश का संस्कृत कथा–लेखन में प्रवेश हुआ, कादम्बरी वाली अलंकृत शैली से मुक्ति का सतत् प्रयत्न परिलक्षित हुआ, जिसने भट्ट मथुरानाथशास्त्री युग में आते–आते अधिक आधुनिक और यथार्थपरक रूप धारण कर लिया तथा नये प्रयोगों की ओर रुझान शुरू किया। बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में बंगला उपन्यासों के अनुवाद की ऐसी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है जो पूर्वी और उत्तरी भारत के ही नहीं, दक्षिणी भारत के साहित्यकारों में भी पैठ गई लगती है। बंगला साहित्य के इस प्रभाव से उपन्यास और कथालेखन की नई धारा इस युग में प्रारम्भ हुई जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं के उपन्यासों और कथाओं के अनुवाद भी निकले, उन कृतियों का आधार लेकर तथा कुछ नवीनता और मौलिकता का पुट देकर लिखे जाने वाले रूपान्तर भी निकले और उनसे प्रेरणा लेकर लिखे गये मौलिक उपन्यास और कहानियाँ भी निकली। मौलिक उपन्यासों की सूची सुदीर्घ है–

शिवराजविजयम् – पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित शिवराजविजयम् के विषय में विवेचन किया जा चुका है। **'कुसुमलक्ष्मी'** इस उपन्यास के लेखक आनन्दवर्धन रत्न पारखी ने पांच समुच्छ्वासों में विभक्त इस उपन्यास को इस रूप में लिखा है मानो वे ही सम्पूर्ण घटनाओं के नायक हों उपन्यास की कथा का समय स्वतन्त्रता संग्राम का है कवि ने कथा के व्याज से आधुनिक समाज में फैली स्वछन्द–वृत्ति को प्रतिबिम्बित किया है।

जीवनस्य पृष्ठद्वयम् – देवर्षि कलानाथ शास्त्री विरचित इस उपन्यास का प्रकाशन 'भारती' नामक पत्रिका में धारावाहिक रूप में हुआ, तदनन्तर 'जीवनस्यपाथेयम्' नाम से इसका पुस्तकाकार में भी प्रकाशन हो चुका है।

द्वा सुपर्णा – रामजी उपाध्याय विरचित इस उपन्यास का नामकरण ऋग्वेद के प्रख्यात मंत्र–'द्वा सुपर्णा सखाया' के आधार पर किया गया है इसमें दो पक्षी वर्णित हैं, जिनमें एक तो स्वादिष्ट फल खाता है तथा दूसरा दर्शन मात्र से अपने को कृतकृत्य मानता है। व्यञ्जना के द्वारा इस उपन्यास में कृष्ण प्रथम पक्षी के रूप में चित्रित है, जो वैभव सम्पन्न व योगीश्वर है द्वितीय पक्षी के रूप में सुदामा को चित्रित किया गया है जो लौकिक वैभव की उपेक्षा कर ब्रह्मतेज को धारण करता है।

रयीश – इस उपन्यास के प्रणेता रामकरण शर्मा है। कवि ने 'रयीशः' पद को वैदिक साहित्य के 'रयि' (धन के पर्याय) तथा लौकिक–वैदिक भाषा के 'ईश' पदों से निष्पन्न बताया है जिसका अर्थ है– धन का स्वामी।

चन्द्रमहीपति – यह श्रीनिवास शास्त्री द्वारा रचित है–

केशवचन्द्रदाश ने भी उपन्यास–विधा में प्रभूत लेखन कार्यकर अपनी विद्वता का परिचय प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा रचित 14 उपन्यास अपनी समसामयिक कथावस्तु एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है– तिलोत्तमा (1980), शीतलतृष्णा (1983), प्रतिपद (1984), आवर्त्तम् (1985), अरुणा (1985), निकषा (1986), ऋतम् (1988), मधुयानम् (1990), अञ्जलिः (1990), विसर्गः (1992), शिखा (1994), शशिरेखा (1999), ॐ शान्तिः (1997)। राधावल्लभ त्रिपाठी, केशवचन्द्रदाश के रचनासंसार का परिचय देते हुए कहते हैं– "उपन्यासों और कहानियों में केशव ने पहली बार संस्कृत में चेतना–प्रवाह शैली का अच्छा प्रयोग किया है। इनके कथानक पात्रों के मनोलोक में अधिक केन्द्रित रहते हैं।"[57]

उपर्युक्त विवरण से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत में उपन्यास विधा का भाण्डागार अत्यन्त समृद्ध है। प्रायः 200 कृतियों के माध्यम से उपन्यास विधा अपनी इस समृद्धि को व्यक्त कर रही है। किन्तु यहाँ ध्यान देना होगा कि क्या नवीन विधाओं में लेखन–क्रिया मात्र से ही हम संस्कृत को आधुनिक बना सकते हैं? प्रत्येक लेखक के अपने समाज व राष्ट्र के प्रति कुछ कर्त्तव्य होते हैं। यदि लेखक अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज की समस्याओं, विद्रूपताओं, विसंगतियों को प्रतिबिम्बित करके उनका समाधान नहीं सुझा सकता तो वह किसी भी स्थिति में संस्कृत को वर्तमान युग में जीवन्त नहीं रख सकता। स्तुति, प्रशस्ति,

वर्णनात्मक किन्तु अनुपयोगी सामग्री से भरी रचनाओं के स्थान पर कुछ एक रचनाएँ ही ऐसी होती हैं, जो पाठक, श्रावक के स्मृति–पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है। आज संस्कृत कवि के पास अनेक विधाएँ हैं जिनके माध्यम से वह अपना कथ्य प्रस्तुत कर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि वह इनका सदुपयोग करे। उपन्यास विधा अपनी रोचकता के माध्यम से पाठक–वृन्द में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का 'शिवराजविजय' आज 100 वर्षों के उपरान्त भी अपना स्थान व प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। व्यास जी से निःसृत इस धारा को हरिनारायण दीक्षित, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, केशवचन्द्रदाश, उमेश शास्त्री 'मधु', रामकरण शर्मा प्रभृति उपन्यासकार अपने भगीरथ–प्रयासों से अनवरत गतिप्रदान कर रहे हैं। आशा है कि नवीन पीढ़ी के रचनाकारों के हस्तगत होकर यह विधा अपनी रोचकता व उपादेयता बनाए रखेगी तथा इनकी रचना महज खानापूर्ति के लिए न होकर– **"बहुजनहिताय बहुजनसुखाय"** होगी।

इस प्रकार संस्कृत आधुनिक युग के अनुरूप साहित्य सर्जना का माध्यम बनी हुई है। इसमें शैलीगत और शिल्पगत इन नई प्रवृतियों के साथ–साथ विषय–वस्तु और कथ्य में जो नवीनता आई है, वह आधुनिक साहित्य की उल्लेखनीय विशेषता है। प्राचीन साहित्य में पौराणिक या ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर लेखन होता था किन्तु आधुनिक युग में नये सामाजिक विषयों पर विधाओं में लेखन हो रहा है। इसी उपन्यास विधा का एक प्रकार है **डायरी** जिसके विषय में बहुत विस्तृत कार्य तो नहीं हुये हैं परन्तु आधुनिक समय में इन नवीन विधाओं पर नवीन कार्य प्रगति पर है।

डायरी विधा का उद्‌भव एवं विकास

साहित्यिक विधा के रूप में डायरी अथवा दैनन्दिनी को साहित्यकार की निजी व्यक्तिपरक और गहरी संवेदनापरक अनुभूति का सबलतम सर्वाधिक प्रामाणिक और सशक्त गद्य–रूप कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण पर डायरी लेखन–विधा का भी विकास हो रहा है। इसे हम साहित्य का शुद्ध स्वरूप नहीं मान सकते किन्तु फिर भी इसे साहित्य से बहिष्कृत भी नहीं किया जा सकता है। गद्य–साहित्य की नवीन विधाओं में डायरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अंग्रेजी शब्द है जिसे हिन्दी में ज्यों का त्यों अपना लिया गया है। **दैनिकी**, **दैनंदिनी, वासुरी, वासरिका** शब्द डायरी के लिए हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। अपने

सीमित अर्थ में डायरी का तात्पर्य है वह कॉपी, नोटबुक या ऐसी पुस्तिका जिसमें दिन भर के कार्यों का, गतिविधियों का, घटनाओं का अथवा विशिष्ट दायित्वों का विवरण क्रमवार रखा जाता है। दैनिक जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होती हैं जो हमारे मन को प्रभावित करती है। कुछ घटनाएँ हमें हर्षमग्न करती हैं, कुछ अवसादग्रस्त, कुछ से खीझ उत्पन्न होती है, कुछ से वितृष्णा। कुछ हमें उत्साह और स्फूर्ति से भर देती है और कुछ खेद से खिन्न कर देती हैं। साहित्यकार अधिक संवेदनशील होता है, इन घटनाओं की उस पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है। एकान्त के क्षणों में जब वह इन घटनाओं की मीमांसा करता है या इनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तो **'डायरी शैली'** का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। किसी दैनिक घटना के संदर्भ में अपने मन की उँधेड़–बुन व्यक्त करने के लिए 'डायरी' सर्वोत्तम माध्यम है।

"डायरी एक ऐसी आत्मीय पुस्तक होती है, जिसमें डायरीकार कालक्रमानुसर अपने जीवन की दैनिक घटनाओं, क्रिया–कलापों, भावों, विचारों का चित्रण करके आत्म विश्लेषण एवं आत्म–विवेचन प्रस्तुत करता है।"[58]

डायरी में किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है इसमें समय और स्थान के अनुसार घटित घटनाओं का वर्णन किया जाता है। लेखक स्थान या नगर आदि का चित्रण भी करता है। उस समय वह शब्दों के माध्यम से चित्र प्रस्तुत करता है। लेखक अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करता है, जिससे पाठक का मन उसकी ओर आकर्षित हो। अच्छी डायरी में स्पष्टता, सहजता, संक्षिप्तता, सुसंगठितता, रोचकता आदि गुणों का समावेश होता है।

डायरी आधुनिक गद्य की सर्वाधिक वैयक्तिक विधा है 'हिन्दी साहित्य कोश' में डायरी की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– **"सीमित अर्थ में वह कॉपी, नोट बुक या वह पुस्तिका है जिसमें हर रोज दैनिक घटनाओं या दिनभर में किए गए कार्यों का लेखा–जोखा रखा जाए पर प्रचलित अर्थ में डायरी दैनिक व्यापारी–घटनाओं का ब्यौरा है। डायरी में लोग अपने थोड़े या सब अनुभवों तथा निरीक्षणों का दैनिक विवरण रखते हैं।"**

डायरी वैयक्तिक विधा है तथा व्यक्तित्व प्रकाशन का सर्वाधिक प्रामाणिक माध्यम है। इसमें लेखक निजी भावों को सहज स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें वर्तमान के, नित्य–प्रति घटित एवं प्राप्त अनुभवों को प्रस्तुत करते हुए

कभी–कभी अतीत की घटनाओं का स्मरण एवं पुनर्मूल्याकंन भी होता है इसमें औपचारिकता का अभाव रहता है तथा सद्यः स्फुरित भावों एवं प्रतिक्रियाओं को छोटे–छोटे विवरणों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। पुलिस की डायरी, माल की आवक अथवा जावक की डायरी, समुद्री जहाज, हवाई–जहाज आदि के यात्रा विवरण की दैनिक डायरी आदि इसी वर्ग में आयेगी। डायरी में व्यक्ति अपने दिनभर के कार्य विवरण को या किसी विभाग अथवा किसी संस्था विशेष की डायरी लिखने वाला व्यक्ति वहां के कार्य–विवरण को दर्ज करता है परन्तु साहित्यिक विधा के रूप में इसका प्रतिदिन लिखे जाने वाला अर्थ तो अवश्य संलग्न होता है, पर यह आत्मकथा–वर्ग की वह भावनापूर्ण और संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति होती है जिसके माध्यम से लेखक अपने प्रतिदिन और प्रतिक्षण के सत्य एवं संवेद्य अनुभवों को भाषिक रूप में अभिव्यक्त करके साहित्य रूप में संप्रेषणीय एवं संरक्षणीय बनाता है इस नवीन विधा में साहित्य का सर्वाधिक वैयक्तिक बोध विद्यमान माना जाता है।

डायरी के माध्यम से लेखक के सद्यः स्फुरित भावों और विचारों को अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। दैनन्दिनी अथवा रोज–रोज नये–से–नये रूपों में नये–से–नये अनुभवों के रूप में अभिव्यक्ति के कारण ही इस विधा की लेखक के साथ निकटता, उसकी आत्मीयता और संवेदना के गुणों का स्पष्टीकरण हो जाता है। लेखक के मन पर पड़ने वाले प्रभाव उसी दिन डायरी में लिखित रूप प्राप्त करने के कारण उसकी शुद्धतम और पवित्रतम अभिव्यंजना रूप होते हैं। यदि परवर्ती अनुभवों के आधार पर उसकी पूर्व–अनुभवों सम्बन्धी धारणाओं और प्रतिक्रियाओं में आमूल परिवर्तन की स्थिति भी आती है तो भी डायरी उसके व्यक्तित्व के विकास का सर्वाधिक प्रामाणिक अभिलेख माना जा सकता है। यह लेखक के आत्मप्रकाशन का सर्वाधिक प्रामाणिक रूप होता है। प्रामाणिक इस अर्थ में कि प्रायः डायरियाँ अपने निजी भावों और विचारों को लिख लेने के उद्देश्य से ही रचित होती है, पुस्तक–प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं। विशुद्ध डायरी शायद कभी भी इस उद्देश्य से नहीं लिखी जाती कि भविष्य में उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जायेगा। पर यह तो उसकी प्रामाणिकता, भावुकता, शैली की उत्कृष्टता और सम्प्रेषणीयता के गुणों के कारण ही है कि कुछ डायरियाँ पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होती हैं और साहित्य में उनको महत्त्वूपर्ण स्थान प्राप्त होता है।

डायरी में लेखक, दिन, तिथि, सन् आदि के आधार पर अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के साथ–साथ समकालीन परिस्थितियों, यथा– समकालीन, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करता है यह लेखक की निजी संपति होती है। अपनी भावनाओं और अनुभूतियों के चित्रण में निजता का अंश अधिक होता है। डायरी का रूप स्वभावतः अधिक आत्मपरक है, क्योंकि उसका लेखन साधारणतः यह मानकर होता है कि उसका पाठक स्वयं लेखक ही होगा। इसलिये डायरी जैसी निजी और स्वछन्द अभिव्यक्ति अन्यत्र अकल्प्य है। डायरी में देश–काल और वातावरण का बड़ा महत्त्व होता है। यह लेखक के लिए निजी दस्तावेज है। इस दृष्टि से डायरी में सम्प्रेषण की समस्या खास तौर से होती है। आवश्यक नहीं है कि लेखक के साथ पाठक भी इस कृति से सम्प्रेषित हो। डायरी लेखक के अत्यधिक निकट होती है, इसलिए ऐसा भी सम्भव है कि उसमें कलात्मक तटस्थता का अभाव रह जाए। सामान्य रूप में रखी जाने वाली डायरियाँ अनिवार्य रूप में साहित्यिक होती भी नहीं है। ऐसी डायरियों में साहित्यिक दृष्टि से भावात्मकता, संवेदना, सम्प्रेषणीयता और संगति का अभाव हो सकता है परन्तु यदि उसमें निकटता और आत्मीयता के साथ–साथ शिल्पगत कलात्मकता के तत्त्व विद्यमान हो तो निश्चित रूप में इसे साहित्य की व्यक्तिपरक विधाओं के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है।

डायरी को आत्मकथा का ही एक रूप माना जा सकता है। डायरी में सामान्यतः ताजे अनुभवों को लिखा जाता है। कभी–कभी अतीत की घटनाओं का भी समकालीन संदर्भ में पुनर्मूल्याकंन संभव होता है। आत्मकथा में लेखक अधिक संतुलित दृष्टि से अपने सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टिपात करके एक विशेष विकास–दर्शन और विकास–दिशा के अनुरूप कथा का विकास करता है। इसके परिणाम स्वरूप आत्मकथा अधिक व्यवस्थित, अधिक संतुलित और अधिक प्रभावपूर्ण विधा हो सकती है पर अनुभूति की निकटता, प्रामाणिकता और दैनन्दिन तथ्यपरकता की दृष्टि से निश्चित रूप में डायरी अधिक सार्थक रचना है। इन सब संभावनाओं के बावजूद भी डायरी साहित्य उत्कृष्ट है क्योंकि इसमें भी पाठक लेखक की रौ में बह जाता है। अन्य विधाओं की भाँति डायरी साहित्य के भी कुछ मूलभूत आवश्यक तत्त्व होते हैं जो निम्न प्रकार से हैं–

डायरी के तत्त्व

1. वर्ण्य विषय

डायरी लेखक के जीवन का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। लेखक अपने जीवन के सरोकारों से परिचित होकर लिपिबद्ध भाषा के माध्यम से अपने अनुभवों को व्यक्त करता है। लेखक अत्यन्त संवेदनशील प्राणी होता है। इसलिये अपने बाह्य वातावरण में होने वाली समस्त घटनाओं (जैसे–सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, अध्यात्मिक, प्राकृतिक, भौगोलिक आदि) मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित होता है। इस कारण डायरी का वर्ण्य विषय बहुत विस्तृत और व्यापक हो जाता है। डायरी तत्कालीन परिस्थितियों का वह पुंज है, जिससे लेखक और लेखक का समय दोनों आलोकित होते हैं। डायरी कुछ लोग प्रतिदिन लिखते हैं। कुछ लोग, कुछ दिन छोड़कर भी लिखते हैं, यह आत्मचरित्र के अधिक निकट होती है। दैनन्दिन घटनाओं का वर्णन संक्षिप्त, स्पष्ट, सरल, सहज, सारगर्भित, स्वरूप में समाहित होता है।

2. पात्र

डायरी आत्मचरित विधा है इसलिये आत्मकथा की भाँति इसमें मुख्य पात्र लेखक स्वयं होता है। स्वयंभू लेखक समसामयिक घटनाओं से प्रभावित होता है। संसार में व्याप्त मूर्त–अमूर्त, जड़–चेतन, सत्य–असत्य और यथार्थ–कल्पना की बुनघट में वह अपनी दृष्टि से पात्र की संरचना करता है। डायरी लेखक पात्र की क्रियाओं से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को ही अपनी दैनंदिनी का हिस्सा बनाता है। यथा–जमनालाल बजाज की डायरी, सुशीला नायर द्वारा लिखित 'बापू की कारावास कहानी', महादेव भाई देसाई और मनुबहन गांधी की डायरी के प्रमुख पात्र महात्मा गांधी हैं। इन सभी लेखकों ने गांधी जी के साथ बिताये समय को कलमबद्ध किया है। गाँधी जी के कार्यों, दिनचर्याओं, चर्चाओं और आन्दोलनों को लिपिबद्ध करते हुए स्वयं के प्रभावित होने के कारणों को भी अभिव्यक्त किया है। अतः पात्र संयोजन का फलक भी डायरी साहित्य में विस्तृत रूप से फलीभूत होता है।

3. परिवेश और वातावरण

डायरी में देश, काल और वातावरण का बड़ा महत्त्व होता है। उसकी पृष्ठभूमि की सहायता से लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट होकर सामने आ जाता है। स्थानीय ज्ञान लेखक के लिये जरुरी होता है। इसमें तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन स्वाभाविक रूप से किया जाता है। डायरी समसामयिक वातावरण का

महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। डायरी के माध्यम से लेखक तत्कालीन परिवेश में व्याप्त प्रमुख घटनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करने में सफल होता है। हिन्दी साहित्य में मुख्यतः डायरी लेखन में यात्रा, भ्रमण, जेल, कॉलेज, स्वतन्त्रता–आन्दोलन, गाँधी–युग आदि से संबंधित विशिष्ट साहित्यिक और ऐतिहासिक कृतियाँ उल्लेखनीय हैं।

4. भाषा शैली

डायरी साहित्य चूँकि रोजनामचा है, इसलिए उसकी भाषा सरल, स्पष्ट और संक्षिप्त होती है। वाक्य सारगर्भित, गंभीर और स्वाभाविक विश्लेषण की क्षमता वाले होते हैं। डायरी लेखक के व्यक्तित्व का आईना है इसलिए शैली में निःसंकोच, संशयरहित, समाधानयुक्त, आत्मविश्लेषण को प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। साँच को आँच नहीं की तपिश से प्रेरित मानसिक प्रतिक्रियाओं का संक्षिप्त विवरण, घटनाओं में संबद्धता, स्पष्टता, सजीवता, सहजता आवश्यक है। भाषा शुद्ध, सरस, सरल, प्राजंल, परिमार्जित, भावानुकूल, विषयानुकूल, कलात्मक एवं चित्रात्मक होनी चाहिए।

5. उद्देश्य

डायरी का प्रमुख उद्देश्य आत्म–विवेचन और आत्म–विश्लेषण होता है। यह स्वान्तः सुखाय हेतु लिखी जाती है। इसके माध्यम से लेखक दूसरों की जानकारी, समीक्षा और प्रशंसा का अभिलाषी नहीं होता। वह तो अपने भावों, विचारों और घटनाओं को डायरी में सहज रूप से अभिव्यक्त करता है। लेखक की डायरी से पाठक को प्रेरणा भी मिलती है, जानकारी और ज्ञान भी। डायरी के माध्यम से लेखक अपने वजूद को तराशता है। अपनी असफलताओं को सफलताओं में परिणत करने के लिए प्रतिबद्ध और संकल्पबद्ध होता है। डायरी द्वारा लेखक का मानसिक मंथन होता है जिसमें साहित्य और समाज को बहुत सी महान् विभूतियाँ प्राप्त हुई।

डायरी साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

डायरी साहित्य की मूलभूत विशेषताएँ निम्न हैं–

1. डायरी आत्म समीक्षात्मक, आत्माख्यान होती है।
2. मानसिक प्रतिक्रियाओं का रोचक गुंफन होती है।
3. संक्षिप्तता, मार्मिकता, सहजता, सरलता, स्वाभाविकता, समरसता, सहृदयता, स्पष्टवादिता, प्रखरता, प्रौढ़ता, यथार्थता, भावुकता, चित्रात्मकता, कलात्मकता संवेदनशीलता और विश्लेषणात्मकता के गुणों से पूरित होती है।

4. जीवन की सत्य–असत्य घटनाओं का सूक्ष्म चिन्तन प्रस्तुत करती है।
5. प्रकृतिदत्त संवेदनाओं और अनुभूतियों का वर्णन करती है।

हिन्दी में डायरी शैली का प्रचलन भी काफी नया है। कुछ उच्च राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर के व्यक्तियों की डायरियाँ ही प्रकाश्य और प्रसारणीय स्तर प्राप्त कर सकी हैं। साहित्यकारों की संख्या तो इस दृष्टि से और भी कम है। अधिकांशतः राजनीतिक क्षेत्रों में डायरी विधा का अच्छा प्रयोग हुआ है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक भारतेन्दु से ही डायरी साहित्य विधा, गद्य–विधा की प्रमुख धारा बनी हुई है। आधुनिक गद्य–पद्य साहित्य के विकास क्रम के काल–खण्डों में यह साहित्य सरस्वती नदी की भाँति रहा है। किसी विशेष वाद या काल खण्ड में इसका प्रकाशन अधिक हुआ तो कभी कम लेकिन वर्तमान तक यह विधा अपने अस्तित्व के साथ नये–नये आयामों को प्रकट करती रही है।

हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार पाश्चात्य साहित्य का अनुकरण करके इंटरव्यू पद्धति को अपनाया गया है, उसी प्रकार डायरी पद्धति को भी। कुछ विद्वान् इसे शुद्ध साहित्यिक विधा नहीं मानते हैं। यह ठीक है कि इसमें साहित्य का अंश कम होता है किन्तु इसी आधार पर इसे साहित्य से बहिष्कृत कर देने का कोई तुक नहीं प्रतीत होता है। डायरी लेखक को संक्षेप में, किन्तु बड़ी सफाई से अपनी बात को स्पष्ट करना पड़ता है। इसकी विशेषताएँ प्रमुख रूप से तीन हैं–**व्यंजना, व्यंग्य और वर्णन सजीवता।** डायरी लेखक डायरी लेखन की प्रक्रिया में अनेक बातों व परिस्थितियों का विश्लेषण करता चलता है। इस विश्लेषण में उसका आत्म विश्लेषण भी हो जाता है। डायरी दो प्रकार की हो सकती है–

1. साहित्यिक डायरी
2. ऐतिहासिक डायरी

साहित्यिक डायरी में डायरी लेखक का व्यक्तित्व झलका करता है और ऐतिहासिक डायरी में घटनाओं की यथार्थता भी प्रतिध्वनित होती है। लेखक के व्यक्तित्व का समावेश होने के कारण साहित्यिक डायरी सरस, रोचक और मधुर हो जाती है।

हिन्दी में लिखा डायरी साहित्य

हिन्दी में डायरी लेखन की कला का जन्म 1930 के आस–पास हुआ। **नरदेव शास्त्री** को इसका प्रथम लेखक माना जाता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि

इससे पहले टॉलस्टाय की डायरी का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका था। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने हिन्दी में डायरी लेखन को उसी अनुवाद से प्रेरित माना है।

1. **नरदेव शास्त्री** – इनकी डायरी का प्रकाशन वेदतीर्थ की 'जेलडायरी' के नाम से हुआ। इस डायरी में घटनाओं का वर्णन अत्यन्त भावुकता के पुट से किया गया है।

2. **घनश्याम बिडला** – बिडला साहब ने 1931 की गोलमेज कॉन्फ्रेंस का वर्णन अपनी **'डायरी के पन्ने'** कृति में किया है। शैली चित्रात्मक और विस्तृत घटनाओं को संक्षिप्त करके कहने की प्रवृति है।

3. **रावी–रावी** वर्तमान लेखकों में ख्याति प्राप्त लेखक माने जाते हैं। उन्होंने कविताओं से हटकर डायरियाँ भी लिखी हैं। इनकी 'बुकसेलर की डायरी' प्रसिद्ध और रोचक है। एक व्यक्ति के जीवन के उत्थान–पतन की इतनी रोचक कहानी और कहीं शायद ही सम्भव हो। रोचकता, यथार्थता और शैली की संक्षिप्तता इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

4. **महादेव देसाई** – देसाई उच्च कोटि के लेखक हैं। गाँधीजी के ये अच्छे परिचित मित्रों में से थे। इनकी डायरी 'गांधी विचारधारा' से प्रभावित है।

5. **सज्जन सिंह** – इन्होंने लद्दाख की यात्रा के अनेक अनुभव और वर्णन अपनी डायरी में संग्रहीत किए हैं। इनकी यह डायरी 'लद्दाख की यात्रा' के नाम से छपी है। इसमें मीठे, कड़वे सभी अनुभवों की सच्ची अभिव्यक्ति है।

6. **विनोबाभावे** – भूदान यज्ञ के रचयिता को लेकर भी अनेक डायरियाँ लिखी गई हैं। इनके सहयोगियों ने अपने यज्ञ से सम्बन्धित संस्मरणों को डायरी के रूप में प्रकाशित कराया। इस क्षेत्र में कार्य करने वालों में निर्मला पाण्डे और दामोदरन मूँदड़ा के नाम प्रसिद्ध हैं। निर्मला की डायरी का नाम 'सर्वोदय पद–यात्रा' और मूँदड़ा जी की रचना का शीर्षक 'विनोबा के साथ' है।

7. **इलाचन्द्र जोशी** – इन्होंने भी अपनी 'नीरस डायरी' के पृष्ठ लिखकर पाठकों को बड़ी सरस सामग्री प्रदान की है। 'डायरी के फटे पन्ने' नामक संकलित डायरी में इलाचन्द्र जोशी ने अपनी विचारधारा, जीवनानुभव तथा दैनिक प्रतिक्रियाएँ पर्याप्त सहज ढंग से अभिव्यक्त की है। इसमें हमें मानवीय विडम्बना का ब्यौरा तथा हिन्दी गद्य साहित्य की भाषा के बदले हुए स्वरूप का परिचय मिलता है। यह डायरी

बिखरे हुए घटना सूत्रों का चित्रण करते हुए भी रचना की पूर्णता को लिए है और यही डायरी कला की सफलता है। इसमें मनुष्य जीवन की सार्थकता विवेच्य बनी है। सम्पूर्ण सृष्टि–चक्र के बीच उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति कहाँ तक हो पाती है तथा सृष्टि के सन्नाटे के अनन्त प्रसारित कुहरे के भीतर उसे किस प्रकार जीना चाहिए–इन महत्त्वपूर्ण मानवीय समस्याओं को उन्होंने कड़कड़ाती ठण्ड के कारण बन्द मुट्‌टी के साथ वार्तालाप के माध्यम से विश्लेषित किया है। इस डायरी में दैनिक घटनाक्रम में सामान्य और असामान्य दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएँ चित्रित हुई हैं। लेखक इन उलझनों पर विचार करते हुए गाँधी जी की उपलब्धियों एवं उनके चिन्तन की सार्थकता के सम्बन्ध में विचार करता है। डायरी से एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है, 'गाण्डीव धनुष वही है किन्तु बाण और उन्हें चलाने की कला बदल गई है। हिमालय के शिखरों को भी आक्रमणकारियों ने रौंद डाला। बन्द मुट्‌ठी उसे काल का विस्तार बता रही है। दोनों में संवाद चल रहा है। एक ओर प्राचीन संस्कृति है तो दूसरी ओर आधुनिक वैज्ञानिक विकास। वैज्ञानिक 'सुपर अनन्त' तक पहुँच चुका है। ज्ञान की सीमा अनन्त है। उसे कोई नहीं पा सकता। मृत्यु भी उस असीम ज्ञान की महातरंगों में पथ का अवरोध करने में समर्थ नहीं है। प्रस्तुत डायरी व्यंग्यपूर्ण व्यञ्जना शैली में लिखी गई है, जिसमें आधुनिक समस्याओं का व्यंग्यपूर्ण संकेत है।

अन्य डायरी लेखकों में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त का नाम लिया जा सकता है।

संस्कृत साहित्य में डायरी विधा

आधुनिक गद्य साहित्य की अनेक नवीन विधाओं में से एक है–**डायरी विधा** इस विधा में अभी तक संस्कृत साहित्य में लेखन नहीं हुआ है इस सर्वथा नवीन विधा को संस्कृत साहित्य में प्रकाश में लाने का साहस केवल एक ही कवि जुटा पाये हैं– **डॉ. हर्षदेव माधव**

डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा रचित **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** संस्कृत साहित्य की **सर्वप्रथम डायरी** है। इससे पूर्व डायरी शैली में लेखन कार्य नहीं हुआ। अन्य विधाओं में जैसे–कथा, कहानियाँ, यात्रा–वर्णन एकांकी, रेडियो–रूपक आदि में उत्कृष्टतम कार्य संस्कृत साहित्य में किये गये हैं। कथा में डॉ. पद्म शास्त्री का **'विश्व कथाशतकम्'**, यात्रावर्णन में गणपति शास्त्री का **सेतुयात्रावर्णन** तथा रेडियो रूपक में

डॉ. कलानाथ शास्त्री के **'पृथ्वीराजविजयम्'** व **'प्रतापसिंहीयम्'** जैसे रेडियो रूपक सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। परन्तु संस्कृत साहित्य डायरी विधा जैसी रोचक व मर्मस्पर्शी विधा से अछूता था। डायरी विधा में लेखक प्रतिदिन की घटना का सरस व सरल शैली में वर्णन करता है जो सीधे पाठक के हृदय तक पहुँचती है। पाठक सरलता से लिखित सामग्री को समझ पाता है। यह ऐसी विधा है जिसमें दैनिक जीवन की अनेक घटनाएँ घटित होती है जो हमारे मन को प्रभावित करती है। कुछ घटनाएँ हमें हर्षप्रदान करती हैं कुछ अवसादग्रस्त खीझ, कुछ वितृष्णा, कुछ उत्साह और स्फूर्ति से भर देती है। ऐसी ही विधा का संस्कृत साहित्य में डॉ. हर्षदेव माधव ने पदार्पण करवाया और **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** द्वारा संस्कृत गद्य साहित्य में अपनी अग्रणी दावेदारी प्रस्तुत की है 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' में **डॉ. हर्षदेव माधव** ने **मेघदूत** की कथावस्तु को संग्रहीत करके नूतन शैली में अभिशप्त यक्ष की आत्मकथा वासरिका रूप में लिखी है। जिसमें डॉ. हर्षदेव माधव ने मेघदूत के सो श्लोकों को सौ पृष्ठों व 365 दिनों में विस्तारित कर दिया। इसमें कवि ने जहाँ से कालिदास ने 'मेघदूत' की कथावस्तु को पूर्ण किया वहीं से कवि ने **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** की कथावस्तु को विस्तार दिया है। कुबेर के द्वारा अलकापुरी से निष्कासित यक्ष की विरह–व्यथा और मेघ द्वारा अपनी प्रिया यक्षिणी के संदेश के पश्चात् आगे की कथा का वर्णन किया है। यक्ष की यह डायरी चार भागों में विभक्त है श्याममेघः, अरुणमेघ, रक्तमेघ, सुवर्णमेघ।

प्रथमश्याममेघ में कार्तिकएकादशी से लेकर माघ कृष्ण अमावस्या तक की कथा का वर्णन है जिसमें कुबेर के द्वारा शापित यक्ष अलकापुरी से निष्कासित होकर रामगिरि के दिव्यप्रदेश में अवरोहण करता है जहाँ एक महात्मा जिन्होंने योगमार्ग से स्वयं अपने प्राणों को खींचकर शरीर को मुक्त कर लिया है ऐसे पुण्यात्मा यक्ष को वरदान देते हैं कि तुम जैसे निर्दोष को शाप देने के लिये कुबेर भी पश्चाताप करेगा।

द्वितीय खण्ड अरुणमेघ में फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से लेकर आषाढ़ अमावस्या तक का वर्णन किया गया है इस खण्ड में 'पार्थिवी' नामक एक नवीन पात्र की तथा यक्ष के पूर्व जन्मों की उद्भावना की है।

तृतीय खण्ड रक्तमेघ में श्रावण शुक्लप्रतिपदा से लेकर भाद्रपदी अमावस्या तक का वर्णन किया गया है। रक्तमेघ में पार्थिवी यक्ष को पूर्वजन्म की घटनाओं को

सुनाती है कि आप पूर्वजन्म में विदिशा नगरी के **पुण्यकेतु** नामक सम्राट थे तथा मैं तुम्हारी रानी पद्मिनी थी। पुण्यकर्मो के कारण ही मुझे यह सब याद रहा है।

चतुर्थ खण्ड सुवर्णमेघ में आश्विन प्रतिपदा से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक का वर्णन किया गया है। इस खण्ड में यक्ष का शापित समय पूर्ण होने वाला है। अलकापुरी से यक्षेश्वर का दूत आया उसने कुबेर का संदेश दिया कि कल आपको ससम्मान अलका में ले जाने के लिए मैं स्वयं विमान लेकर आउंगा। मुझे रत्नेश्वर के षडयन्त्र का पता चल गया है उसे अलका से निकाला जायेगा और यदि आप पार्थिवी के साथ अलका में आयेगें तो, वह भी यथेच्छ प्रवेश प्राप्त करेगी और आपका वैभव भी दुगुना होगा। यक्ष कहता है मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं अलका नहीं जाऊंगा और यदि संपूर्ण वृतान्त को जानकर यहाँ आना चाहों तो तुम्हारा स्वागत है। मैं अब कुबेर की दासता को त्याग चुका हूँ। अंत में आदर युक्त नमस्कार के साथ यक्ष अपनी डायरी समाप्त करते हुये कहता है–

हे अलके!

एकाकी इस रामगिरि ने,
मौन रूप में चाहा तुमको।
पृथ्वी के निस्वार्थ प्रेम ने
बांध लिया इस रामगिरि को।[59]

मैं मूक रामगिरि होकर प्रतीक्षा करता हूँ..............आधुनिक गद्य साहित्य की नूतन विधा में लिखित इस डायरी में यक्ष की पूर्वजन्म की कथा का वर्णन किया गया जिसका विस्तार से चतुर्थ अध्याय में वर्णन किया जायेगा। इस प्रकार आधुनिक साहित्य में डायरी शैली का सूत्रपात हुआ है।

प्राचीन गद्य व आधुनिक गद्य में भेद

गद्य–साहित्य सृजन की वह विधा है जिसमें लेखक का वैदुष्य एक अभिनव शैली को जन्म देकर अपनी अस्मिता को व्यक्त करता है। **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** अर्थात् गद्य काव्य को कवियों की कसौटी कहा जाता है। जिस पर कसे जाने पर कवियों की कला का जौहर चमक उठता है। प्राचीन संस्कृत–गद्यकाव्यों में वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमारचरितम्, तिलकमञ्जरी, गद्यचिन्तामणि, वेमभूपालचरितम् इत्यादि मुख्य है।

सामान्यतया यह कहा जाता है कि पद्य की अपेक्षा गद्य शैली भाव प्रकाशन की सर्वश्रेष्ठ शैली है। गद्य में समासों की प्रधानता तथा ओजगुण की स्थिति ही इसके प्राणप्रद धर्म है। **काव्यादर्श** में दण्डी ने लिखा है– **'ओजः समासभूयस्त्वंएतद् गद्यस्य जीवितम्'**। पद्य में लय एवं ताल की प्रधानता के कारण कवि के दोष व त्रुटियाँ अदृष्ट हो जाते हैं, परन्तु गद्य में बड़ी सूझ–बूझ से शब्द–विन्यास एवं भावगम्य आवश्यक पदों का सन्निवेश करना पड़ता है। गद्य माध्यम में कवि को अपने चमत्कारों को दिखलाने के लिए पूरी स्वतंत्रता रहती है जिधर तथा जैसे भी वह अपनी कला को मोड़ता है उधर तथा वैसे ही वह मोड़ खाने के लिए बाध्य होती है गद्य कवि की रचना में यदि कोई साहित्यिक त्रुटि परिलक्षित होती है तो उसका भागी वह स्वयं होता है माध्यम के मत्थे अपना दोष फेंक कर वह सुख की नींद कभी नहीं सो सकता इसलिए काव्य रचना करने वाले कवियों द्वारा गद्य रचना को ही श्रेयस्करी माना जाता है। वेदों (चारों सहिताओं) ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं छः वेदांगो में गद्यकाव्य का प्रारम्भिक स्वरूप पाया जाता है वैदिक काल से चले आ रहे गद्य में आज वर्तमान काल (21वीं सदी) में आकृति, भाषा, शैली, विषय, अन्तस्तत्त्व आदि की दृष्टि से बहुत कुछ परिवर्तन आ चुका है। प्राचीन गद्य व आधुनिक काल के गद्य में निम्न परिवर्तन द्रष्टव्य है–

1. **विषय** – प्राचीन गद्य में मुख्यतया धर्मप्रधान साहित्य है, देवताओं को लक्ष्य कर यज्ञ–याग का विधान तथा उनकी कमनीय स्तुतियाँ की गई है। आधुनिक गद्य जिसका प्रसार प्रत्येक दिशा में दिखाई पड़ता है उसका मुख्य विषय लोकवृत्त प्रधान है जिसमें समाज में फैली हुई बुराइयों कलुषिताओं के ज्वलन्त मुद्दे उठाकर पाठकों के मन को झकझोर कर समाज से बुराइयाँ मिटाने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक काल का लेखक सामान्य जीवन के छोटे–छोटे पहलुओं को लेकर के गद्य की रचना करते हैं जो साधारण पाठक को भी सहज ही ग्राह्य हो जाता है।

2. **स्वरूप** – प्राचीन गद्य मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त था– (i) वैदिकसाहित्य का गद्य (ii) लौकिक साहित्य का गद्य। वैदिक साहित्य चारों वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद् आदि में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार लौकिक साहित्य के गद्य का रूप महाभारत, पुराण, कथा, व्याकरण, भाष्यग्रंथ, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शन, नाटक एवं नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों के साथ–साथ शिलालेखों एवं प्रशस्तियों में भी प्रयुक्त हुआ है। यह लौकिक गद्य भी तीन प्रकार का है–

(i) पौराणिक (ii) शास्त्रीय (iii) साहित्यिक

आज इक्कीसवीं शती ई. का संस्कृत गद्य चार रूपों में व्यवस्थित है[60]–

1. उपन्यास
2. कथानिका (कहानी, Story or fiction)
3. लघुकथा (प्राचीन खण्डकथा Short Story)
4. दीर्घकथा (प्राचीन सकल कथा, Large Story)

आज के कुछ कथाकार स्पश–कथा, टुप्–कथा जैसी पृथक् विधाओं को भी सोदाहरण उपन्यस्त कर रहे हैं। इसीप्रकार, रेखाचित्र–संस्मरण–यात्रावृत्तादि भेद भी गद्यलेखन से ही सम्बद्ध है। परन्तु इन समस्त भेदों को लघु अथवा दीर्घकथा में ही अन्तर्भूत किया जा सकता है। क्योंकि कथानक की विशेषता को दृष्टि में रखकर, यदि नई विधा को मान्यता दी जाने लगेगी तो कथाभेदों का आनन्त्य होगा फिर तो षडयन्त्रकथा, वेशवाटकथा, कार्तघ्न्यकथा, कार्तज्ञ्यकथा, जार कथादि का भी पृथक् भेद मानना पड़ेगा। अतः संज्ञाओं के बाहुल्य से बचना ही उचित होगा।

निष्कर्षतः आज गद्य रचना की स्थिति इस प्रकार है–

(क) प्राचीन कथा एवं आख्यायिका तो आधुनिक उपन्यास में अन्तर्भूत हो चली है।

(ख) परिकथा, सकलकथा (आनन्दवर्धन) आख्यान, निदर्शन, प्रवहिलका मणिकुल्या, वृहत्कथा एवं उपकथा (हेमचन्द्र) कथन, आलाप, संकीर्ण (अम्बिकादत्त व्यास) नामक भेदों की भी न तो सही पहचान है आज न ही उनकी सर्जना हो रही है।

(ग) उपन्यास (कथा एवं आख्यायिका) के अतिरिक्त अर्वाचीन संस्कृत में तीन ही अन्य गद्यकाव्य विधाएँ प्रयोग में परिलक्षित हो रही हैं– लघुकथा, कथानिका (कहानी) तथा दीर्घकथा।

3. **भाषा** – प्राचीन संस्कृत की भाषा के नियामक तथा शोधक महर्षि पाणिनि है, जिनकी अष्टाध्यायी ने संस्कृत का विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया प्राचीन गद्य में व्याकरण के नियमों की क्लिष्टता अलंकारों की भरमार थी, पाण्डित्य प्रदर्शन में कवि अपनी भाषा को अलंकारों, रसों, भावों, व्याकरण आदि के बोझ तले दबा देते थे। परन्तु आधुनिक गद्य सहज, सरल, प्रांजल भाषा युक्त है। आधुनिक गद्य में शब्दों का बाह्य आड्म्बर न होकर सरल–से–सरल एवं सहजतापूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ

जिससे सामान्य पाठक भी जो व्याकरण का ज्ञान नहीं रखता वह भी उस काव्य साहित्य का आनन्द ले सकता है। आधुनिक गद्य में न तो शब्दों का जाल पाठक को उलझाता है न अलंकार व्याकरण आदि सिंह आ–आकर पाठक को डराते हैं वरन् सहज–सहज भाषा की मन्द–मन्द पवन पाठक को शीतलता का अहसास कराती है। आधुनिक गद्य साहित्य के कवि एवं लेखक डॉ. पद्मशास्त्री, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, डॉ. कलानाथ शास्त्री, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. हर्षदेव माधव आदि अनेक लेखक है जिन्होंने आधुनिक गद्य को ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। डॉ. पद्मशास्त्री द्वारा रचित चायशतकम्, सिनेमाशतकम्, विश्वकथाशतकम्, लेनिनामृतम आदि में लेखक ने तात्कालिक विषयों को लेकर उत्कृष्टतम गद्य प्रस्तुत किया है। भट्ट मथुरानाथशास्त्री द्वारा रचित आदर्शरमणी उपन्यास में भट्ट जी ने बंगाल प्रदेश का कथानक लिया है इस पर नारी के आदर्श जीवन एवं त्यागमयी वृत्ति को प्रदर्शित किया गया है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल है। इतनी प्रसादमयी शैली में संस्कृत उपन्यास का लेखन एवं प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। डॉ. कलानाथशास्त्री द्वारा रचित 'जीवनस्य पृष्ठद्वयम्' जिसका कथानक शिष्या तथा ट्यूटर के मध्य प्रेम प्रसंग पर आधारित है। लेखक ने अंग्रेजी भाषा के शब्दों का संस्कृतीकरण करके स्तुत्य प्रयास किया है। वैसे भी इनकी भाषा प्रवाहमय एवं आधुनिक शैली की परिचायक है इनकी भाषा का एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है। इससे संस्कृत भाषा के सीखने में आने वाली कठिनाई की ओर इंगित किया गया है।

"पूर्वं सेयं भाषा नितरां जटिला, अमनोज्ञा च प्रतीताऽभूत्। भगवतः पाणिने आचार्यस्य डमरूरवनिर्गतां प्रेरणां 'अइउण् ऋलृक्' इत्यादि रटन्त्या मम गृहे परिहासः प्रायो मासद्वयं व्याप्त प्राचलत्। मदीया कनीयसी भगिनी केवलं दशवर्षदेश्याऽभूत्। रात्रौ स्वप्नेऽपि 'जबगडदश' इत्याद्युत्स्वरनायमाना मया कतिशो निवारिता। षाण्मासिक्यां परीक्षायां मयाशते त्रिंशदंका एव लब्धाः। एते अंका नासन् सन्तोषजनकाः। परन्तु नात्राश्चर्यं मे बभूव।"

इस प्रकार इस उपन्यास में डॉ. कलानाथ शास्त्री ने अंग्रेजी भाषा का भी संस्कृतिकरण करके गद्य को सहज बना दिया है।

4. **अन्तस्तत्व** – प्राचीन गद्य में रूपक व अतिश्योक्ति की प्रधानता है प्रतीक रूप से अनेक अमूर्त भावनाओं की मूर्त कल्पना प्रस्तुत की गई है। प्राचीन गद्य में बाणभट्ट आदि की रचनाएँ जैसे हर्षचरित, कादम्बरी आदि में रूपक का दुरूह

प्रयोग हुआ है। जबकि आधुनिक गद्य में नैसर्गिकता है, स्वाभाविकता है। शब्दों का चाकचिक्य कहीं नहीं है भाषा की सरलता व सादगी ही गद्य की आत्मा है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आज का जो आधुनिक गद्य है वह अत्यन्त सहज, सरल व बाह्य आड्म्बरों से कोसों दूर है आज का लेखक सादगी में विश्वास रखता है अब गद्य केवल कथा तथा आख्यायिका तक सीमित नहीं है वरन् आज संस्कृत में उपन्यास, कथा, लघुकथा, व्यङ्ग्यकथा, ललितनिबन्ध, ललितकथा एवं यात्रावृत्त आदि लिखे जा रहे हैं जिन्हें संस्कृत–गद्यसाहित्य की नवीन प्रवृत्ति के रूप में गिनाया जा सकता है इसके अतिरिक्त त्रासदकथा, स्पशकथा, टुप्–कथा, पुटकथा आदि कथा की अनेक उपविधाएँ जन्म लेकर पनप रही है और उपर्युक्त सभी विधाओं में अनूदित कथा भी लिखी जा रही है। आज का संस्कृत–गद्यकार अन्य विधाओं के साथ–साथ अब डायरी–विधा पर भी कलम चला रहा है।

संस्कृत–गद्य–जगत् के लिए वर्ष 2008 की विशिष्ट उपलब्धि है, संस्कृत के विशिष्ट रचनाकार एवं विद्वान् प्रो. सत्यव्रत शास्त्री का संस्कृत साहित्य के लिए सर्वप्रथम **ज्ञानपीठ पुरस्कार** अर्जित करना। **'श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्'** को केन्द्र में रखकर उनके समग्र साहित्य के लिए उन्हें यह शीर्ष सम्मान के लिए चुना गया है। 'रामकीर्तिमहाकाव्यम्' के अतिरिक्त उनके दो और महाकाव्य प्रसिद्ध हैं– 'श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्' और 'श्रीबोधिसत्वचरितम्'।

❖❖❖

सन्दर्भ–सूची

1. अथर्ववेद, व्रात्यकाण्ड–व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापति समैरयत्। सः प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यति तत्प्राजन यत्.......................
2. ऐतरेय ब्राह्मण 30/1 हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वत नारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं प्रपच्छ
3. 'लुब्धाख्यायिकेतप्योबहुलम्' आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च–वार्तिक
4. अधिकृत्य कृते ग्रन्थों 'बहुल' वक्तव्यः। वासवदत्ता सुमनोतरा न च भवति। भैमीरथी महाभाष्य 4–3–87
5. विष्णु पुराण 4/13/14 यथैव व्योम्नि वाह्निपिण्डोपमंत्वामहम पश्यं तथैवाद्याग्रतोगतमत्यत्र भगवता किंचिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्यस्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्तेन्यस्तम्।
6. सर्वपृथिवीविजयजनितोदय व्याप्त निखिलावनितलां कीर्तिस्त्रिदशपतिभव–नगमनावाप्त ललित–सुख विचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।
7. दण्डी, काव्यादर्श 1/23–अपादः पदसन्तानो गद्यम्।
8. अग्नि पुराण 337/13.....17

   कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्।

   कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविपत्तयः

   भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्ति प्रवृत्तयः।।

   —————————————————

   सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयात् चतुष्पदीम्।।
9. दण्डी, काव्यादर्श 1/23.............30
10. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन–अष्टम अध्याय
11. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण 6/332..................336
12. दण्डी–काव्यादर्श 1/28 तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयांकिता। अत्रैवान्तर्भविष्यति शेषाश्चाख्यानजातयः।।
13. वही
14. वही
15. वही

16. वही
17. व्यास, भोलाशंकर–संस्कृत कविदर्शन, पृ. 440–441
18. नवोन्मेषः राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, पृ.–118
19. हिन्दी का गद्य साहित्य–डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ.–103
20. हिन्दी का गद्य साहित्य–डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ.–110
21. हिन्दी का गद्य साहित्य–डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ.–111
22. सागरिका–संस्कृत त्रैमासिकी (आधुनिक संस्कृत गद्यकाव्ये स्वर्णकालविशेषांक) सप्तत्रिंशवर्षे अङकौ तृतीय–चतुर्थो।
23. साहित्यिक निबन्ध–डॉ. लक्ष्मी नारायण चातक : डॉ. राजकुमार पाण्डेय, पृ.–98
24. दृक् पत्रिका अंक–20 जुलाई–दिसम्बर 2008 पृ.–28
25. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. नगेन्द्र, पृ.–827
26. व्युत्पत्ति–सम्+स्मृ+ल्युट् (अण्), जिसका अर्थ सम्यक स्मरण है।
27. डॉ. दिलीप पटेल, संस्मरण : स्वरूप एवं तत्त्व, पृ.–41
28. हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति– डॉ. नगेन्द्र भूमिका, पृ.–54
29. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. नगेन्द्र, पृ.–828
30. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. चातक एवं प्रो. राजकुमार शर्मा, पृ.–125
31. हिन्दी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्ययन–डॉ. कमलापति उपाध्याय, पृ.–10
32. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. नगेन्द्र, पृ.–843
33. वाङ्मयविमर्श–आचार्य विश्वनाथ, पृ.–67
34. वाङ्मयविमर्श–आचार्य विश्वनाथ, पृ.–67
35. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. नगेन्द्र, पृ.–852
36. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त–मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पृ.–375
37. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त–मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पृ.–376
38. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त–मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पृ.–378
39. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. चातक एवं डॉ. राजकुमार शर्मा, पृ.–145
40. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. चातक एवं डॉ. राजकुमार शर्मा, पृ.–145
41. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त–मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पृ.–376
42. अमरूकशतकम्–पृ.–23
43. विश्वजन्यमिमंपुण्यमुपन्यासं निबोधत (मनुस्मृति–9/31)

44. किमिदमुपन्यस्तम्? शकुन्तला–पावकः खलु वचनोपन्यासः (अभिज्ञान–शाकुन्तलम्–पंचमाŠe
45. अहो उपन्यास शुद्धिः (मालतीमाधव) (प्रथम अङ्कम्)
46. अमरकोषः (प्रथमकाण्ड–9 / 6)
47. साहित्यानुशासनम्, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पृ.–817
48. साहित्यानुशासनम्, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पृ.–817
49. अभिराजयशोभूषणम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, 4 / 105 / 6,7
50. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् (3 / 1 / 3)
51. महाकाव्यमिवजीवनस्य सर्वाङ्गीणं रूपं निर्दिशति। उदात्तालंकारश्चात्र अवश्यं स्यात्। स्मृतिस्तमुपोद्वल यति प्रेमाह्लादविषादविभीषिकादिभिः सविशेषं प्रभावशाली संजायत उपन्यासः। (वही, पृ.–152) सम्पूर्णानन्द वि.वि. प्रका. वाराणसी।
52. महाकाव्यमिवजीवनस्य सर्वाङ्गीणं रूपं निर्दिशति। उदात्तालंकारश्चात्र अवश्यं स्यात्। स्मृतिस्तमुपोद्वल यति प्रेमाह्लादविषादविभीषिकादिभिः सविशेषं प्रभावशाली संजायत उपन्यासः। (वही, पृ.–152) सम्पूर्णानन्द वि.वि. प्रका. वाराणसी, पृ.–152
53. ''अभिराजयशोभूषणम्''–अभिराजराजेन्द्र मिश्र, 4 / 105,106,107,108 वृत्तिभाग
54. गद्यकाव्य समीक्षा, हरिनारायण दीक्षित, पृ.–182
55. अवधेश कुमार सिंह–उत्तर आधुनिकतावाद, उत्तर उपनिवेशवाद और भारत आलोचना, जनवरी–मार्च 2003, पृ.–148
56. मदन सोनी–उत्तर आधुनिकता : एक आरम्भिक टिप्पणी, मधुमती 2000
57. संस्कृत साहित्य : बीसवीं शताब्दी–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, (पृ. 152 एवं 153) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
58. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. नगेन्द्र, पृ.–830
59. मूकोरामगिरिर्भूत्वा–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ. 195
60. दृक् अंक 20 जुलाई दिसम्बर 2008, पृ. 28

तृतीय अध्याय

नाट्य विधा में डॉ. हर्षदेव माधव का योगदान

नाट्य–साहित्य

'कवेः कर्म काव्यम्' अर्थात् कवि का कर्म काव्य कहलाता है, इस व्युत्पत्ति में समापतित 'कर्म' पद अभिप्राय विशेष का बोधक है, क्योंकि कुछ कर्म, जैसे– खाना–पीना, हँसना, खेलना इत्यादि जनसामान्य की तरह कवि के भी होते हैं, किन्तु **'लोकोत्तरवर्णनानैपुण्य'** रूप कर्म कवि का ही होता है, सामान्य जन का नहीं। वही लोकोत्तरवर्णनानिपुणता रूपी कवि का कर्म काव्य की कोटि में आता है, सामान्य वर्णन मात्र को प्रस्तुत कर देना 'काव्य' कोटि में नहीं आता है, अतः सरसतापूर्वक प्रतिपादन से प्रवृत्ति योग्य एवं निवृत्ति योग्य पदार्थों का अवबोधन कराके परमतत्त्व की प्राप्ति में सहायक होना काव्य का लक्ष्य माना गया है, क्योंकि कवि क्रान्तदर्शी होता है, अतः वह ऐसा करने में सक्षम भी होता है।[1] दृश्य काव्य की एक विधा के रूप में ही नाटक का साहित्य में विशेष स्थान है। दृश्य होने के कारण यह लोकजीवन के अत्यधिक समीप है। नाट्य साहित्य लोक व शास्त्र दोनों दृष्टियों से ही अति विस्तृत केनवास पर अंकित है। उसकी सामग्री प्रचुर पुष्ट और व्यापक है कि उनके आधार पर नाट्य साहित्य की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है।

नाट्य शास्त्र विषयक यह सामग्री अनेक रूपों में बिखरी हुई है। इस सामग्री के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक स्रोत वे मूल ग्रन्थ एवं टीकाएँ तथा वृत्तियाँ हैं, जिनमें नाट्य की शास्त्रीय व्याख्या की गई है। उनके अतिरिक्त स्थापत्य, मूर्ति, चित्र और संगीत विषयक कला के लक्षण ग्रन्थों में भी आनुषांगिक रूप से नाट्य सम्बन्धी सामग्री सुरक्षित है। इन मूल ग्रन्थों और अनुषांगिक ग्रन्थों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में नाट्यकला की कितनी ख्याति और व्याप्ति थी। इसके अतिरिक्त प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक पुरातत्त्व विषयक अवशेष भी नाट्यकला की सजीव परम्परा के पुष्ट प्रमाण हैं।

वेदों और वैदिक साहित्य के अतिरिक्त शास्त्रीय ग्रन्थों, पुराणों, काव्यों, नाटकों और कथाओं में भी उसके अस्तित्त्व एवं महत्त्व के प्रचुर प्रमाण बिखरे हुए हैं। विभिन्न रूपों में वर्तमान इन विविध साधनों एवं माध्यमों का अनुशीलन करके ही नाट्यशास्त्र की वस्तुस्थिति को आँका एवं जाना जा सकता है। साहित्य के सभी प्रकारों में रूपक या नाट्य श्रेष्ठ माना गया है। इसकी रचना को कवित्व की अन्तिम

सीमा कहा जाता है– **नाटकान्तं कवित्वम्।** वामन ने काव्यालंकार सूत्र में कहा है– **सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः**[2] कारण यह है कि यह चित्रपट के समान अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। इतनी विशिष्टताएँ अन्य काव्य में नहीं होती। रूपक में गद्य–पद्य दोनों का मिश्रण तो रहता ही है, इसे सुनने के अतिरिक्त देखा जाता है। श्रव्य की अपेक्षा 'दृश्य' का अधिक सघन प्रभाव होता है। भारतीय रूपकों का उद्देश्य केवल उपदेश देना, संवादों के द्वारा किसी घटनाक्रम का निरूपण करना या विषय की स्थापना मात्र नहीं है अपितु अभिनय के भिन्न प्रकारों से सामाजिक (प्रेक्षक या दर्शक) को रसास्वाद कराना (आनन्द में निमग्न करना) इसका महत् उद्देश्य है। भरत ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि इस नाट्य–संसार में सब–कुछ रसमय होता है, रस के बिना यहाँ कुछ भी प्रवृत्त नहीं होता– **"न हि रसादृते कश्चिद्प्यर्थः प्रवर्तते।"**[3] कोई व्यक्ति किसी भी रूचि का क्यों न हो, उसे अपना अनुकूल विषय नाट्य–जगत् में अवश्य मिल जायेगा। इसीलिए कालिदास ने इसकी प्रशंसा में कहा है– **नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।**[4]

नाटक साहित्य की वह विधा है जिसमें जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते–फिरते सप्राण रूप में किया जाता है। नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृति न होकर सजीव प्रतिलिपि है, जिसमें फैले हुए जीवन–व्यापार को ऐसी व्यवस्था के साथ रखा जाता है कि अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके।[5] नाटक में अनुकरण और अभिनय की प्रवृत्ति प्रमुख है। यह अनुकरण पहले भावात्मक स्तर पर होता है। इसी भावात्मक अनुकरण को आंगिक, वाचिक और आहार्य अनुकरण का रूप देना ही नाटक का अभिनय तत्त्व है। अभिनेता भावात्मक और बाह्य अनुकरण से एक विशेष प्रकार के भाव और आनन्द का सृजन करता है जो दर्शक को उसी रूप में प्रेषित होता है।

फिर भी संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नाटक साहित्य की वह विधा है जिसकी सफलता का परीक्षण रंगमंच पर होता है और रंगमंच युगविशेष की जनरूचि और तत्कालीन अधिक व्यवस्था के आधार पर निर्मित होता है।

संस्कृत नाट्य–साहित्य

संस्कृत इस महान् एवं विशाल राष्ट्र की वाणी है। उसके अगाध वाङ्मय में ज्ञान–विज्ञान और कला–कौशलों की अपरिमित राशि भरपूर है। उसमें ऐसे ग्रन्थ रत्न हैं जो कि आजीवन गहन साधना के फल हैं। संस्कृत भाषा साहित्य के विविध अंगों–उपांगों से प्रचुर समृद्ध है। एक दीर्घकाल तक प्राचीन विश्व के बड़े भूभाग की भाषा होने का गौरव उसे प्राप्त रहा। भारत की वर्तमान भौगोलिक सीमाओं के बाहर भी संस्कृत को फूलने–फलने का अवसर मिला। इस भाषा के अनेक विशिष्ट गुणों के कारण ऐसा संभव हो सका। विदेशों के साथ भारत के सम्बन्धों तथा भारतीय संस्कृति के प्रसार की जानकारी के लिए संस्कृत अपरिहार्य है।

संस्कृत साहित्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा कमनीय अंग है– नाट्य। संस्कृत साहित्य की रसमयता एवं सम्पूर्ण महत्ता को उजागर कर देने वाला एवं सम्पूर्ण विश्व में संस्कृत का प्रचार–प्रसार कर देने वाला संस्कृत नाट्य–साहित्य ही है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के मानवीय संस्पर्श, नाट्य कौशल तथा रमणीय रसपेशलता ने ही प्रारम्भिक स्तर पर विश्व के विभिन्न विद्वानों को चमत्कृत करके उन्हें संस्कृत के अनुशीलन की ओर हठात् प्रेरित किया संस्कृत साहित्य अपनी विविधता तथा विशिष्टता, समृद्धि तथा सार्वभौमिक उपलब्धि तथा सक्रियता सभी दृष्टि से अनुपम है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्वरूप का सर्वांगीण अंकन तथा प्रतिबिम्बन जितना प्रचुर तथा प्रांजल संस्कृत साहित्य में हुआ है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से संस्कृत साहित्य महान है। इस विशाल संस्कृत साहित्य का एक–एक अंग अपनी समृद्ध परंपरा को लेकर चरम विकास के बिन्दु तक पहुँचा है। यदि हम केवल संस्कृत के विशुद्ध साहित्य का ही पर्यवेक्षण करें, तो दृश्य और श्रव्य के व्यापक परिवेश में यह महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका, चम्पू तथा नाट्य–साहित्य के विभिन्न रूपों में पर्याप्त विकसित दृष्टिगोचर होता है।

नाट्यसाहित्य की विशाल परंपरा में रूपकों की विविध रूपता ही गुम्फानुगुम्फ रूप से इतनी परिव्याप्त है कि संभवतः उतनी अन्य किसी अंग की उपलब्ध नहीं है। संस्कृत–साहित्य के विभिन्न रूपों में नाट्य रूपों का समधिक अभिसर्जन नाट्य साहित्य की अभिरूपता तथा लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। इसके प्रस्तार का मूल कारण नाट्य–कला का वह हृदयावर्जक रूप ही है जिसके कारण कलाकारों ने अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में इसको सर्वविध समृद्ध किया है। नाट्य–रूपों की समुन्नत परंपरा में रूपक तथा उपरूपक से सम्बन्धित रूपसमृद्धि ही नहीं, अपितु विषय आदि से सम्बन्धित परिवृद्ध परम्परा भी प्राप्त है। इसी रूप तथा विषय आदि की विविधता, साहित्य की सरसता एवं नाट्यकला की कलात्मक, आकर्षक, रंगमंचीयता के कारण नाट्य साहित्य को अधिक अपनाया गया है। आज संस्कृत में विशाल, समुन्नत एवं समृद्ध नाट्यसाहित्य की उपलब्धि का सर्वप्रमुख कारण इसकी समधिक सोद्देश्यता है।

नाट्य साहित्य की सोद्देश्यता

सामान्यतः रसास्वाद या आनन्ददायक स्वाद ही प्राणिमात्र के जीवन का उद्देश्य होता है। यद्यपि कुछ विद्वान ब्रह्मानन्द के आस्वाद को अधिक महत्त्व देते हैं तो कुछ काव्यानन्द के आस्वाद को; तथापि यह सभी मानते हैं कि इन दोनों में कुछ साम्य अवश्य है और इस आनन्द प्राप्ति में ही मनुष्य के ज्ञान–विज्ञान की सार्थकता है। अतएव मुख्यतः इस उद्देश्यमूलक आनन्द प्राप्ति के लिए परा, अपरा दो विद्याओं का विधान किया गया है। परा ब्रह्मविद्या है और अपरा में सर्वप्रथम काव्य या साहित्य का परिगणन किया गया है।[6] इसी को राजशेखर ने चारों विद्याओं का निष्यन्द कहा है।[7] अतः स्पष्ट है कि साहित्य या काव्य प्रतिभज्ञान के कारण कलामात्र नहीं है, अपितु सर्वश्रेष्ठ कला है।[8]

'मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्तिः धीरः' कठोपनिषद् में जीवन–यापन के लिये 'श्रेयश्च प्रेयश्च' निर्देश है।[9] वस्तुतः ये श्रेय तथा प्रेय सत्य के दो आयाम हैं। सामान्यतः संसार में इस श्रेय प्रेयात्मक सत्य की अभिव्यक्ति विभिन्न माध्यमों से होती है, किन्तु कुछ केवल श्रेय सापेक्ष्य होते हैं तो कुछ केवल प्रेयसापेक्ष्य, जबकि काव्य या साहित्य उभय–सापेक्ष्य है संभवतः इसी कारण सत्यं, शिवं, सुन्दरं के

प्रतिष्ठापक काव्य को श्रेष्ठ माना गया है। भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने काव्य की उद्देश्यभूत उदात्तता के अतिरिक्त प्रयोजनों की पारमार्थिक तथा व्यावहारिक उपलब्धि के कारण इसे समधिक महत्त्व दिया है। भरत, भामह, वामन, आनन्दवर्धन, मम्मट तथा धनंजय आदि ने इसीलिए लौकिक—अलौकिक तथा दृष्ट—अदृष्ट सभी दृष्टि से काव्य को महत्वपूर्ण माना है। काव्य प्रकाशकार मम्मट के शब्दों में सद्यः परनिवृत्तिदायिनी, नवरस रूचिरा, आनन्द निष्यन्दिनी कवि की भारती (काव्य) श्रेयप्रेयोभयसंवलित होने के कारण ही अन्य शास्त्रादि की अपेक्षा अधिक स्पृहणीय है।[10] काव्य दो प्रकार का माना गया है— श्रव्य और दृश्य।[11] श्रव्य और दृश्य दोनों काव्य की ही आंगिक विधा है। अतः यद्यपि इनका उद्देश्य समानप्रायः है, तथापि उद्देश्य प्राप्ति के साधनों में पर्याप्त अन्तर है। श्रव्य—काव्य का उपयोग श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से किया जाता है अतः श्रुतिसापेक्ष्य होने से पाठ्य होता है। श्रव्य में शब्दों के माध्यम से ही भावनात्मक चित्रों को मानस पटल पर अंकित किया जाता है, अतः श्रव्यकाव्य को आत्मसात् करने के लिए श्रोता में कल्पना अपेक्षित है परन्तु दृश्य चक्षुरिन्द्रिय का विषय होने से देखने की भी वस्तु है। दृश्य में रंगमंच की सहायता से विभिन्न उपादानों के प्रयोग द्वारा वर्ण्यवस्तु का यर्थाथ चित्र प्रस्तुत किया जाता है। अतः यह रंगमंच पर अभिनय की वस्तु है।

दृश्य काव्य के लिए सामान्यतः नाट्य या नाटक आदि शब्द प्रचलित है जबकि श्रव्य के लिए काव्य। काव्य की अन्यान्य विधाएँ वर्णन प्रधान हैं, किन्तु नाटक प्रयोग—प्रधान है। नाटक में वर्ण्यवस्तु को प्रायोगिक रूप से परिव्यक्त किया जाता है। महिमभट्ट के शब्दों में काव्य में अनुभाव विभावों का वर्णन होता, किन्तु उन्हीं का जब गीतादि से अनुरंजित प्रयोग किया जाता है, तब वह नाटक कहलाता है।[12] स्पष्ट है कि नाटक में 'गीतानुरंजन' तथा 'प्रयोग' प्रमुख होता है। नाटक की इस अनुरंजनात्मकता तथा प्रयोगात्मकता के कारण ही इसकी सोद्देश्यता का महत्त्व परिवृद्ध हो जाता है।

वामन के शब्दों में काव्यों में दशरूपकों की सर्वाधिक प्रतिष्ठा का कारण यही है कि इसमें कथा, आख्यायिका महाकाव्य आदि के पात्र सजीव होकर चित्रपट के समान अभिनय करते दीख पड़ते हैं।[13]

अभिनवगुप्त ने नाटक की सोद्देश्यता को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि वस्तुतः अनुभाव, विभाव तथा संचारी भाव का समप्राधान्य काव्यों में भी केवल (दशरूपक) नाटकों द्वारा ही संभव है। स्पष्ट है कि नाट्यसाहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी काव्य से सहृदय–असहृदय, शिक्षित–अशिक्षित आदि सभी को इतने सहज तथा सरल प्रकार से रसानुभूति नहीं हो सकती। नाटक की इस रसानुभूति की प्रभावात्मकता के अतिरेक के कारण ही लौकिक दुःखों का अभाव, मनोविकारों का परिष्कार तथा रूचि का संस्कार होता है। इसके लोकानुरंजक होने से शिक्षा, उपदेश तथा अन्य नैतिक तत्त्वों को आत्मसात् करने तथा सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक ज्ञानवर्धन में सरलता होती है। चरित्र–निर्माण तथा आत्मोत्थान में सहायता मिलती है और इसकी सार्ववर्णिकता तथा सर्वजनीनता के कारण जीवन के प्रत्येक उद्देश्य को प्रेषणीय बनाकर सहज ही हृदयंगम कराया जा सकता है। कालिदास के शब्दों में एकमात्र नाटक भिन्न रूचिवाले जनों का समाराधन करने में समर्थ है।[14]

अन्त में हम कह सकते हैं कि नाट्य–मंच पर ही समस्त ज्ञान–विज्ञान की अवतारणा करके अत्यधिक सरसता, सरलता तथा सफलता से सत्यं, शिवं तथा सुन्दरं को अभिव्यंजित किया जा सकता है।

संस्कृत नाट्य की उत्पत्ति

"काव्येषु नाटकं रम्यम्" साहित्य के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग–नाट्य की भारत में कब और किस प्रकार उत्पत्ति हुई, नाट्य के विभिन्न तत्त्व कहाँ–कहाँ से संग्रहीत किए जा सके, आदि पर आधुनिक काल के संस्कृतानुरागी पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वानों में तीव्र मतवैभिन्य रहा है। भारतीय परम्परा तो नाट्य की उत्पत्ति देवीय स्वीकार करती है। किन्तु संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने वाले पाश्चात्य विद्वानों ने इस देवीय उत्पत्ति को सर्वथा अग्राह्य मानकर नाट्य के विभिन्न तत्वों तथा समाज एवं प्रकृति के विभिन्न विकासशील परिवर्तनों के आधार पर संस्कृत नाट्योत्पत्ति के अनेक भिन्न–भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किए। स्वभावतः ही इन सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में उस विद्वान् की निज विचारधारा एवं उनके देश में प्रचलित नाट्य परम्परा का प्रभाव अवश्य ही रहा होगा। किन्तु उन सारे सिद्धान्तों में से एक भी

सर्वग्राह्य अथवा स्वीकृत नहीं हो सका है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान **मैक्डॉनल** ने इसीलिए स्पष्टतया लिखा "भारत में नाटकीय साहित्य के सर्व प्राचीन स्वरूपों का प्रतिनिधित्व ऋग्वेद के उन सूत्रों द्वारा होता है जिनमें संवाद विद्यमान हैं।... हाँ, अभिनयपरक नाटक का प्रारम्भ अन्धकार से आवृत है।" संस्कृत नाट्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राप्त विभिन्न सिद्धान्त इस प्रकार है–

1. नाट्योत्पत्ति का भारतीय मत

नाट्यवेद की उत्पत्ति सम्बन्धी आख्यान – चारों वेदों का उपजीव्य होने के कारण नाट्यवेद को पंचमवेद के रूप में माना गया है। नाट्य शास्त्र पर लिखे गये अनेक ग्रंथों में नाट्यवेद के उद्भव और प्रयोजन के विभिन्न दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। उन सबका आधार भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र ही एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें नाट्यवेद की उत्पत्ति का विस्तृत आख्यान वर्णित है। उसमें लिखा है कि एक बार भरत मुनि नित्य–नैमितक कार्यों से निवृत होकर अपने पुत्र–पोत्रों (शिष्यों–प्रशिष्यों) से घिरे आराम कर रहे थे। उसी समय नाट्यशास्त्र के प्रारम्भ में आत्रेय आदि ऋषियों ने भरतमुनि से पूछा कि–

"योऽयं भगवता सम्यगग्रथितो वेदसम्मितः।
नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते।।"[15]

हे ब्रह्मन्, आपने जिस वेद–सम्मत नाट्यवेद की रचना की है उसका प्रयोजन क्या है और वह किसके लिए रचा गया है ? उन्होंने यह भी जिज्ञासा की कि उसका विस्तार कितना है और उसके प्रयोग की विधि क्या है ?

मुनिजनों द्वारा जिज्ञासा किए जाने पर महामुनि भरत ने कहा : 'हे मुनिजनों पुराकाल में स्वयंभू मनु के सतयुग के अनन्तर वैवस्वत मनु का त्रेतायुग आरम्भ हुआ। उस त्रेतायुग में ऐसी अव्यवस्था फैल गई कि जिसके कारण समाज निकृष्ट पापाचारों (ग्राम्यधर्म) के वशीभूत काम, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ आदि दुष्प्रवृत्तियों में संलिप्त होकर सुख–दुःख मय जीवन बिताने लगा।' लोक की इस विषमता को देखकर इसी समयलोकपालों द्वारा शासित एवं संरक्षित इस जम्बूदीप (भारत) पर देवों, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों और नागों (महोरग) ने आक्रमण करके उसे स्वायत्त कर लिया। ऐसे समय में देवराज इन्द्र को अपना प्रतिनिधि बनाकर देवतागण ब्रह्मा जी के पास गये।

उन्होंने पितामह से कहा : **'हे पितामह हम कोई ऐसा खेल चाहते हैं, जिसको देखा भी जा सके और सुना भी जा सके'**

"महेन्द्र प्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।।"[16]

देवताओं ने पितामह के सामने प्रस्ताव रखा कि : चारों वेदों के अतिरिक्त एक ऐसा वेद बनाइए, जिसमें सभी वर्गों का समान स्थान हो ; क्योंकि जितने भी वेदोक्त व्यवहार है उनमें शूद्र आदि निम्न को सम्मिलित होने का अधिकार नहीं है। इन्द्रादि देवताओं के इस आग्रह को स्वीकार कर परमेष्ठि पितामह ब्रह्मा ने उन्हें विदा किया। तदनन्तर तत्त्वदर्शी ब्रह्मा जी ने समाधिस्थ होकर चारों वेदों का स्मरण किया। समाधिस्थ होकर उन्होंने संकल्प किया :

मैं ऐसे पाँचवें वेद की सृष्टि करता हूँ, जिसके द्वारा धर्म, अर्थ तथा मोक्ष की प्राप्ति हो, जो सुन्दर उपदेशों से युक्त हो और जिसके द्वारा लोक के समस्त भावी कार्यों का अनुकरण करके दिखाया जा सके। उन्होंने निश्चय किया कि : "इतिहास से युक्त ऐसे पंचम वेद का मैं सृजन करता हूँ, जो समस्त शास्त्रों के मर्म को अभिव्यक्त कर सके और जिसके द्वारा समस्त कलाओं तथा शिल्पों का प्रदर्शन हो सके" :

"सर्वशास्त्रार्थ सम्पन्नं सर्वशिल्प प्रवर्तकम्।
नाट्याख्यं प×चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।।"[17]

इस प्रकार संकल्प करके ब्रह्मा जी ने चारों वेदों को स्मरण किया और उनसे सार–संकलन कर पंचम वेद के रूप में नाट्यवेद का निर्माण किया। इस नाट्यवेद के लिए उन्होंने 'ऋग्वेद से पाठ्य (सम्वाद) सामवेद से गीत (संगीत), यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से शृंगारादि रसों का संग्रह किया :'

"जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामेभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।"[18]

महामुनि भरत ने आत्रेय आदि ऋषियों के समक्ष नाट्यवेद के इस उपाख्यान को प्रस्तुत करते हुए आगे कहा : 'हे मुनिवरों, इस प्रकार सर्वज्ञ प्रजापति ब्रह्मा ने चारों वेदों का उपवृंहण कर पाँचवें नाट्यवेद का निर्माण किया।'

2. नृत्य से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त

मैक्डॉनल ने इस धारणा का प्रतिपादन किया कि नृत् धातु से निष्पन्न नृत्य शब्द सम्भवतः भारतीय नाटक की उत्पत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। निश्चय ही इसमें सर्वप्रथम असंस्कृत मूकाभिनय रहा होगा जिसमें शरीर की नृत्यपरक चेष्टाओं के साथ हाथ और चेहरे के मौन अभिनयात्मक संकेत जुड़ रहते थे।[19]

किन्तु मैक्डॉनल का यह नृत्यवाद ग्राह्य नहीं हो सका। क्योंकि भावात्मक नृत्य एवं रसात्मक नाट्य परस्पर नितान्त भिन्न हैं।

3. वीरपूजा से नाट्योत्पत्ति सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक पाश्चात्य विद्वान् डॉ. रिज़वे थे। उन्होंने प्रतिपादित किया कि वीर पुरुषों के प्रति जातीय आदर प्रकट करने की भावना से नाट्य प्रणयन प्रारम्भ हुआ।[20]

जिस प्रकार मृतवीर पुरूषों के प्रति सम्मान प्रगट करने के लिए ग्रीक दुखान्त नाटकों की उत्पत्ति हुई उसी प्रकार वीर पूजा की भावना से ही भारत में भी नाट्योद्‌गम् हुआ। डॉ. रिजवे ने अपने सिद्धान्त की पुष्टि में कृष्ण लीला एवं रामलीला का उदाहरण दिया।

यह सिद्धान्त अन्य किसी विद्वान को मान्य नहीं हुआ क्योंकि संस्कृत नाट्य का प्रमुख लक्ष्य रसाभिव्यक्ति है, वीरों के प्रति सम्मान प्रदर्शन नहीं।

4. नाट्योत्पत्ति का प्राकृतिक परिवर्तन सिद्धान्त

डॉ. कीथ ने इस मत का प्रवर्तन किया उन्होंने कहा कि प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्त रूप देने की इच्छा से ही नाट्य का जन्म हुआ। डॉ. कीथ ने अपने मत की पुष्टि में महाभाष्य में निर्दिष्ट कंसवध नामक नाट्य के अभिनय का उदाहरण दिया। इस अभिनय में कृष्ण के पक्ष के लोग रक्त मुख धारण करते थे ओर कंस पक्ष के लोग काले मुख। डॉ. कीथ ने वर्णों के आधार पर इस अभिनय को हेमन्त ऋतु पर बसन्त ऋतु की विजय का निर्देश माना।

डॉ. कीथ का यह विचित्र सिद्धान्त भी प्रामाणिक नहीं माना गया।

5. मेपोल नृत्य से नाट्योत्पत्ति सिद्धान्त –

प्रो. स्टेन कोनो ने इस सिद्धान्त का उल्लेख अपने ग्रंथ में[22] करते हुए बताया कि कतिपय विद्वान् मेपोल नृत्य से भारतीय नाट्य की उत्पत्ति मानते हैं। पाश्चात्य देशों में शिशिर ऋतु बीत जाने पर मई मास में बसन्त आगमन को विविध उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। किसी खुले मैदान में एक लम्बा बांस गाड़कर स्त्री–पुरुष उसके चारों और नाचते–गाते उल्लास मनाते हैं। इस सिद्धान्त को मानने वाले विद्वानों ने भारत के इन्द्रध्वज पर्व को मेपोल नृत्य का ही प्रतिरूप माना और उपस्थापित किया कि शीतकाल के बाद होने वाले वसन्तोत्सवों से ही भारतीय नाट्य उत्पन्न हुआ।

किन्तु यह मत भी मान्य नहीं है। भारत में इन्द्रध्वजोत्सव वसन्त में नहीं वरन् वर्षा ऋतु के अन्त होने पर मनाया जाता है। नेपाल आदि देशों में प्रचलित इस उत्सव का रूप भी पाश्चात्य उत्सव से नितान्त भिन्न है।

6. छाया नाटकों से नाट्योत्पत्ति सिद्धान्त –

डॉ. ल्यूडर्स एवं डॉ. कोनो ने यह प्रतिपादित किया कि नाट्य की उत्पत्ति और विकास छाया नाटक से हुआ। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने छायानाट्य के प्राचीन उल्लेख प्रस्तुत किए कि महाभाष्य में वर्णित 'शौभिक' छाया नाटकों की छाया मूर्तियों के व्याख्याकार थे।

किन्तु यह मत भी समीचीन नहीं है। भारत में छायानाटकों की प्राचीनता कथमपि सिद्ध नहीं हो पाती। 'दूतांगद' नामक उपलब्ध छाया नाटक प्राचीनता एवं महत्त्व की दृष्टि से इस सिद्धान्त को पुष्ट नहीं कर पाता।

7. पुत्तलिका नृत्य से नाट्योत्पत्ति सिद्धान्त –

डॉ. पिशेल इस सिद्धान्त के उद्भावक है। डॉ. पिशेल ने पुत्तलिका नृत्य की भारत में ही उत्पत्ति का कथन करते हुए प्रतिपादित किया कि पुत्तलिका नृत्य से उत्पन्न होने के कारण ही सूत्र–धार (डोरा पकड़ने वाला) तथा स्थापक (किसी वस्तु को लाकर रखने वाला) आदि शब्द नाट्य में आए।

किन्तु पिशेल का मत ग्राह्य नहीं है। पुत्तलिका नृत्य एक सामान्य नृत्य है, उससे सम्पूर्ण रस निर्भर, विभिन्न जटिल नाट्यांग सम्पन्न नाट्य की उत्पत्ति मानना सर्वथा अनुचित है।

8. संवाद सूक्तों से नाट्योत्पत्ति सिद्धान्त

डॉ. वॉन श्रोदर, डॉ. हर्टल, डॉ. विण्डिश, ओल्डेनबर्ग आदि ने ऋग्वेद में पाए जाने वाले ऐसे अनेक सूक्तों से नाट्योत्पत्ति मानी, जो सूक्त एक से अधिक वक्ता पाये जाने के कारण 'संवादसूक्त' कहलाते हैं। इन विद्वानों की यह धारणा थी कि इन सूक्तों को नृत्य गीत संवलित करके यज्ञीय कर्मकाण्ड के अवसर पर श्रान्त पूजकों एवं दर्शकों के मनोविनोदार्थ प्रस्तुत किया जाता था उस समय इन सूक्तों का स्वरूप गद्यपद्यात्मक था। गद्यात्मक अंश वर्णनात्मक होने के कारण कालान्तर में स्मृतिपथ से लुप्त हो गया, केवल पद्यात्मक भाग अवशिष्ट रह गया। इस कारण आज भी नाट्य गद्यपद्यात्मक ही पाये जाते हैं।

यह सिद्धान्त भी स्वीकरणीय नहीं है। ऋग्वेद के सूक्त की शंसना मात्र होती थी। गेय तो सामवेद के सूक्त थे।

निष्कर्ष

संस्कृत रूपकों की उत्पत्ति की व्याख्या करने वाले इन सिद्धानतों में केवल प्रथम दो ही ग्राह्य है, अन्य सिद्धान्त केवल बहिर› पर आश्रित हैं। वे नाटकों के प्रारम्भिक रूपों की आंशिक व्याख्या मात्र ही कल्पना या समकक्ष स्थितियों के आधार पर कर पाते हैं। संस्कृत नाटकों की वैदिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो भरत का मत है तथा संवाद–सूक्तों से जो उनका उद्भव दिखाया गया है वे दोनों नाट्य के आवश्यक उपादानों की व्याख्या से सम्बद्ध हैं। संवाद–सूक्त का सिद्धान्त केवल कथोपकथन (पाठ्य) की व्याख्या करने के कारण आंशिक है किन्तु भरत ने नाट्य के सभी उपादानों पर प्रकाश डाला है– यह सर्वा›पूर्ण व्याख्या है। नाट्य के चार अनिवार्य तत्व हैं– **पाठ्य, संगीत, अभिनय और रस** चारों वेदों में एक–एक तत्व पुष्कल रूप में है। ऋग्वेद के संवाद–सूक्त नाट्य को कथावस्तु और आवश्यक, पाठ्य प्रदान करते हैं। सामवेद संगीतमय है अतः नाट्य–संगीत प्रदान करने में

समर्थ है। यजुर्वेद का कर्मकाण्ड वाचिक तथा आ>िक अभिनय से भरा है, अतएव नाट्यवेद को अभिनय तत्त्व दे सकता है। अथर्ववेद की विषय–वस्तु नाटक में बहुधा सुलभ शृ>ार एवं वीर रसों से परिपूर्ण है। स्त्रियों के प्रति किए गये अभिचार कर्म में शृ>ार रस तथा शत्रुओं के प्रति कार्यों में वीर रस का प्राचीनतम रूप प्राप्त होता है। इसलिए अथर्ववेद नाट्य–रस का आधार है। इस प्रकार वेदों से आवश्यक उपादानों का संकलन कर लेने पर 'नाट्य' की व्याख्या हो सकती है– इसे प×चम वेद कहा जा सकता है।

नाट्य का प्रारम्भ किन स्थितियों में हुआ– यह भी वेदों में समाधेय है। यज्ञों के अवसरों पर वैदिक युग में भी धार्मिक अभिनय या लौकिक विषयों के प्रदर्शन होते थे जिनके अवशेष संवाद सूक्तों में सुलभ है। ब्राह्मण–ग्रंथों के शुद्धतावादी युग में अभिनयों पर रोक लगी थी जिससे निम्न समाज तक ही इन्हें सीमित होना पड़ा किन्तु भरत के आविर्भाव ने नाट्य को पुनः प्रतिष्ठा दी तथा इसे 'सार्ववर्णिक प×चम वेद' का प्रतिष्ठित पद मिल गया।

नाटक की परिभाषा

नाटक के स्वरूप के पर्यवेक्षण करने से स्पष्ट है कि नाटक एक समाश्रिता कला है। अतः नाटक की एक सूत्रात्मक संश्लिष्ट परिभाषा करना कठिन है तथापि प्राच्य पाश्चात्य विद्वानों ने इसको सुनिश्चित, सीमित तथा सर्वांगीण परिभाषा में परिसीमित करने के प्रयास किए हैं। अरस्तू ने त्रासद (ट्रेजेडी) की परिभाषा करते हुए लिखा है कि **"त्रासद उस व्यापार विशेष का अनुकरण है, जिसमें गंभीरता हो, पूर्णता हो तथा जिसमें एक विशेष परिणाम हो, भाषा अलंकृत, सजीव तथा विभाषाओं से युक्त हो और शैली वर्णन प्रधान न होकर नाटकीय हो जो करूणा तथा भयप्रदर्शन द्वारा मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सके।"**[23]

भारतीय साहित्य–शास्त्री भी नाटक के मूल में अनुकरण भावना को ही प्रधान मानते हैं परन्तु उन्होंने अपनी व्यापक विवेचन शक्ति द्वारा पूर्णता तक पहुँचने की चेष्टा की है। नाट्य शास्त्र के आचार्य भरत मुनि ने संपूर्ण त्रैलोक्य के भावानुकीर्तन को नाटक मानते हुए लिखा है– **"त्रैलोक्यस्या सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।"**[24] भरत

ने अनुकृति के साथ भाव अर्थात् रस को भी प्रमुखता दी है। इसी को स्पष्ट करते हुए तथा मूलभूत अन्य संश्लिष्ट तत्त्वों को निर्देश करते हुए लिखा है—

"नानाभावोपसंपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृतानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृम्।।"[25]

यहां भरत ने भावरूप में रस की, अवस्था के रुप में रचनात्मक तत्त्वों की तथा अनुकरण के रूप में अभिनय तत्त्व की प्रतिष्ठा की है। आचार्य भरत का कहना है कि यह अनेक प्रकार के भावों से सम्पन्न और नानाविध अवस्थाओं से परिपूर्ण है। इसके द्वारा उत्तम, मध्यम और अधम—सभी कोटि एवं वर्ग के लोगों का चरित्र प्रदर्शित किया जा सकता है। **'यह नाट्यवेद दुःखियों के दुःखों को दूर करने वाला, परिश्रम से क्लान्त जनों के श्रम को हरने वाला, शोक संतप्त लोगो के शोक का उपशमन करने वाला तपस्वी जनों को परम शान्ति प्रदान करने वाला सिद्ध होगा।'**

"दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिर्जननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।"[26]

अखिल ब्रह्माण्ड का वह दर्पण है। जिस प्रकार हम अपनी प्रतिच्छवि दर्पण में देखते हैं, ठीक उसी प्रकार विश्व की प्रतिच्छवि नाट्यवेद में देखने को मिलती है। **'ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म शेष नहीं है जो इस नाट्य के द्वारा प्रदर्शित न किया जा सके या उसमें न देखा जा सके'**

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन्यन्न दृश्यते।।"[27]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भरत ने नाटक में अवस्थानुकरण, भावानुकरण एवं वृत्तानुकरण तथा यर्थाथ रूप होना परमावश्यक है। अवस्था, भाव, वृत्त से भरत का तात्पर्य क्रमशः नेता, रस तथा वस्तु तत्त्व है। धन×जय ने भी नाटक की परिभाषा करते हुए लिखा है—

"अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम्।।"[28]

इन्होंने भी समन्वित रूप से अवस्थानुकरण, रूपानुकरण तथा रस अर्थात् भावानुकरण को प्रमुखता दी है। धन×जय के अनुसार दशरूपकों को मुख्यतः रसाश्रित होना आवश्यक है। इसी प्रकार अन्यान्य अनेक विद्वानों ने परिभाषाएँ दी हैं, सभी में प्रायः आत्मभूत रस को प्रमुख मानकर अन्य तत्त्वों का निर्देश किया गया है। निष्कर्षतः **"नाटक, त्रैलोक्य की भी सर्वांगीण यथार्थ अनुकृति पर आधारित एक रस प्रधान अभिनेय काव्य है।"** इससे स्पष्ट है कि नाटक में 1. यथार्थ अनुकृति 2. रस की प्रधानता आवश्यक है।

नाटक वर्गीकरण

शिक्षा, नैतिकता तथा आनन्द काव्य या कला के इन तीन उपादेय तत्त्वों के आधार पर पश्चिम में नाटक दो प्रकार के माने जाते हैं– शुद्ध वास्तविकतावादी और कलावादी। पहले नाट्यवर्ग का सम्बन्ध शिक्षा से हैं तो दूसरा शुद्ध आनन्द, मनोरंजन और कलात्मक अभिव्यक्ति से सम्बद्ध हैं। विविध निर्धारक अथवा वरीय तत्त्वों के आधार पर नाटक के निम्न भेद हो सकते हैं[29]–

1. विषय–वस्तु के अनुसार नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रतीकात्मक, राजनीतिक, पारिवारिक, धार्मिक, नैतिक आदि प्रकार के हो सकते हैं।
2. प्रदर्शन विधि के आधार पर नाटक छाया नाटक, पुत्तलिका नाटक, मूकाभिनय नाटक, नृत्य नाटक, नाट्य नाटक, शैली नाटक आदि हो सकते हैं।
3. विचार, भाव अथवा प्रभाव के आधार पर नाटक के शृंगारपरक, वीरता प्रधान, त्रासजनक, हास्य–प्रधान, करुणा–प्रधान, विरक्तिप्रधान, शिक्षा प्रधान या उपदेशप्रधान आदि वर्ग हो सकते हैं।
4. रूप एवं रचना के अनुसार नाटक को शास्त्रीय, एकांकी, रेडियों नाटक, टेली नाटक, चित्रपट अथवा सिनेमा नाटक आदि रूपों में विभक्त किया जा सकता है।

5. वर्तमान में प्रचलित विविध नाट्य–रूपों के आधार पर नाटक के कथा प्रधान, चरित्र–प्रधान, व्यापार या घटना प्रधान, संगीत–प्रधान, उद्देश्य प्रधान, संवाद–प्रधान और समस्या प्रधान रूप प्राप्त हैं।

जो नाटक केवल पढ़ने के लिए ही लिखे जाएँ अथवा व्यवहारिक कारणों से उनका मंचन सम्भव न हो, उन्हें अरंगमंचीय वर्ग में परिगण्य माना जा सकता है। पश्चिम में विसंगत नाटक (एब्सर्ड ड्रामा) नामक एक विधा का विकास भी हुआ है। यहा नाट्य रूप पूरी तरह रंगमंच पर ही सम्भव और सफल होता है। इस विधा में नाटक के परम्परित तत्त्व–कथानक, पात्र, लक्ष्य आदि की संगति आवश्यक नहीं मानी जाती। मंच पर अभिनय ही महत्वपूर्ण होता है। इसके पीछे अस्तित्त्ववादियों की वह धारणा कार्यरत है जिसके अनुसार यह माना जाता है कि जब मानव जीवन ही विसंगत है तो उसके अनुकरण में संगति की अपेक्षा करना उचित नहीं होगा। पश्चिम में सार्त्र कामू और बैकेट इस वर्ग के नाटकों के प्रणेता हैं। मोहन राकेश का 'आधे–अधूरे' नाटक भी इसी वर्ग की रचना मानी जाती है, जिसका सम्पूर्ण प्रेरक तत्त्व जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं का व्यंग्यात्मक रेखांकन है।

भेदोपभेद और भी हो सकते हैं पर यह वस्तुतः अकादमिक व्यायाम ही अधिक होता है। किसी एक स्वरूप, विचार या वस्तु से एकान्तिक रूप में सम्बद्ध नाटक की प्रायः कल्पना नहीं हो सकती। तत्त्व–विशेष की वरीयता ही निर्धारक तत्त्व होता है। प्रमुख चार–पाँच वर्गों में अन्य सब भेदों का प्रायः समाहार हो जाता है।

आधुनिक नाट्य विधा

कला का प्राण तत्त्व है काव्य और काव्य का उत्कृष्टतम रूप है नाटक। इस विधा के अतीत में प्रयोग और प्रगति की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती रही है। नाट्य कवितत्त्व की चरम सीमा ही नहीं अपितु एक ऐसा चाक्षुष यज्ञ है, जिसमें श्रवणेन्द्रियों के साथ–साथ नेत्रों को भी सुख प्राप्त होता है। नाटक, शिल्प, विद्या, ज्ञान और कला का मन्दिर ही नहीं अपितु सामयिक समस्याओं का संवाहक भी है।[30]

भारतीय परिवेश–जन्य विभिन्न संस्कृतियों की इन्द्रधनुषी आभा यहाँ के साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होती है। जहाँ जीवन का प्रत्येक पक्ष प्रगति के नये

अध्याय लिख रहा है, वहाँ अर्वाचीन नाटकों में नाट्यतत्त्वों की नवीन सम्भावनाओं से कैसे इंकार किया जा सकता है ? वर्तमान समय में हमारा नाट्य साहित्य युगानुरूप होने के साथ–साथ मंचीय दृष्टि से भी बहुत समृद्ध हो गया है। प्राचीन नाटकों में कवि द्वारा किये गये वर्णन की सहायक से प्रेक्षक अपने समक्ष प्रस्तुत दृश्य की कल्पना कर लेता था अर्थात् किसी भी स्थिति की संकल्पना प्रेक्षकों की प्रतिभा पर निर्भर थी। विभिन्न प्रकार के रंग–निर्देश ही इन दृश्यों की संजीवनी होते थे, यथा– अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रारम्भ में दुष्यन्त जिसे मृग का पीछा करता है, वह सूत्रधार के निर्देश से ही अनुभवगम्य होता है। राजा का अभिनय करने वाला अभिनेता अपनी बंधी हुई दृष्टि एवं मुद्रा से ऐसा अभिनय करता है मानो वह मृग पर प्रहार कर रहा है। रंगमंच पर प्रियम्वदा एवं अनसूया का फूल चुनना वस्तुतः पुष्प चुनने का अनुकरण मात्र है।[31] एक कुशल अभिनेता एवं अभिनेत्री इन समस्त भावों को, नाट्यगत संवेगों को अपने आंगिक आदि अभिनय से कुशलतापूर्वक व्यक्त कर देते हैं। परन्तु इसके लिए एक आदर्श प्रेक्षक में अभिनेताओं द्वारा अनुकृत पात्रों के भावों तथा अनुभूतियों को स्वकीय बना सकने की योग्यता के साथ ही तीव्र ग्रहणशीलता और उत्कृष्ट निर्णयशक्ति का होना भी अपेक्षित है। तब ही वह सामान्य बाह्य चिह्नों यथा– अश्रु, हास, रोमा×च, आक्रोश, हर्ष, जुगुप्सा भय आदि अनेक भावों की अभिव्यक्ति कर सकता है। इस प्रकार प्राचीन नाटकों में नाटककार प्रेक्षागृह, अभिनेता नाटक की साज–सज्जा एवं दृश्य–प्रेक्षक आदि प्रमुख नाट्य तत्त्वों का प्रयोग भरतमुनि के नाट्य शास्त्रीय नियमों की परिधि में ही करते रहे। उन्होंने दृश्य की प्राणवत्ता के लिए कोई विशेष श्रमसाध्य कार्य नहीं किया। क्योंकि उनका उद्देश्य मात्र मंचीय अभिनय ही नहीं अपितु नाट्यकृतियों को उत्कर्ष प्रदान करने वाली अनेक कलाओं, नृत्य, वाद्य, गीत आदि को भी उत्कर्ष प्रदान करना था।

परन्तु अर्वाचीन नाट्य–रचनाकारों ने अपने–अपने नाट्यों में इस मौन को तोड़ा है। उन्होंने प्राचीन नाट्यशास्त्रीय नियमों को अंशतः ही स्वीकार किया है। आज नाटक का अभिप्राय रूपक का एक अंग नहीं अपितु उसमें एकाSी, प्रहसन, भाण, डिम्ब, वीथिका, नुक्कड़–नाटक, नृत्य–नाटिकाएँ, रेड़ियो–रूपक, ऑपेरा, छाया–नाटक आदि समस्त विधाएँ अनुस्यूत है।

'काव्येषु नाटकं रम्यम्[32] की चरम परिणति है नाटक को नाट्य–साहित्य। दृश्यरूपता, संवादयुक्तता, हृदयाह्लादकत्व, भावाभिव्यंजकता तथा कथानक की दृष्टि से, रस–आनन्द एवं उसके परिपाक के लिए नाट्याचार्यों ने अनेक गतियों का संकेत किया है। चाक्षुष प्रत्यक्ष होने के कारण रसात्मक वाक्य रूप काव्य दृश्य है, अभिनेता अभिनेय रामादि के चरित्रों का अपने ऊपर आरोप करता है इसलिए यह रूपक है। अभिनय–चातुर्य के कारण दर्शक विगलित वेद्यान्तर आनन्द का अनुभव प्राप्त करते हैं। भरतमुनि के द्वारा नाट्यों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुये नाटक को शोकाकुल एवं श्रमातुर जनों के लिये शान्ति प्रदान करने वाला कहा गया है।'[33]

बीसवीं शती में अनेक नाटक प्राचीन नाट्य–परम्परा का अनुकरण करते हुये लिखे गये जिनमें पौराणिक आख्यान पर आधारित अनेक नाटक हैं। उनमें भी अनेक नाटक प्राचीन परम्परा से हटकर हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा के नाटकों के प्रभाव से तदनुरूप सामाजिक राजनीतिक समस्याओं को आधार बना कर लिखे गये इन नाटकों के नायक भी देवता तथा राजा न होकर समाज के मध्यमवर्गीय परिवार के वकील, अध्यापक, लिपिक, डॉक्टर तथा अवर जाति के धोबी, चर्मकार, दर्जी आदि बनाये गये। विज्ञान तथा भौतिकता के युग में जब मानव आत्मा, आत्मोत्कर्ष तथा स्व पर ही केन्द्रित रहता है, परोत्कर्ष आत्मकल्याण तथा परहित की ओर उसकी दृष्टि जाती ही नहीं, यदि जाती भी है तो टिकती नहीं, ऐसी स्थिति में इन नाटकों में युगीन परिवेश के अनुसार यथोचित परिवर्तन करते हुये कवियों ने छोटे–छोटे नाटक एकांकियों के प्रणयन के माध्यम से मानव–जीवन की समस्याओं को, कशमकश को उभारते हुये अहिंसा, दया, सत्य, अस्तेय आदि मानव–मूल्यों की स्थापना की है।

नाट्यक्षेत्र में क्रान्ति लाने वाले साधकों की विस्तृत शृंखला है। इसमें **अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हरिदत्त शर्मा, हर्षदेव माधव, वनमाला भवालकर, नलिनी शुक्ला, लीलाराव, रमा चौधरी, कमलारत्नम्, देवकीमेनन्, वीणापाणि पाटनी, मिथिलेश कुमारी मिश्रा, केशवचन्द्रदाश** आदि अनेक रचनाकार सम्मिलित हैं। वस्तुतः इनकी रचनाओं में प्राचीन और अर्वाचीन दोनों नाट्य तत्त्वों की सुगन्ध व्याप्त है। यद्यपि इन नाट्यकारों ने रूपक की समग्रता पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की परन्तु भारतीय मनीषियों की प्रज्ञा–परिष्कृति

के कारण समय–समय पर र›मंच एवं तकनीक की दृष्टि से युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। शिल्प एवं कथ्य में ध्वनि की प्रमुखता पर एकाग्र होकर जिन नाटकों का प्रणयन किया गया वे रेडियो–रूपक के रूप में प्रचलित हुए। आकाशवाणी के प्रसारण एवं तकनीक की दृष्टि से इन्हें सर्वाधिक प्रभावशाली कहा जा सकता है। वर्तमान परिवेश में रेडियो रूपक (ध्वनि नाट्य) और नृत्यनाटिकाएँ ही अधिकांशतः प्रचलित है। संगीत–नाटिकाओं के प्रति भी अर्वाचीन नाट्यकारों की अभिरूचि परिलक्षित होती है। इसमें वनमाला भवालकर की 'रामवनगमनम्', 'सीताहरणम्', 'पार्वतीपरमेश्वरीया' इसी प्रकार की नाटिकाएँ हैं।

इस प्रयोग धर्मिता का कारण न केवल हमारी सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन का होना है अपितु हमारी जीवन शैली का बदलाव भी है। आज घण्टों तक चलने वाले नाटकों का स्थान छोटे–छोटे एकाडी ले रहे हैं। क्योंकि श्रोता एवं दर्शकों को न तो बड़े नाटकों को देखने का समय है और न रूचि। अतः कम समय में अधिक आनन्द प्राप्त करने के लिए मनोविज्ञान ने ही संगीत एवं नृत्य–नाटिकाओं, रेडियो–रूपक, ध्वनि नाट्य, एकांकी जैसे लघुनाटकों में अपनी रुचि व्यक्त की है। कलानाथ शास्त्री का 'नाट्यशास्त्रावतार' नाटक पच्चीस मिनट में अभिनीत किया जा सकता है। 'प्रेक्षण–सप्तकम्' के समस्त नाटक तीस से चालीस मिनट में, कल्पवृक्ष के समस्त एकाडी 15 से 20 मि. में अभिराज जी के अधिकांश नाटक 25 से 40 मि. के मध्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं।[34] ध्वनि एवं दृश्य–परिवर्तन द्वारा वर्षों एवं माह का अन्तराल प्रेक्षकों को सरलता से सम्प्रेषित किया जा सकता है।

निष्कर्षतः आधुनिक संस्कृत नाट्य लेखन में नवीन रचनाधर्मिता व समय के साथ विषय चयन की विशेष लाघवता दिखाई देती है। राजस्थान में कलानाथ शास्त्री जी के रेडियो रूपक ध्वनि प्रसारण तकनीकी दृष्टि से नाट्य साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान है। डॉ. हरिराम आचार्य के **'पूर्वशाकुन्तलम्'** नाट्य संकलन नाटक विधा का अनुपम उदाहरण है। उनके काष्ठपुत्तलिका नाटक व नुक्कड़ नाटक प्रसिद्ध है। अभिनय की दृष्टि व मंच प्रकाश व्यवस्था आदि दृष्टियों से उनके नाटक प्रसिद्ध है। वह नाटक लेखक ही नहीं स्वंय एक अभिनेता भी हैं। अतः अभिनय की दृष्टि से उनके नाटकों में अनेक बारीकियाँ दिखाई देती है।

संस्कृत नाट्य की नूतन प्रवृत्तियाँ

"सहितस्य भावः साहित्यम्" इस व्युत्पति के अनुकरणकर्ता प्राचीन आचार्यों संस्कृत–साहित्य को दृश्य एवं श्रव्य भेद से दो भागों में विभक्त किया है। दृश्यकाव्य को ही रूपक या नाटक भी कहा जा सकता है। श्रव्यकाव्य जहाँ श्रवण माध्यम के द्वारा हृदय को उल्लसित करता है, वहीं, दृश्यकाव्य श्रवण माध्यम के साथ–साथ चक्षु इन्द्रियों के माध्यम से भी प्रेक्षक के चित्त को आह्लादित करता है। यही कारण है कि दृश्यकाव्य का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक समय तक बना रहता है। संस्कृत–काव्यशास्त्री वामनाचार्य ने भी काव्यों में रूपक को ही विशेष महत्त्व प्रदान किया है– **"सन्दर्भेषु दशरुपकं श्रेयः"**। इस नाट्य साहित्य को भी प्राचीन नाट्यशास्त्रियों ने दस प्रकार के रूपकों व 18 प्रकार के उपरूपकों में विभाजित किया है।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में नाट्य साहित्य में कई नूतन प्रवृत्तियों ने प्रवेश किया। अब नाट्य–साहित्य र›म×च की परिधि में खेले जाने वाला "खेल" मात्र नहीं रह गया है। अपितु यह अपनी सीमाओं को त्यागकर सर्वथा मुक्ताकाश में विचरण कर रहा है। आधुनिक संस्कृत–नाट्य–साहित्य में उपलब्ध कतिपय नूतन प्रवृत्तियों का यहाँ संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

नुक्कड़–नाटक

भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य–साहित्य के लिए आवश्यक जिन शास्त्रीय–तत्त्वों का वर्णन किया था, उनका आधार लेकर प्राचीन समय में र›म×च पर अनेकानेक नाटक खेले गये, किन्तु कालान्तर में धर्मान्ध–आक्रमणों ने र›म×चीय शिल्प का विनाश कर दिया। इस नाट्यधर्मी परम्परा के क्षतिग्रस्त और अन्ततः लुप्त होने पर भी वह परम्परा जीवित बनी रही, जिसे हम भरतमुनि के शब्दों में लोकधर्मी कह सकते हैं। इसी लोकधर्मी परम्परा से "लोक नाट्य" विकसित हुए, जैसे– तमाशा (महाराष्ट्र), भवाई (गुजरात), स्वांग व नौटंकी (बुन्देलखण्ड व उ.प्र.) इत्यादि। वर्तमान में आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में इन लोक नाट्यों के अन्तर्गत

नुक्कड़–नाटक नामक विधा अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इन नुक्कड़ नाटकों को उपरूपक "प्रेक्षणक" का ही नवोत्थान माना है–

"आधुनिका नुक्कड़–नाटक" इति यदामनन्ति, तदपि वस्तुतः प्रेक्षणकस्यैव नवोत्थानम्, तल्लक्षणं भोजस्य शृ›ारप्रकाशे रामचन्द्रगणचन्द्रयोर्नाट्यदर्पण इत्थं प्राप्यते–

रथ्या–समाज–चत्वर–सुरालयादौप्रवर्त्यते बहुभिः।
पात्रविशेषैर्यत् तत् प्रेक्षणकं कामदहनादि।।[36]

इस आधार पर नुक्कड़ नाटक प्रेक्षणक उस लोकनाट्य को कहा जा सकता है जो संक्षिप्त दृश्य–संयोजन के माध्यम से एक अŠ में निबद्ध होकर कहीं गली, चौराहे तथा एकत्रित सामाजिकों के मध्य खेला जा सके। कभी मदिरालय या मेला आदि स्थलों पर इन प्रेक्षणकों का प्रयोग कवि अपने कथ्य को प्रस्तुत करने के लिए करता था, क्योंकि इन स्थलों पर जनसमूह का एकत्रीकरण सुलभ रहता था। सम्भवतः हिन्दी साहित्य से ही 'नुक्कड़' नाटक शब्द ने संस्कृत में प्रवेश किया। अंग्रेजी साहित्य में इन्हें Street Play कहते हैं।[37]

संस्कृत नाट्य–साहित्य में नुक्कड़ नाटक लिखने का शुभारम्भ प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने किया है। इनकी कृति **चतुष्पथीयम्** में चार नुक्कड़–नाटकों का संकलन किया गया है– **'इन्द्रजालम्', निग्रहघट्टम्, वैधेयविक्रमम्, मोदकं केनभक्षितम्** प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने नुक्कड़ नाटकों को प्रेक्षणक नाम देते हुए स्व. लिखित सात प्रेक्षणकों का संकलन **प्रेक्षणकसप्तकम्** के रूप में प्रस्तुत किया है। इन सात प्रेक्षणकों के नाम इस प्रकार है– 'सोमप्रभम्, धीवरशाकुन्तलम्, मुक्तिः, मशकधानी, गणेशपूजनम्, मेघसंदेशम् तथा प्रतीक्षा। इन नुक्कड़ नाटकों की विशेषता यह है कि इन्हें कही भी किसी भी नुक्कड़ पर कमखर्च, कम समय में अभिनीत करके उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है।

रेडियो–नाटक

रेडियो नाटक 20वीं सदी की एक सशक्त विधा है आकाशवाणी से प्रकाशित किए जाने वाले तथा संवादात्मक रूपक ही रेडियों रूपक कहे जाते हैं इनमें ध्वनितत्व की प्रधानता रहती है। सीताराम चतुर्वेदी के शब्दों में "आजकल रेडियो पर अनेक नाटक सुनवाये जाते हैं जो पूर्णतः श्रव्य होते हैं। इन नाटकों में कम पात्र, संक्षिप्त घटनाचक्र और थोड़े स्वाभाविक संवाद रखने पड़ते हैं, इसलिए इनकी अवधि भी आधा–पौन घण्टे की होती है। इनमें रंगनिर्देश तथा संवादकार्य ठीक वैसा ही होता है जैसा अन्य साधारण नाटकों में, किन्तु संवाद ऐसे होते हैं जिनमें अधिक से अधिक वाचिक अभिनय का अवसर हो।"[38] इसका विशेष ध्यान देने योग्य अंग है–

ध्वनि युक्त व्यापार–योजना, जिससे कि श्रोता उस व्यापार को कान में समझ सके जैसे–बाल–धोना, थाली गिरना, मोटर की भो–भो इत्यादि।[39]

रेडियो नाटक को **"ध्वनिरूपक, ध्वनिनाटक, रेडियोरूपक, नभोवाणी रूपक और श्रव्य नाटक"** भी कहा जाता है। अंग्रेजी–साहित्य में इन्हें Radio Features या Radio Drama कहा जाता है। हिन्दी के म्रियमाण रंगमंच के लिए तो रेड़ियो–नाटक संजीवनी ही बन गये हैं।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने **'मंजुला'** नामक रेडियो नाटक आकाशवाणी जयपुर के लिए लिखा था। संस्कृत साहित्य में देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने कई रेडियो नाटक रचे हैं। इनमें से कुछ नाटकों का संकलन **'नाट्यवल्लरी'** के रूप में प्रकाशित हुआ है। डॉ. हरिराम आचार्य ने अपने रेडियो नाटकों का संग्रह **'पूर्व शाकुन्तलम्'** के रूप में प्रकाशित करवाया है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री व डॉ. हरिराम आचार्य के रेडियों नाटकों का प्रसारण आकाशवाणी जयपुर से समय–समय पर होता रहा है। श्रोतागण ने इन नाटकों को बहुत सराहा है। इनके अतिरिक्त डॉ. अयोध्या प्रसाद सिंह का 'नीडनिर्माणम्' (आकाशवाणी, रांची), वि. राघवन् का 'कामशुद्धि' (आकाशवाणी, रांची) डॉ. कमलारत्नम् के 'गणयंछागः' 'विवेकानन्दविजयम्' (आकाशवाणी, दिल्ली) डॉ. वेनश्वर पाठक के 'रक्तदानम्' 'विक्रान्तकर्णम्' 'विभ्रान्तनारदम्', 'चाण्डालिका', 'रक्षाबन्धनम्' (आकाशवाणी, रांची) आदि रेडियो–नाटक समय–समय पर प्रसारित हुए हैं।

गीति नाट्य :– गीतात्मक संवादों से जब नाट्य की प्रस्तुति की जाती है तो इसे गीति नाट्य (Opera) या सं›ीतिका (Musical Playlet) कहा जाता है। इसमें भावों की मधुरता तथा स्वर, ताल आदि का सरस संयोग होता है। सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार "संगीतनाट्य (ओपेरा) वह नाटकीय कला रूप या नाटक है, जिसमें संवाद गीतमय होते हैं।"[40] डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी इस विद्या पर अपने विचार इस तरह प्रस्तुत करते हैं– "रागकाव्य की ही भांति संगीतिका भी वस्तुतः अभिनेय काव्य है, पर गेयता की प्रधानता के कारण श्रव्यकाव्य के रूप में भी इसका व्यवहार होता है। पश्चिमी साहित्य में इसे ओपेरा कहते हैं। इसमें विभिन्न पात्रों के संवाद गीतों में ही आद्यन्त चलते हैं।"[41] वनमाला भवालकर के गीतिनाट्य 'रामवनमनम्' (1965) व 'पार्वतीपरमेश्वरीयम्' अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। इनका मंचन सागर विश्वविद्यालय व कालिदास समारोह उज्जैन में किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त श्री श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने 'रामसंगीतिका' व 'श्रीकृष्णसंगीतिका', भास्कराचार्य त्रिपाठी ने 'सुतनुकालास्यम्' लीलाराव ने 'तुकारामचरितम्', 'मीराचरितम्', 'परमभक्तशिवाजीराट्', वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य 'गीतगौरा›म्' व शुर्पणखाभिसारः नामक गीति नाट्यों की रचना की है।

नृत्य–नाटिका – जब गीतिनाट्य की प्रस्तुति नृत्यमयी होती है तो इसे नृत्य नाटिका या बैले (Ballet) कहा जाता है। नलिनी शुक्ला द्वारा रचित 'पार्वतीतपश्चर्या' व 'राधानुनयः' संस्कृत नृत्यनाटिका के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं।

एकांकी–नाटक – एकांकी नाटक लिखने का आरम्भ ईसा से भी पूर्व भास ने कर दिया था। एकांकी रूपक भाण, अंक, व्यायोग, वीथी, प्रहसन, गोष्ठी, उल्लाप्य आदि साहित्य में प्रचलित रहे हैं किन्तु वर्तमान में प्रचलित एकांकी नाटक इनसे शिल्प में भिन्नता लिये हुए हैं। डॉ. निलिम्प त्रिपाठी के अनुसार "20वीं शताब्दी में संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अधिकांशतः यूरोप से आयातित एकांकी One Act Play विधा का अनुकरण दिखलाई देता है उसकी विशेषताएँ है– संक्षेप में केन्द्रीकरण, मार्मिक संवाद और एक घटना, एक स्थान आदि आज साहित्य में उपन्यास के रहते कहानी का जो महत्त्व है, नाटक के समक्ष वही महत्त्व एकांकी का है।"[42] प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने आधुनिक एकांकी विधा पर अपने अभिनव

काव्यशास्त्र "अभिराजयशोभूषणम्" में विस्तार से विचार किया है। इनके अनुसार एकांकी में दिव्य अथवा अदिव्य कोई भी पात्र नेता हो सकता है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। एकांकी का इतिवृत्त नाट्यकार की प्रतिभा से समन्वित किसी भी प्रकार का हो सकता है। इसमें एक ही दिन में घटी हुई घटना का वर्णन किया जाना चाहिए। भाषा संवाद बहुल होनी चाहिए। अंगीरस इतिवृत्त के अनुकूल कोई भी हो सकता है, किन्तु उस रस का एकमात्र लक्ष्य रंग का प्रसादन होना चाहिए न कि दर्शकों का उद्वेग।"[43] ये एकांकी आधुनिक जीवन शैली के अनुरूप है। के.रा. जोशी ने एकांक रूपकों को अवस्था–भेद से तीन प्रकार का माना है–

"एकांकर रचना प्रवृताः प्रणेतारों रूपक प्रेक्षकान्चिन्तयित्वा स्वरचना स्वरूपं निश्चिवन्तः। इमे रूपक प्रेक्षका अवस्थया त्रिविधाः सम्भवति–बाला युवानः प्रौढ़ाश्च, एवं त्रिधा विभक्तानि एकांक रूपकाणि सन्ति।"[44]

एकांकी–लेखन में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनके प्रायः 8 एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और हर एकांकी अपने आप में अनूठी है।

संवादमाला – श्री आनन्दवर्धन रामचन्द्र रत्नपारखी ने संस्कृत नाट्य–साहित्य में संवादमाला नामक नवीन विधा का विकास करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी 'संवादमाला' नामक रचना (1957) में 13 संवाद है। संस्कृत–भाषा में निबद्ध इन 13 संवादों को लेखक ने विनोद में ही रचा था किन्तु कालान्तर में उनके ये संवाद एक निश्चित आकार लेकर संवादमाला के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए। ये संवाद प्रायः लघु आकार लिये हुए हैं। इन संवादों में कहीं–कहीं एकाधिक दृश्य भी हैं जो नाटकीय आनन्द प्रदान करते हैं। रस, वस्तु, पात्र आदि की योजना नाटकवत् ही की गई है। इन 13 संवादों के नाम इस प्रकार हैं[45]–

1. जयदेव पद्मा वतीयम् 2. कोकिलाक्षकोयष्टिकीयम् 3. सहस्रपत्रकलिहमाचिकीयम् 4. उपस्थिपुस्तिकाप्रणाशः 5. निष्कूलशुष्ककूलकीयम् 6. कार्यनिलयवेलावसानम् 7. नीलकण्ठमंजुहासिनीयम् 8. आश्रमसन्धिः 9. कपि×जलकर्मरि>कीयम् 10. करहारककल किंकिंणीयम् 11. कपित्थककरमार्दिककयीम् 12. कर्णिकारपरिव्याधकीयम् 13. मकरन्दमन्दारमालयम्

अनूदित–नाटक – संस्कृतेतर भाषाओं के नाटकों के संस्कृत अनुवाद की प्रवृत्ति भी बढ़ी है जिससे कि संस्कृत–पाठक/दर्शक तत् तत् भाषाओं के नाटकों का भी रसास्वादन कर सके। श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा ने शेक्सपीयर की तीन रचनाओं को संस्कृत में अनूदित किया है– 'यथा ते रोचते' (एज यू लाइक इट) 'वणीशसार्थवाह' (मर्चेन्ट ऑफ वेनिस) द्वादश रात्रि (ट्वैल्थ नाइट)। श्रीकृष्णमाचार्य महोदय ने भी शेक्सपियर के मिडसमरनाइट्स ड्रीम को 'वासन्तिकस्वप्नाभिधान' नाम से संस्कृत में अनूदित किया है। श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी ने शेक्सपियर की रोमियो जूलियट रचना पर आधारित 'यूथिका' नाटिका (1876) लिखी है। भगवान् दास सफाडिया रचित हिन्दी रूपक का संस्कृतानुवाद प्रेमशŠर शास्त्री ने 'एकविंशति शताब्दीद्वाविंशति शताब्दी' शीर्षक से किया है। इसका प्रकाशन संगमनी (प्रयाग) पत्रिका में हुआ है जिसमें भविष्य की कल्पनाओं को उकेरा गया है।

आधुनिक युग में संस्कृत–साहित्य में सर्वाधिक नवीन विधाओं का उदय हुआ इससे पूर्व किसी भी युग में साहित्य–लेखन की इतनी विधाओं, विशेषकर नाट्य विधाओं का उद्भव संस्कृत में नहीं हुआ था। इसका मुख्य कारण है अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के परिचय, आदान–प्रदान और पारस्परिक अन्तःक्रिया के फलस्वरूप साहित्य में पनपी नई उद्भावनाओं, विधाओं और शैलियों के रचनात्मक प्रभाव। इसी प्रभाव के फलस्वरूप संस्कृत–साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। इस शती को संस्कृत–साहित्य के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात कह सकते हैं। यूरोप से संपर्क और नवीन राजनीतिक चेतना ने संस्कृत–साहित्य में रचना की नयी धरती का निर्माण किया। संस्कृत–पत्र–पत्रिकाओं ने नवीनतम काव्य, योरोपीय साहित्य के ससंस्कृतानुवाद नये विषयों पर चिन्तन और नवीन विधाओं में लेखन का शुभारम्भ किया।

डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा रचित नाट्य–साहित्य

डॉ. हर्षदेव माधव का अधिक साहित्य पद्यमय हैं। लेकिन उन्होंने नाट्य साहित्य में भी अपनी लेखनी चलाई है और दो अद्भुत नाट्य संकलन संस्कृत साहित्य को दिये हैं।

1. मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति

2. कल्पवृक्ष

दोनों ही नाटक अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में एक नवीन सरणि का विधान करते हैं। पात्रों की कल्पना व नवीनता का आधान, कल्पना व चिन्तन की नयी दिशा इनके नाटकों की विशेषता है। काव्य की गति सतत प्रवहमान जल के समान होती है। काल के साथ विभिन्न घातों से होता हुआ काव्य निरन्तर आगे बढ़ता जाता है। निरन्तर प्रवाहमान नीर में जिस प्रकार नवीन तत्त्व मिलते हैं और कुछ किनारों पर पीछे छूट जाते हैं उसी प्रकार काव्य–संसार भी चलते हुए कुछ पीछे छोड़ जाता है और उसमें कुछ न कुछ नवीन जुड़ता चला जाता है। इसलिए प्रायः आलोचक कुछ आश्चर्य से या कुछ पीड़ा से यह उद्‌गार व्यक्त करते हैं कि "पहले जैसा अब क्यों नहीं लिखा जा रहा" या "अब जो लिखा जा रहा है वह पहले तो नहीं लिखा गया था" इत्यादि। किन्तु ऐसा होना सहज है और सम्भवतः किसी भाषा और साहित्य की निरन्तर जीवन्तता के लिए अनिवार्य भी है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है तो यह स्वाभाविक ही है कि समाज की निरन्तर परिवर्तनशीलता का बिम्ब–साहित्य के दर्पण में दिखाई दें। यह अनायास नहीं है कि जिस युग का घटनाक्रम अज्ञात हो उस युग के इतिहास को जानने समझने के लिए 'साहित्य' इतिहास के स्रोत के रूप में उपयोग में लाया जाये। साहित्यकार सचेत रूप से बचना चाहे तब भी उसकी रचनाओं पर सामाजिक परिवेश का प्रभाव पड़ेगा। अत्यन्त एकान्त में लिखी गई रचनायें भी सामाजिक परिवेश के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकती।

उपर्युक्त तथ्य देववाणी संस्कृत में लिखी आधुनिक रचनाओं के विषय में भी सत्य है। यद्यपि यहाँ यह प्रक्रिया जटिलता के साथ आगे बढ़ी है। जिस भाषा की विशेषता ही अति प्राचीन होना हो, जो अनेक भाषाओं की जननी के गौरव के पद पर आसीन हो, वही सदियों से चली आ रही परम्पराओं की परम्परा हो, शाश्वत मूल्यों का अति आग्रह हो, जिसमें बाहर से कुछ भी लिया गया किसी घुलनशील पदार्थ के समान इस तरह घुल मिल गया हो कि पता ही नहीं चलता हो वहाँ नवीनता सहज–स्वीकार्य होने की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से जटिल हो ही जाती

है। फिर भी संस्कृत में भी आधुनिकता का आगमन हुआ और संस्कृत के विद्वानों में संस्कृत–इतिहास का विहंगावलोकन करते हुए 'आधुनिक संस्कृत–इतिहास' शीर्षक के अन्दर पिछली दो–तीन सदियों में संस्कृत–जगत् की गतिविधियों का मूल्यांकन किया और उसकी विशेषताओं को भी स्वीकार किया। संस्कृत में आयी इस आधुनिकता को देखने–समझने के लिये हमें पिछली दो–तीन सदियों में वैश्विक स्तर पर समाज में आयी नवीनता और भारत पर पड़े प्रभाव पर दृष्टिपात करना होगा।

कोई भी जीवन्त–साहित्य युग के दबाव की अपेक्षा नहीं कर सकता। अपने युग से प्रभाव ग्रहण करती, उसे आत्मसात् करती, फिर युग के परिवर्तन के साथ नये अज्ञात प्रभावों को अपने में समेटती और इसी तरह पुष्ट होती साहित्य की धारा आगे बढ़ती रहती है। यह संस्कृत की जीवन्तता का प्रमाण है कि यह अपने युग के भावबोध से प्रभाव ग्रहण करती नये रूपों और आकारों में विकसित हो रही है। आधुनिक भावबोध से सम्बन्धित उपन्यास, कहानी, नाटक, लघुकथा, गीत, गज़ल इत्यादि प्रचुर मात्रा में लिखे जा रहे हैं। नये भावबोध की अभिव्यक्ति के लिए विधाओं के क्षेत्र में भी प्रयोग हो रहे हैं।

तीस से अधिक सर्जनात्मक साहित्य, 2 नाट्य, डायरी व शोध लेखों के लेखक डॉ. हर्षदेव माधव ने नाट्य विधा को समृद्ध किया है। उनके नाट्य आधुनिक संस्कृत साहित्य में अपने रचनाशिल्प एवं भावबोध से अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। हर्षदेव माधव संस्कृत के नवोन्मेष के प्रतीक हैं। हर्षदेव माधव के नाट्य देशकाल की क्षुद्र सीमाओं से परे वैश्विक चेतना का स्पर्श करते हैं। वे अपने नाट्य में व्यापक विषयों को उठाते हैं तथा नवीन प्रयोगशीलता, संवेदनात्मकता तथा विश्लेषणपरकता के साथ प्रस्तुत कर व्यष्टि से समष्टि की यात्रा तय करते हैं। प्राचीन मान्यताओं से जूझकर नवीन मूल्यों को स्थापित करने का स्वप्न आज के साहित्य–सर्जक के लिए खुली चुनौती है। क्योंकि परम्परागत उन्हीं नवरसों, आठ स्थायी भावों एवं तैंतीस व्यभिचारी भावों से नई संवेदना के चित्र खींचना बहुत ही दुष्कर कार्य है। नवसंस्करण को रूपायित करने के लिये उसके शाश्वत् दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन अपेक्षित हैं। लेकिन परम्पराओं से हटकर जब भी किसी साहित्य साधक ने नये

क्षितिज की ओर उड़ान भरी, तब ही उसके पंखों की शक्ति और साहस पर प्रश्नचिह्न लगे हैं। उसकी उन्मुक्त सोच एक ओर परम्परावादियों को काव्यशास्त्र का उल्लंघन प्रतीत होती है और दूसरी ओर नवजिज्ञासुओं के लिए अनसुलझी पहेली बन जाती है। ऐसे में हर्षदेव माधव जैसा लीक तोड़कर चलने वाला कवि आलोचकों की भ्रूभंगिमा से कैसे बच सकता है ?

अपनी साहित्य–साधना से अर्वाचीन संस्कृत–जगत् को स्तब्ध कर देने वाले इस साधक ने विश्वफलक पर अपनी एक पहचान दी है उनका इहलौकिक प्रेम कब सोपान तय करता हुआ परमात्म–चिन्तन में बदल जाता है, इसका अनुमान अन्त तक पाठक नहीं कर पाता। ऐसे चमत्कारिक चिंतन के धनी हर्षदेव माधव ने अपने व्यापक वर्ण्यविषय को चित्रात्मकता इन्द्रियग्राह्यता और साम्य सौन्दर्य से सजाकर अन्य भाषीय साहित्य के मध्य अग्रिम पंक्ति में बैठने का श्रमसाध्य कार्य किया है। विवेच्य अवधि में अपने कवि स्वभाव के अनुरूप माधव ने सर्वथा अस्पृष्ट क्षेत्रों में भी संचरण किया और संस्कृत–काव्य की परम्परा से अपने को जोड़ने का भी पुनः प्रयास किया। आधुनिक संस्कृत–साहित्य की यह महती उपलब्धि है कि हर्षदेव के काव्य देश–विदेश की साहित्यिक पत्रिकाओं में विभिन्न भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर समाहृत हो रहे हैं। इस अवधि में इनकी कविताओं के अनुवाद हिन्दी और अंग्रेजी में ही नहीं, तेलगु, कश्मीरी आदि अन्य भाषाओं में भी छपे। 1998 से 2001 के बीच माधव के "मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति" तथा 'कल्पवृक्ष' नामक नाट्य संग्रह प्रकाशित हुये। माधव ने संस्कृतकाव्योद्यान में एक अभूतपूर्व कल्पवृक्ष रोपा है। आधुनिक संस्कृत–साहित्य में जब भी सार्थक नाट्य की बात चलती है, हर्षदेव माधव के नाट्य रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं उन्होंने प्रायः उन्हीं सामयिक विषयों को उठाया है जो जीवन का कड़वा सच कहते हैं। कभी–कभी कवि माधव की बात इतनी तीखी होती है कि बिना कुछ कहे सीधे हृदय तक अपना असर दिखाती है। वह अभिधा में कुछ नहीं कहते, परन्तु उनके उपमान और उपमेय के बीच इतना अच्छा तालमेल होता है कि पाठक उस व्यंग्य पर मुस्कुरा उठता है। भावव्य×जक चित्र खींचने में कवि की लेखनी बेजोड़ है।

मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति नाटक की समीक्षा

'मृत्युरयंकस्तूरीमृगोऽस्ति' यह नाट्य संकलन डॉ. हर्षदेव माधव का प्रथम नाट्य संग्रह है। यह दो भागों में विभाजित हैं प्रथम भाग **नाट्य संग्रह रूप** द्वितीय भाग–**संस्कृत लेख संग्रह** है लेखक की सात आधुनिक नाटिकाओं और सात आलोचनात्मक निबन्धों का संयुक्त प्रकाशन है। लेखक आज के उन इने–गिने साहित्यकारों में है जो विश्व–साहित्य की नव्यतम सरणियों का अनुसरण करते हुए संस्कृत–साहित्य को नई छवि, नये मूल्य और नयी चेतना से भर रहा है। लेखक स्वयं बताता है कि संस्कृत विश्व–भाषाओं के साथ कदम–से–कदम मिलाते आगे बढ़े, यही उनकी महत्त्वाऽऽकाङ्क्षा है।

इस नाट्य संग्रह के प्रथम विभाग में सात रूपक है तथा दूसरे भाग में आधुनिक संस्कृत साहित्य को अधिकृत करने वाले सात लेख हैं। यथा काव्य रचना याम परिचितेषु क्षेत्रेषु साहसिकोऽयं कविः स×चरति, तथैव रूपक कर्तृत्वेनाप्ययं सर्वथा नवीनामेव सरणिं श्रयते। तस्य रूपकाणि। पाश्र्चात्त्यर›म×चे प्रचलितां विस›तनाट्य शैली प्रकटयन्ति। एतेषां पाठेन न भास कालिदासादीमामपितु सेमुएलबेकेट–प्रभृतीनां स्मरणं जायते।

प्रस्तुत नाट्य संग्रह का नाम तो रखा गया है– **"मृत्यु यह कस्तूरी–मृग है"** पर इस नाम की सार्थकता केवल पाँच नाटिकाओं पर है अन्य किसी रचना पर मृत्यु की छाया नहीं दिखाई देती है। यह नाम बताता है कि इस संग्रह का गौरव उन्हीं पाँच नाटिकाओं पर आश्रित है। जिनमें मृत्युवेश में कस्तूरी–मृग विचरण करता है। मृत्यु को वरण करना नैराश्य की चरम परिणति है। कई चरित्रों (अधिकतर मृतों) की यही नैराश्य भावना और यही चरम परिणति पाँच नाटिकाओं में कवित्वभरी शैली और भावुकता के साथ दिखाई गई है।

पहली नाटिका **"कब्रस्थाने"** यह रूपक मृतपुरूषों का संवाद प्रस्तुत करती है कब्र के भीतर दो प्रेत अपनी–अपनी व्यथा और अपने–अपने जीवन की निःसारता व्यंग्य और वक्रोक्ति की शैली में बतियाते हैं। एक–दूसरे को बताते हैं कि जीवितावस्था में तो सदा उपेक्षित अवहेलित रहे मरने पर उनके उत्तराधिकारी उनके

प्रति पाखण्डी श्रद्धाभक्ति खूब ही दिखाते हैं। उनके चित्रों से कक्ष की दीवारें सँवारते हैं, उनकी मृत्यु शय्या से खाली हुए स्थान पर टेलीविजन स्थापित करते हैं, जो लोग जीवनभर आक्षेप–आलोचना करते रहे, वे समाधि के निकट हमारी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं...। हमारी मृत्युतिथि के समय कुत्तों को मण्डखण्ड देते हैं। कारुणिक समाधियाँ बनवाते हैं, मरूबकगन्ध रोपते हैं। जीवनभर उपालम्भ वचन बोलने वाले अब सांयकाल समाधि पर दीपक करते हैं किन्तु पतङ्का उस दीपक को बुझा देते हैं तब...

"मरूबकगन्धेन सह मिलति धूपधूमः तदा तदा
समाधीनां पाषाणाः दृश्यन्ते... अपि शृणोषि ?"[46]

इसी बीच एक वृद्ध कब्र के पास जगह खोजने आता है और वहीं आत्महत्या कर लेट जाता है और उसकी देह पर ओस की बूँद टपकने लगती हैं। वृद्ध आत्महत्या करने से पूर्व विलाप करता है–

मा उपालंभं देहि। यस्मै नास्ति वर्तमानस्तस्य कृते नास्ति न भविष्यति अनागतलेशोऽपि। यदा कोऽपि प्रवाहेन सह न गन्तुं शक्नोति तदागन्तव्यं तेन तटम्। मम् पिच्छकलाप एतैः कृष्टस्तीक्ष्ण–नखैः... जटायोरपि दयनीयोऽस्मि। अत्र रामस्तु नास्ति... किंतु रामस्य प्रतिछायामपि न दृष्टुं पारयामि। यथा कोऽपि कुक्कुर आस्वादयति अस्थिखण्डं तथैव पश्याम्यहं मम जीवितम्। प्रतिनिवृत्य न गच्छामि।

(वृद्धस्य कण्ठरवः श्रूयते। वृद्धः सचीत्कारं पतति भूमौः।)[47]

ऐसी चीत्कार करता हुआ वह वृद्ध मृत्यु को प्राप्त कर लेता है और उसकी समाधि के पत्थरों पर नीहार बिन्दुओं की वर्षा होती है। अंधकार के श्याम व पाटल पुष्प व पत्ते गिरते हैं।

2. **चिताग्नि : साक्षिरूपो वर्तते** – यह मृत्युरयं कस्तूरी मृगोऽस्ति की दूसरी नाटिका है जिसमें तीन पात्र हैं प्रथमः प्रेतः, द्वितीयः प्रेतः, आसन्न मृत्यु प्राप्ता कन्या।

प्रथम प्रेत व द्वितीय प्रेत दोनों श्मशान में बतियाते हैं। चिता जलती है कङ्कालेषु, भस्मसु, अर्धदग्धकलेवरेषु लुठन्ति वह्नेर्ज्वालार्विलसन्ति, नृत्यन्ति दहन्ति, प्रज्वालयन्ति सर्वमपि।[48]

तभी वर्षा होती है द्वितीय पुरुष को अपनी विधवा याद आती है वह कहता है गतसंवत्सर वर्षाकाल में मेरा विवाह महोत्सव था और इस वर्षाकाल में मृत्यु की करुण परिवेदना है। वर्षाकाल जिसमें मयूर की केका ध्वनि सुनाई देती है जो रमणीय तथा हृदय को प्रसन्न करने वाला होता है वह वर्षाकाल रक्तबिन्दुओं के समान मेघ बिन्दुओं का स्पर्श उष्ण तथा अतिउष्ण प्रतीत होता है। जल भस्म कणों के साथ मिलकर भस्म को बहाता है। गगन के रंगमंच पर विद्युत नृत्य कर रही है। गत वर्षाकाल में मैंने प्रिया को देखा, मेघमाला के नृत्य को देखा तब विद्युत के गिरने को देखकर प्रिया के द्वारा किये गये आलि›न को स्मरण करता हूँ किन्तु अब शमी वृक्ष की शाखाओं के पाश सब ओर है। मेरी प्रियतमा भी तमिस्त्रमलिन क×चुक धारण करके अश्रुबिन्दुओं को गिराती हुई दिनों को बीता रही होगी। हर्षदेव माधव का यह द्वितीय प्रेत भी कालिदास के यक्ष के समान वर्षाकाल में अपनी नई नवेली प्रिया को याद करता है। वह विद्युत वर्ण को देखकर रक्तवर्ण का स्मरण करता है जो गत वर्ष आषाढ के प्रथम दिन कुङ्कुमचूर्ण की रेखा अपनी प्रिया की मांग में भरी थी।

द्वितीय प्रेत प्रथम प्रेत से कहता है–

वयस्य! अपि जानासि त्वं दात्यूहपीडाम् ? स उच्चैर्मुखं कृत्वा नृत्यति, वर्षा बिन्दुं प्राप्तुं चीत्करोति, किन्तु बिन्दुलेशमपि न प्राप्नोति। अहं स दात्यूहोऽस्मि। झिल्लीकर्कशगानं श्रुत्वा क्षुब्धोऽस्मि। अत्रस्थोऽपि मम गृहस्य चन्द्रशालायाः प्रणालीमुखैः पातितानां बिन्दूनां ध्वनि शृणोमि। शुष्कवेणीयुक्तां तव भ्रातृजायामपि चिन्तयामि। वातायनात् प्रविष्ट पवनेन शमितो दीपः, शयनकक्षे छिद्रेभ्यः पतिता वर्षा बिन्दवः, महानसे पक्वोदनसुरभिः, इन्द्रगोप शतैः छन्नं प्रा›णं... उच्छिलीन्ध्रैर् रम्यं भित्यग्रम्... अहो। उन्मूलितं सर्वमपि मृत्युना।

अस्य वटवृक्षस्य पर्णानीव मे दुःखानि ह्यसंख्यानि सन्ति। अत्र न श्वासाः न दिवसाः, न कालः, न कल्पनाः, न पद्यं, न सरः, न शैत्यम्, न मनोरथाः, न सूर्यः, न शुक्ल पक्षाः, न स्पर्शः, न हस्तः, न प्रणयः, केवलो दाहः, चिताग्निज्वालानां दाहः, वासनानां तापः।[49]

वह वि्ेल हो उठता है। इसी समय एक मृत्युकामी कन्या आती है। द्वितीय पुरुष उससे प्रणय–याचना करता है। परन्तु कन्या कहती है कि–

"अहं तु माया वा वञ्चना वा। अहं शमिता दीपशिखा। अहंविवाहिता, कस्यापि वाग्दत्ताप्रियतमा।"[50]

ऐसा कहकर कन्या पीछे हटती है। द्वितीय पुरूष मृत्युकामी कन्या को मनाता है– मृत्यु की ज्वाला में जीवनकाल की सारी भावनाएँ जल जाती हैं, न विवाह रहता है, न प्रणय, न विवाह–विच्छेद।

"विवाह, लग्नम्, लग्नच्छेदः, प्रणयः, प्रेम, पश्चातापः, इत्येते शब्दाः जीवनस्य वर्तन्ते, देहधारिणां वर्तन्ते।

मृत्युस्य महाशब्दो यस्मिन् सर्वे शब्दाः सर्वे चार्थाः विलयं प्राप्नुवन्ति। यथान्धकारे न विहगः, न नीडः, न ग्रामः, न मार्गः, किन्तु सर्वमपि तिमिरमयं भवति तथैव मृत्युरपि सर्वमयो वर्तते, तस्य सर्वत्र सर्वस्मिन् शासनं प्रवर्तते।"[51]

इस प्रकार कन्या प्रणय को स्वीकार कर तथा चिताग्नि को साक्षी मानकर दोनों प्रणय–सूत्र में बंध जाते हैं।

3. **कामला** – यह इस नाट्य संग्रह की तीसरी नाटिका है कामला अर्थात् **पीलिया रोग**। यह एक व्यंग्य रूपक है, जिसे लेखक ने **लीला नाट्य** कहा है। **अत्र सूत्रधारस्य सङ्केतेन दर्शक वर्गादुत्थायोत्थायनवयुवानो नाट्ये सम्मिलिता भवन्ति। शर्मण्यदेशीयनाट्यकर्तूर›कर्मिणो ब्रेख्त महोदयस्य पद्धतिरिह अङ्गीकृता।**[52] लीला नाट्य में वेशसज्जा नहीं होती अपितु पात्र अपने अभिनय से ही अपनी पहचान प्रस्तुत करते हैं। इसमें वेशभूषा के अप्रभावी होने पर भी प्रस्तुति का आकर्षण प्रेक्षक को बांध देता है। ये नाटक नुक्कड़–नाटक भी कहे जा सकते हैं जिनमें अलग–अलग घटनाओं एवं पात्रों को पिरोकर एक प्रतीकात्मक रूपक का सृजन होता है। 'कामला' में मदारी और जमूरे के पारस्परिक संवाद के माध्यम से सम्पूर्ण समाज का चित्र खींचा गया है। 'कामला' नाटक में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिग्दर्शक के

संवादों द्वारा भीड़भरे जनमार्ग पर प्रस्तुत किया गया है।[53] दिग्दर्शक प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, प×चम, षष्ट, सप्तम, अष्टम, नवम ऐसा कहता हुआ नटों को बुलाता है। इस नाटिका में समाज में व्याप्त बुराइयों पर करारा व्यंग्य किया गया है कवि कहता है कि सत्ता के हाथी पर सवार लोगों को सदा सबकुछ हरा–भरा ही दिखाई देता है और वे समझते हैं कि जिन्हें यह हरियाली नहीं दिखाई देती, उन्हें पीलिया रोग है। इस तरह इसमें युग और काल की विविध स्थितियों और गतियों का वर्णन विभिन्न लोगों के भावोद्रेक रूप में नाटकीय ढंग से किया गया है। गंभीर मुद्दो के जनसामान्य के सामने रखा गया है जैसेः–

– ए–आर–अंतुलेमहोदयेन इन्दिरागान्धिप्रतिष्ठान संस्था द्वारा भ्रष्टाचारः कृतः।

– पंजाबे अकालीदलेन बंधारणस्य दहनं कृतम्।

– भीवंडीनगरे सामूहिकाः हत्याः जाताः।

करफ्युग्रस्तं नगरं पुलिसानां रक्षायाम् निक्षिप्तम् अस्ति।

– अंतिमवादिभिः बैंकचौर्यं समुत्पन्नम्।

– काश्मीर–मुक्तिमोरचा–संस्था सभ्येन प्रसिद्ध नेतुः, हत्यायै पत्र प्रेषितम्।

– रामराव आदीकेन विमाने परिचारिकाभिः कामचेष्टा प्रदर्शिता।[54]

इस प्रकार की समस्याओं को कवि द्वारा कामला राग तथा इनको फैलाने वाले को कामला रोगी कहा है। कामला रोगी ही कामला रोग को फैलाते हैं। कवि इस नाटिका में दिग्दर्शक व नटों के माध्यम से आधुनिक काल में सर्वत्र व्याप्त इन बुराईयों की ओर संकेत करता है, पर इसमें कथ्य कुछ स्पष्ट नहीं होता है।

4. **जिगमिषा** – यह इस नाटक की चौथी नाटिका है। इसमें तीन पात्र है।

1. शैलेश
2. यात्रिक – 1 (प्रथमः)
3. यात्रिक – 2 (द्वितीयः)

'जिगमिषा' अर्थात् 'जाने की कामना'। इस नाटिका में जीवन की जड़ यथा स्थितिजन्य पीड़ा से घबराकर तीन पथिक कहीं दूर निकल जाना चाहते हैं। आप पूछियेगा कहाँ जाते हैं तो उत्तर मिलेगा– **भ्रमात् दूरं यामि, मायाया दूरं यामि, कल्पनाया दूरं यामि।**[55] तीनों पथिक शांति की तलाश में कहीं निकल जाना चाहते हैं कहां इसका कुछ पता नहीं है प्रथम यात्री कहता है **यत्र चरणौ मां नयतस्तत्रैव गच्छामि। यत्र मे मनस्तृप्तं भवति तत्रैव निवसामि। यत्र मे हृदयं सुखं प्राप्नोति तत्रैव निषिदामि।**[56]

द्वितीय यात्री अपनी संवेदना इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

हा धिक् ! अहं संशयात्मा जातः। पर्वतशिखरं प्रति, गगन सीमानं प्रति, चम्पक वृक्षं प्रति मयि संशयाः प्ररूढ़ाः। यदा पुरतः पश्यामि तदा पृष्ठे न दृश्यते किमपि, यदा परिवृत्य पश्यामि तदा प्रतिच्छायाऽपि न दृश्यते। किमियं छलना ? कीदृशीयं व×चना ? अयं संशयो मां प×चत्वं गमयिष्यति अप्यस्ति त्वयि काऽपि कामना तत्र गन्तुम् ?[57]

भ्रम से ग्रसित इन यात्रियों को मार्ग नजर नहीं आता बस वे भ्रम से, माया से, कल्पना से दूर जाना चाहते ही पर सांसारिक लोग कहते हैं कि ये तीनों सत्य से भटक कर भ्रम की ओर, माया की ओर और कल्पना की ओर ही जा रहे हैं। कौन जाने वास्तविकता में यह यात्रा भटकाव है या मुक्ति।

'जिगमिषा' इति रूपकमनन्तयात्रायाः साŠतिकीमभिव्यक्तिविदधति।

5. परीक्षा (लीला नाट्यम्)

यह इस नाट्य की पाँचवी नाटिका है जो 'कामला' नाटिका के समान ही लीला नाट्य है। इस रूपक को पात्रों के समूह द्वारा मंच पर प्रदर्शित किया गया है। इस नाटिका में–

(द्वयोः कदम्बयोः चत्वारः प×च वा यूवान सन्ति। यूनां मध्ये युवत्योऽपि भवेयुः। पर्Šतद्वयं रचयित्वा संवादानुसारोऽभिनयः अस्ति। कदम्बाभ्यां वयं 'अ' 'ब' अभिधाने दद्मः।)

इस नाटिका में 'अ' कदम्ब सभा तथा 'ब' कदम्ब सभा के पात्रों के माध्यम से आज की शिक्षा–प्रणाली में व्याप्त परीक्षा–सम्बन्धी विकृतियों का हल्के प्रहसन की शैली में मजाक उड़ाया गया है। कुछ म›ल–वाक्यों/भरत वाक्यों से ही इस नाटिका का हल्कापन प्रकट हो जाता है–

तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विभेमि कदाचन...[58]

(तेजस्वी हो मेरा पढ़ना, नहीं किसी से डरना, वैदिक मन्त्र की पैरोडी)

वैष्णव जनस्तु स कथनीयः

पीडां परीक्षाया यो जानाति...

– हम् !

परदुःखे ह्युपकारं कृत्वा

'Copy' दातुं यो व्यस्तः रे...

– Copy ददाति साफल्यम् Copy लंघयते गिरिम्।

Copy करणं अस्माकं जन्म सिद्धाऽधिकारोऽस्ति।[59]

इस प्रकार पैरोडी शैली में शिक्षा–व्यवस्था की बुराइयों को दर्शाया है। परीक्षा–प्रणाली के विषय को लेकर 'अ'–'ब' कदम्ब सभा संवादों की रचना करते हैं–

– परीक्षा वंध्याऽस्ति

– परीक्षा जनिष्यति मांसपिण्डमयान् कौरवान्

– परीक्षा निःसत्त्वाऽस्ति।

– परीक्षा गुणपत्रकाणि प्रदास्यति।

– गुणपत्रकाणि पूतीलूतादीनां भोजनं भविष्यन्ति

– परीक्षा गान्धारीकल्पाऽस्ति।

– सा सत्यं दृष्टुम् इच्छन्त्यपि न पश्यति।

– परीक्षा पा×चाली कल्पाऽस्ति

– भ्रष्टाचारोत्कोचपक्षपातैः कर्षितानि तस्या वस्त्राणि...।

– परीक्षा ज्ञानस्य प्रपा नास्ति।

– परीक्षा व×चनाया मदिरागृहमस्ति।

– परीक्षा कूपोऽस्ति।

– परीक्षा तेजस्वितायै पाशोऽस्ति

– परीक्षा गुणाङ्क हट्टोऽस्ति

– परीक्षा कामासक्ता–नारी अस्ति

– परीक्षा सुगन्धविरहितं पुष्पमस्ति।

– परीक्षा कुमाताऽस्ति।

अधुना भरतवाक्यं परीक्षायै–

– हे परीक्षे ! क्षमस्व क्षमस्व।

– नागिनीव शिशुकान् मा खादतु।

– अस्मान् शीघ्र मु×च।

– कृत्येव मा दृष्टिपातं कुरु।

– शाकिनीव मा देहि दर्शनम्।

– वृषलीव मा अस्मान् भ्रष्टान् कुरु।

– विद्युदीव मा स्पृश।

– राहुच्छायेव मा पत अस्मद्गात्रेषु।[60]

हे परीक्षा–देवी, क्षमा करो, राहु की छाया की तरह हमारे तन–मन पर मत आ पड़ो। इस प्रकार कवि ने इस नाटक के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों पर करारा व्यंग्य किया है तथा आज के युवा पीढ़ी की समस्याओं तथा पीड़ा से समाज को अवगत कराया है। कवि आज के युवा की परीक्षा सम्बन्धी व्यथा को व्यक्त करता है तथा चुटीली शैली में गंभीर समस्याको समाज पटल पर रखता है।

6. मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति

यह इस नाटक की छठीं नाटिका है और इस नाटिका के नाम पर ही इस सम्पूर्ण नाटक का नाम 'मृत्युरयंकस्तूरीमृगोस्ति' रखा गया है। इसमें चार पात्र हैं– भिक्षुकः/राजपुत्रः/प्रमत्तकः/रक्षकौ इसमें भी मृत्यु का वरण वर्णित है। मृत्यु एक कस्तूरी मृग है जिसके सौरभ में सारी सांसारिक वेदनाएँ लीन–विलीन हो जाती है यही इस नाटिका का तथा इस संग्रह की और चार नाटिकाओं का भी दर्शन है।61

एक भिखारी, एक पागल और एक राजकुमार तीनों मृत्यु कामी हैं। तीनों के लिये यह संसार व्यर्थ है। सांसारिक माया–मोह है इसलिए तीनों व्यक्तियों को मृत्यु वरण की कामना है। भिक्षुक कहता है–

श्रान्तोऽस्ति संसार मायया जीवोऽयम्। संसार माया जीवानेवमेव भ्रामयति, सर्वमूढान् वशीकरोति। मह्यं रोचते मृत्युः, किन्तु जीवनं त्यक्तुं नास्ति वीरता। प×चत्वं गन्तुं नास्ति साहसम्। म्रियेय किन्तु अहमेकाकी मर्तुं न कामये। द्वितीयो न कोऽपि मे सहयात्री।[62]

प्रमत्तक अपनी व्यथा इस प्रकार कहता है–

अहमपि जीवितत्यागतत्परः किन्तु कोऽपि मार्गं न दर्शयति। कोऽपि वदति मरणं सहसैवागच्छतीति। कोऽपि वदति मृत्युं बलात्कारेण प्राणिन आत्मानं नयति। कोऽपि मन्यते यन्निद्रावस्थासमो मृत्युस्त्रस्तमनुष्यं स्वापयतीति। अहं रोदिमि तदा सर्वे हसन्ति। सर्वे रुदन्ति तदा विहसाम्यहम् अहं अट्टहास्यं करोमि तदा मां प्रमत्तकं मत्त्वा सर्वे साक्रोशं तिरस्कुर्वन्ति।

अहं गीतं गातुं करोमि तदा ते गालीदानं कुर्वन्ति।

अहं नृत्यामि तदा ते कदलीत्वचं क्षिपान्ति।

अहं कि×चिद् भाषे तदा ते यष्टि प्रहारं कृत्वा क्रुध्यन्ति।[63]

राजपुत्र भी अपनी पीड़ा को इस प्रकार कहता है–

पाषाणमयोऽयं प्रासादः। पाषाणमय रक्षकाः। राजाज्ञानिर्घृणः पिता।

वातायनमितं विश्वम्। प्रासादमितं जीवनम्। महालयमितं सुखम्।

सेवकैरानीतं भोजनं विषं वामृतं वेति न जाने। उद्यानपालकेन मे कक्षे म्लान पुष्पाणिम्यस्तानि। किमेतज्जीवनं नाम ? कोऽपि राज्ञः शासनमतिक्रम्य मृत्युमानयेत्... चेत्...[64]

समाप्त कर मृत्यु को प्राप्त करना चाहते हैं और जीवन के प्रति अपनी पीड़ा को उपर्युक्त प्रकार से व्यक्त करते हैं भिखारी, पागल, राजकुमार ये सब अपने

जीवन को अन्त में भिखारी के पास एक फूल है जिसे सूँघकर तीनों अपनी कामना पूरी करते हैं और मृत्यु को प्राप्त कर लेते हैं।

7. नवं जन्म, नवानि कर्माणि, नवं फलम् –

यह इस नाट्य की अंतिम व सातवीं नाटिका है। इसमें दो पात्र हैं।

(अ) स्वर्गात् पलायितः मानवः

(ब) रकाद् विसृष्टो मानवः

स्वर्गनरकद्वाररक्षक

इस नाटिका में स्वर्ग से भागे एक आदमी की नरक से भागे एक आदमी से भेंट हो जाती है। दोनों अपना–अपना दुखड़ा एक दूसरे को सुनाते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानव कहीं भी रहे मानव ही रहेगा–न स्वर्ग में देव होगा, न नरक में दानव।[65] मनुष्य मनुष्य ही रहेगा वह कहीं भी खुश नहीं रह सकता। इस नाटिका का 'अ' पात्र स्वर्ग से पलायन करके आता है जहाँ हर एक सुख की प्राप्ति होती है जहाँ जाने के लिए ऋषि–मुनि आदि भी घोर तपस्या करते हैं। उस स्वर्ग से वह स्वयं भाग आता है और अपना दुःख सुनाता है। इसी प्रकार नरक से भागा व्यक्ति भी अपनी व्यथा को व्यक्त करता है। अर्थात् यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि मनुष्य कहीं भी संतुष्ट नहीं रह सकता न स्वर्ग में न नरक में।

अन्त में दोनों पृथ्वी को अन्तरिक्ष में गेंद की भांति तैरते देखते हैं और वहीं नया जन्म पाने के लिए उतर आते हैं। इसका संदेश है सुख का लोभ और दुःख का भय त्याग कर मानव को अपने जीवन का सामना करना चाहिये। यही जीवन की सार्थकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णित सातों नाटिकाओं में से पहली, दूसरी, चौथी और छठी नाटिकाएँ एक ही भाव–भूमि पर खड़ी है। संसार या समाज हर व्यक्ति को पालतू पशु की भाँति नकेल पकड़ कर एक ही निश्चित घिसी–पिटी पग–डंडी पर चलाना चाहता है। कोई–कोई असाधारण चेतना वाला मानव उस दर्दनाक बन्धन से मुक्ति चाहता है और अक्सर वह इस मुक्ति का सुलभ साधन मृत्यु को ही समझ लेता है।

ऐसे मानव की बुद्धि परम्परामान्य तर्कों, विश्वासों और आस्थाओं से दूर हो जाती है। उसके चिन्तन और आचरण दोनों में सांसारिक लोगों को विचित्र विचित्रविस›fत दीखती है। चारों नाटिकाओं में ऐसी विस›तियाँ कदम–कदम पर दिखाई गई है। अतः इन्हें समुएल बेकेटे, इब्सन, मिलर आदि द्वारा प्रवर्तित ऐब्सर्ड ड्रामा या विस›fतरूपक की कोटि में रख सकते हैं।[66] साथ ही स्वच्छन्दता उसके लिये मुक्ति और चरम मुक्ति के मृत्यु तक का आलि›न किया गया है, अतः इनकी दार्शनिक भित्ति वह है जो कोर्कगार्ड, सार्त्र, हीडेगर आदि द्वारा स्थापित हुई थी और अस्तित्ववाद के नाम से प्रसिद्ध है, पलायनवाद भी इसमें स्पष्ट है। इन परम्पराओं से अपरिचित पारम्परिक पण्डितों को स्वभावतः ये नाटिकाएँ कुछ अटपटी–सी लगेंगी।

सातों नाटिकाओं में विशेषतः चार विस›ति–नाटिकाओं में प्रस्तुति और अभिव्यक्ति की शैली विचित्र–सी है। सारा संवाद प्रतीकोक्ति, विपरीतोक्ति, परस्पर विरुद्धोक्ति, वक्रोक्ति, अत्युक्ति और उन्मादी आवेश से भरा है। फलतः ये नाटिकाएँ नाटक के गुणधर्मों को गँवा या दबाकर शुद्ध अर्थ में कविता बन गई है। यह कहना कुछ अप्रिय सत्य होगा कि लेखक भले ही नाटक लिख लें, पर उनकी लेखनी जाने–अनजाने कविता की ओर मुड़ जाती है। द्वन्द्व, औत्सुक्य, रहस्य, विस्मय, क्रियाशीलन, चाक्षुषीकरण आदि जो नाटक के अपेक्षित तत्त्व हैं, इनमें बहुत कम मिलते हैं। म×चन की दृष्टि से 'कामला', 'परीक्षा' दो ही श्रव्य–दृश्य वर्ग की है शेष सभी केवल श्रव्य–वर्ग में आती है और खासकर रेडियों प्रसारण के लिये लिखी गई सी लगती है।

कल्पवृक्ष

'क्रान्तिकारी' नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा वाले इस लेखक का यह दूसरा नाट्यसंग्रह है। 'कल्पवृक्ष' के द्वारा माधव ने संस्कृतकाव्योद्यान में एक अभूत पूर्व कल्पवृक्ष रोपा है। इस तरह हम अपनी संस्कृति के मिथकों को नयी अर्थवत्ता देने में समर्थ हों तो अपार संभावनाएँ सामने आयेंगी। प्रस्तुत नाटकों में गंभीर चिंतन का आकाश भी दृष्टिगोचर होता है। इसमें 'कल्पवृक्षः' शीर्षक से पाँच रूपक हैं और 'कामधेनु' तथा 'वर्तमान' ये दो अन्य रूपक भी सम्मिलित हैं। कल्पवृक्ष के मिथक का

इतना सटीक प्रयोग आधुनिक रचनाओं में कदाचित् ही किसी ने किया हो। 'कल्पवृक्षः' शीर्षक पाँचों एकांकी रूपक कल्पवृक्ष के प्रतीक के द्वारा वर्तमानकालिक विस›ति, भारतीय प्रज्ञा और सनातन जीवन दृष्टि को उद्घाटित करते हैं। 'कल्पवृक्ष' वह दुर्लभ लक्ष्य और जीवन का परम सत्य है, आधुनिक सभ्यता जिससे दूर हटती जा रही है। नूतननाट्यविधान और नवीन र›परिकल्पना के कारण भी ये रूपक महत्त्वपूर्ण है। कल्पवृक्ष–1 तो 10–12 शहरों में अनेक बार खेला भी गया है। इन रूपकों में दार्शनिक अवबोध, चिन्तन तथा क्रान्तदर्शिनी प्रज्ञा हम पाते हैं।

'कल्पवृक्ष' नाटक लीला–नाट्य श्रेणी के हैं यद्यपि नवीनता की उत्कट अभिलाषा ने इनमें रसानुभूति के 'ब्रेकर' भी बना दिये हैं। परन्तु सर्वथा नवीन करने का जुनून माधव के समस्त साहित्य में बिखरा हुआ है। एक ही कथावस्तु को लेकर लिखे गये पाँच नाटक की श्रृंखला वाला 'कल्पवृक्ष' नाटक निश्चित रूप से एक अनूठा प्रयोग है। इसका पात्र मनसुख मनोभाव का प्रतीक है, अन्य पात्रों के नाम क्षः, यः, पुरुषः, प्रथमा, तृतीया, मनुष्यः, कन्याः, सत्यः, संकल्पः, धर्मः आदि हैं जिनको पढ़कर ही नाटक की अर्वाचीनता का बोध किया जा सकता है। इसके अन्तिम नाटक में दहेज–प्रथा, भ्रूण–हत्या जैसे विषयों को उठाया गया है। भाषा एवं संवाद नितान्त युगानुरूप है। पुत्री उत्पन्न करने वाली भार्या के प्रति पति की यह उक्ति–**'एषा रण्डा न पुत्रमपि प्रसूते'**।[67] आधुनिक समाज में स्त्री की दुर्दशा को इंगित करती है। अतः माधव सत्य कहते हैं कि–

> **"यत्र नार्यस्तु दह्यन्ते रमन्ते तत्र राक्षसाः।**
> **यत्र होताश्च पीडयन्ते, नृत्यन्ति तत्र दानवाः।"**[68]

लेखक डॉ. हर्षदेव माधव आज के उन इने–गिने साहित्यकारों में से है जो विश्वसाहित्य की नव्यतम सरणियों का अनुसरण करते हुए संस्कृत साहित्य को नयी छवि, नये मूल्य और नयी चेतना से भर रहा है।[69]

कल्पवृक्ष–1 में तीन पात्र है 1. क्षः, 2. यः, 3. पुरुषः। एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर एक पुरुष बैठे हुए हैं जिनके नेत्र बंद हैं उनके चारों ओर वर्तुलाकार में वृक्ष दिखाई दे रहे हैं। वर्तुलाकार के बाहर क्ष और य दिखाई दे रहे हैं। नेपथ्य में मन्द स्वर में श्लोक गाया जाता है–

"यथा दीपो निवातस्थो ने›ते सोपमा स्मृता।

योगिनो यतचित्तस्य यु×जतो योगमात्मनः।।"[70]

क्ष और य दौड़ते हुये वर्तुलाकार में प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु निष्फल होकर बैठ जाते हैं दोनों वार्तालाप करते हैं।

यः – किमर्थं कल्प्यतेऽयं कल्पवृक्षः?

क्षः – कल्पितानि सर्ववस्तुनि यस्मात् मिलन्ति स कल्पवृक्षः। योददाति सर्वान् मनः सङ्ल्पितान् पदार्थान् असावेवास्ति कल्पवृक्षः।

यः – अहं सिद्धिं याचिष्ये।

क्षः – अहा हा हा! सुखासनानि, रेडियो–टेलिविजनवातानुकूलितानि सुखदानि उपकरणानि......।[71]

इस प्रकार वार्ता करते हुए कल्प वृक्ष के नीचे ध्यानमुद्रा में बैठे हुये पुरुष से पूछते हैं आपने इस वृक्ष के नीचे क्या प्राप्त किया। हे महापुरुष आपने भवन, वाहन, सुन्दरी, दीर्घायु, पुत्र–पौत्र आदि सुख, ऐश्वर्य सब कुछ प्राप्त कर लिया होगा। पुरुष कहते हैं मुझे किसी चीज की कामना नहीं सब कुछ व्यर्थ है सब प्रकार का सुख ध्यानावस्था में ही प्राप्त होता है। यः कहता है हे महात्मन्!

"त्वमेव रक्षकस्त्राता, त्वमेव पालको ह्रतः।

अभयं देहि हे भ्रातः! सुखं शान्तिं प्रयच्छ नः।।"[72]

कल्पवृक्ष–2 मनसुख तथा प्रतिच्छाया पात्र रूप में है। प्रतिच्छाया प्रथम, द्वितीय, तृतीय है। मनः मनोभाव का प्रतीक है। मनसुख कल्पवृक्ष को ढूंढने के लिये कठिन व दुर्गम रास्ते में जाता है। प्रथमा प्रतिच्छाया मार्ग की कठिनाइयों को कष्टों को बताता है कि वहाँ से कोई भी वापस लौटकर नहीं आया है। मनःसुख दृढ़संकल्पित होकर आगे बढ़ता है। मृत्यु का भय उसके मार्ग की बाधा नहीं है। समय परिवर्तन सूचक स›ीत के साथ द्वितीया प्रतिच्छाया मनसुख को वापस लौटने को कहती है क्योंकि तुम अब एक कदम भी चलने में समर्थ नहीं हो परन्तु मनसुख कहता है– **'अहं श्रान्तः नास्मि पराजितः।' ध्येयप्राप्तिं विना कथं नु विश्रान्तिः?**[73] आगे

तृतीया प्रतिच्छाया मनसुख को रोकती है भ्रातः। **अपि प्रतिनिवर्तनेप्रीतिरहित न वा? तव नेत्रे घनतिमिरग्रस्ते स्तः।**[74]

मनसुख कहता है–**अद्यापि मयि विजिगीषा जीवति। मम नेत्रतिमिरं दूरं भविष्यति नतांसयोरश्वशक्तिं प्रादुर्भविष्यति। चरणयोः पक्षौ जनिष्येते।**[75]

अंत में मनःसुख कल्पवृक्ष के नीचे होता है। एक ध्वनि सुनाई पड़ती है–**अप्यस्ति काऽपि मनीषा?**

मनःसुखः–अन्तिमा मनीषा म आसीद् गण्डूषजलं लब्धुम्। तत् तु मिलितमेव। शरीरमिता भूमिस्तु प्राप्स्ये कुत्रापि। भवद्भिर्मे कल्याणं कृतं यन्मरणासन्ते मयि जलं दत्वा सुखं प्रदत्तम्। अधुना तृषातुरो न मरिष्यामि।

ध्वनिः – किं ते प्रियं करोमि

मनःसुखः – अलं दयया। अतः परं किमपि नास्ति प्रियम्। अहं तु श्रान्तः। दीर्घा निद्रां कामये। दीर्घा निद्रा, यस्यां न कश्चिद् विघ्नो भवेत्। सुखं शयितुमिच्छामि चिरम्।[76]

इस प्रकार डॉ. हर्षदेव के पात्र मनःसुखः को मन का सुख कल्पवृक्ष के नीचे दीर्घनिद्रा प्राप्त करके मिलता है। डॉ. माधव ने अपने पात्र के माध्यम से यह संदेश दिया है कि दृढ़संकल्प होकर मार्ग में आने वाली बाधाओं को पार किया जा सकता है। कल्पवृक्ष जो सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। उसके नीचे प्राप्त होने वाला शीतल जल और चिरकाल की थकान को मिटाने वाली विघ्नरहित सुखपूर्वक सोने की इच्छा ही सम्पूर्ण सुख है।

कल्पवृक्ष–3 में एक मनुष्य र›म×चम् आगत्य दन्तधावनं कुर्वन् तिष्ठति। यह एक मनुष्य की इच्छाओं का हास्यास्प्रद नाटक है। इसमें लेखक ने अपनी प्रतिभा का सम्पूर्ण प्रयोग किया है। लेखक साधारण से विषय से नाटक को प्रारम्भ करके अन्त में हास्य तक पहुँचा देते हैं। लेखक ने साधारण कथावस्तु को साधारण से पात्रों के माध्यम से प्रारम्भ किया है। लेखक के पात्र सामान्य मनुष्य, वर्तमानपत्रवितरक (समाचारपत्र वितरक), सेवक, कन्या।

मनुष्य दन्तकूर्च की शाखा को प्राप्त करने के लिये वृक्ष को प्राग› में ही लगवाने की कहता है ताकि भित्ति उलांघकर जाने का श्रम ना हो। सुबह के साढ़े सात बजे वह मनुष्य द्विचक्रिकाया पर आये हुये वर्तमान पत्र वितरक से पड़ौसियों का पत्र ले लेता है। सेवक द्वारा लाई हुई एलालवङ्ग की चाय का पान करता है व कहता है—**मया तु विना मूल्यं काङ्क्षितमेतत्। ममैव भाग्यं सन्मार्गे वर्तते। फलकेन सह काऽपि रमणीया सखि— 'गर्लफ्रेन्ड' भवेच्चेत्....कालम् अतिवाहयामि स्वर्ग सुखमनुभवन्।**[77]

मनुष्य कन्या के साथ शतरंज क्रीड़ा करता है हास्यास्प्रद वार्तालाप करता है। कन्या के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है। यह सब घटनाक्रम बेहद हास्याजनक बन जाता है। अन्त में मनुष्य कहता है—

अयं वृक्ष एव सर्वविपदामूलम्। अनेन हतं मे सर्वस्वम्। उन्मूलितोभवेद् अयं वृक्षः। सुखी भवेयम्। सर्वदुःखानि प्ररूढानि वृक्षेणानेन सह। (वृक्षः समूलो निपतति...... मनुष्य तस्य स्कन्धस्य नीचैरागत्य विष्ट देहश्चीत्करोति।)[78]

कल्पवृक्षः—4 में 3 दृश्य है। दृश्य 1 में वृक्ष है पत्तों का स्पन्दन है पक्षियों का कुहूकार है। छायाचित्रग्राहक वृक्ष के स्थान पर दीप और दीप के स्थान पर वृक्ष की आकृति बनाता है। इस प्रकार दृश्य 2 व 3 की भिन्न—2 कथावस्तु है लेखक ने उक्त नाटकों में कल्पवृक्ष की महत्ता को दर्शाया है। लेखक ने एक प्रमत्त पागल के माध्यम से भी समाज व पाठक वर्ग को शिक्षा—प्रदान की है बढ़ती जनसंख्या जैसे गंभीर विषय का निदान बताया है।

कल्पवृक्ष—5 — डॉ. हर्षदेव माधव ने छोटे—छोटे अलग—अलग दृश्यों के माध्यम से कल्पवृक्ष अर्थात् वृक्षों के महत्त्व को दर्शाया है। नेपथ्य में मन्दस्वर में गाया जाता है—

कल्पवृक्षाय विद्महे।
देवद्रुमाय धीमहि।
तन्नो द्रुमः प्रचोदयात्।।
नन्दने कानने रम्यं, कामदं सर्वदायकम्।
सुरतरुं कल्पवृक्षं तम् आह्वयेऽयं परं शुभम्।।

स्वर्गस्य भूषणं दिव्यं, स्वर्गामृतरसप्रदम्।
अपूर्वश्रीसमायुक्तं ध्यायेद् वृक्षं सुखावहम्।।
पुष्टिदं तुष्टिदं भव्यं स्वर्गशोभाविवर्धनम्।
रम्यं रम्यगुणोपेतं देववृक्षम् उपास्महे।।[79]

सभी वृक्ष के चारों ओर यथा योग्य अभिनय करते हैं। पितामह वृक्ष के नीचे वृद्धावस्थायापन करना चाहते हैं। पथिक वृक्ष के नीचे विश्राम कर थकान मिटाना चाहता है। बालक खेलना चाहते हैं। श्रमिक स्त्री मध्याह्नकाल की थकान दूर करना चाहती है। शिशु को झूला झूलाना चाहती है। पत्रवितरक वृक्ष के नीचे बैठ पत्र बांटता है। शिक्षक बालकों को शिक्षा देता है। भिक्षुक कहता है–

संसार तापाः सकला निराकृताः
पुण्येन प्राप्तं मधुरं फलं नु।
स्थैर्यम् अवाप्तं च नभोऽपि स्पृष्टं
वृक्षस्य रूपं ममजीवितं हि।।[80]

सोभाग्य चाहने वाली स्त्रियाँ वृक्ष को देवता मानकर वटसावित्री का व्रत करती है। कोई वृक्ष की शाखा से घर के द्वार, वातायन बनाना चाहता, कोई क्रिकेट का बल्ला बनाना चाहता है। परन्तु कोई भी जलसेचन नहीं करना चाहता है सब कहते हैं हम व्यस्त हैं कोई भी मलिन दुर्गन्धयुक्त गोबर को खाद रूप में वृक्ष में नहीं डालना चाहता। लेखक इस कथानक से स्वार्थमय संसार का वर्णन करता है आज का मनुष्य प्रकृति का अनियमित दोहन कर रहा है पर प्रकृति के लिए कुछ नहीं करना चाहता है। सिर्फ और सिर्फ अपने स्वार्थ को पूरा करने में लगा है उसे न वर्तमान की चिन्ता है न भविष्य की।

अगले दृश्य में कुटुम्बसभा में सास, ससुर व बहु है। इस दृश्य से लेखक दहेज जैसी कुरीति से समाज को अवगत कराता है। दहेज के लिये हत्या एक भीषण समस्या है जो हमारे समाज में विकराल रूप लेती जा रही है। जहाँ पति स्वयं अपनी ही जीवन स›िनी को आग में झौंक देता है। लेखक कहता है–

"यत्र नार्यस्तु दह्यन्ते, रमन्ते तत्र राक्षसाः।
यत्र ह्योताश्च पीडयन्ते, नृत्यन्ति तत्र दानवाः।।

रुदन्ति यत्र नार्यों हा! हसन्ति तत्र प्राणिनः।
कस्माद् वहति ग›ायं, कस्मात् स्थितो हिमालयः?"[81]

लेखक समाज में फेली दो कुरीतियों एक दहेज प्रथा दूसरी सतीप्रथा की भीषणता को बताता है लेखक इंगित करता है कि एक तो दहेजप्रथा है जिसमें पति दहेज के लिये अपनी पत्नी को आग के हवाले कर देता है और दूसरी सतीप्रथा है जिसमें पत्नी अपने पति के मरने पर जिंदा अपने आपको आग के हवाले कर देती है।

परवशत्वमलप्रतिदूषिता
यमगृहं गमितुं च विभूषिता
असति सत्यनयक्रमविक्रमे
सपदि मानवता क्रियते 'सती'।[82]

अगले दृश्य में कल्पवृक्ष शाखा काटने का नाटक किया जाता है। कल्पवृक्ष को काट–काटकर मनुष्य भूखे के समान इस पृथ्वी को लूट रहा है। अब न वर्षा होगी, प्रदूषण बढ़ेगा, रोग होंगे, औषिधियाँ नहीं मिलेंगी। सम्पूर्ण पृथ्वी के शुष्क व सारहीन होने धर्म धरातल से चला गया, भाषा संस्कृति विनष्ट हो गई, धरातल पर पशुता फैल गई है, पशुओं की घास भी लालची लोकनेताओं ने खाली है। सत्य, नीति, धर्म जैसे शब्द शब्दकोश से विस्मृत हो गये। हम कल्पवृक्ष को नष्ट कर रहे हैं। कल्पवृक्ष को काटकर हम मृत्यु को निमन्त्रित कर रहे है। अब हमें कोई नहीं बचा सकता। अब सिर्फ सर्वनाश ही सर्वनाश है।

कामधेनु – कल्पवृक्ष के पाँच नाटकों के पश्चात् छठा कामधेनुः नाटक है इसमें पाँच पात्र हैं–

सत्यः – प×चविंशतिवर्षीयोयुवा तपस्वी, अनावृतं वक्षःस्थलं यज्ञोपवीतेन शोभते।

धर्मः – दीर्घा जटा, पादयोः काष्ठपादुके।

संकल्पः – कमण्डलुहस्तः, मन्दहास्ययुक्तंवदनम्।

रामः – गले रुद्राक्ष माला।

शान्तिः – श्वेत वस्त्रावृता तपस्विनी, कर्णयोः कुवलये शोभेते। माता कामधेनुः

इस नाटक में सत्य, धर्म, संकल्प, शम और शान्ति ये पाँच पात्र यज्ञ के विषय में वार्तालाप करते हैं। इसमें तीन दृश्य मंच पर दिखाये जाते है। यह आध्यात्मिक नाटक है जिसमें मानव कल्याणार्थ यज्ञ की चर्चा है। लेखक समस्त कामनाओं की जननी कामधेनु–मृत्युस्तु सांख्यस्यप्रकृतेस्तिरोभाव एवासीत्। कामधेनुः प्रकृतेर्मायामयं रूपं भूत्वाऽऽगता। सा पुरुषभोगापवर्गसिद्धये, वासनारुपिणी, संस्काररूपिणी, संसृतिरूपिणी साक्षादासीत्। भवतां सूक्ष्मातिसूक्ष्मानि कर्मफलान्यपि नष्टानि। दिष्ट्या भवतां तीव्रे तपसि सञ्चिताः कर्मसंस्कारा अपि भस्मसात् जाताः।[83]

वर्तमानः – यह इस नाटक का अन्तिम व सातवां भाग है। इसमें चार पात्र है (1) रामशरणः (2) डॉ. खन्ना (3) स्त्री (4) वृद्ध

इस नाटक में डॉ. खन्ना बहुत बड़ा वैज्ञानिक है जो विज्ञान और अपनी प्रयोगशाला इत्यादि से अत्यधिक प्रेम करता है। उसे वैज्ञानिक प्रयोगों पर अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं। वह ऐसे यंत्र का निर्माण करना चाहते हैं जिसे मनुष्य वर्तमानेन सह भवितव्यं भूतं अनुभविष्यति।

दृश्य परिवर्तित होता है व डॉ. खन्ना की पूर्वप्रेमिका का रं›मंच पर प्रवेश होता है वह कहती है–**अनेन यन्त्रेण भूतकालस्य मलिनस्थानानि वीक्ष्य, दुर्घटनां किं निवारयितुं शक्ष्यति त्वम्? वर्तमानं विस्मृत्य भूतकालं सजीवनं कर्तुम् इच्छसि? अनागतं ज्ञातुम्। इच्छसि? वर्तमानं पश्य। वर्तमानस्तु 'अतीत' इत्याख्यास्य अत्याहितस्यपश्चाद् भग्नं वाहनम्–यदि मनुष्यः स्मरेत् चेद् अतीतं तर्हि पङ्गुवत् स निपतेत्।**

अन्त में डॉ. खन्ना स्वयं कहते है– "प्रतिनिवर्ते.........बत.....हन्त! मया दुःस्वप्नद्वयं दृष्टम्......मनुष्यस्य समीपे वर्तमानाद्वरं न किश्चिद् आश्वासनं जीवितुम्। मया वृथैव यन्त्रमेतत् निर्मितम्..........। भूतकालः पीडाकारको वर्तते। सर्वेभ्यः भवितव्यं निर्घृणां वास्तविकतां दर्शयति केवलं वर्तमानाः आशीः। मनुष्यं जीवयति खलु....... हन्तु।"[84]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते है डॉ. हर्षदेव माधव ने इस छोटे से कल्पवृक्ष नाटक के माध्यम से समाज को बहुत बड़ा संदेश देने का प्रयास किया है जिसमें डॉ. माधव बहुत हद तक सफल भी हुये है। कल्पवृक्ष नाटक के प्रथम पाँच भागों में डॉ. माधव ने वृक्ष को कल्पवृक्ष कहकर सम्बोधित किया है तथा वृक्षों को समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला बताया है जिस प्रकार स्वर्ग में प्राप्य कल्पवृक्ष देवताओं की समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला होता है उसी प्रकार इस पृथ्वीलोक पर यह वृक्ष ही कल्पवृक्ष है जिसकी रक्षा व पालन–पोषण समस्त मानव जाति का नैतिक कर्त्तव्य है जब मनुष्य इसका रक्षण व पोषण करेगा तब ही वह मनुष्य की सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति करेगा अन्यथा सब ओर सर्वनाश ही सर्वनाश होगा।

लेखक कहता है कि बुद्ध को भी बुद्धत्व की प्राप्ति वृक्ष के नीचे ही हुई है। प्रस्तुत नाटक में लेखक द्वारा गंभीर चिंतन का आकाश प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत संग्रह में 'कल्पवृक्ष' के मिथक द्वारा प्रस्तुत प×च नाटकों की श्रेणी का एक नया प्रयोग प्रस्तुत किया है जिससे हम अपनी संस्कृति के मिथकों को नई अर्थवत्ता देने में समर्थ हो पायेगें। हमें पूर्णविश्वास है कि लेखक के नवीन प्रयोगों से हम विश्व–साहित्य जगत् में नवीन ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकेंगे।

❖❖❖

संदर्भ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. उमाशंकर 'ऋषि', पृ.–575
2. काव्यालंकारसूत्रम्–वामन, 1/3/30
3. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि, 6/3
4. मालविकाग्निमित्र–कालिदास 1/4
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त–मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पृ.–331
6. काव्य मीमांसा–राजशेखर, द्वितीय अध्याय, पृ.–12
7. वही, पृ.–10
8. भारतीय साहित्य शास्त्र–बलदेव उपाध्याय, द्वि. भाग, पृ.–457, 460
9. कठोपनिषद् 1/2/2
10. "सकलप्रयोजनमौलिभूतंसमनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतंविगलित–वेद्यान्तर–मानन्दम्।" – काव्यप्रकाश 1/2 की वृत्ति तथा–
    "नियतिकृत नियमरहितामाह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
    नवरसरुचिरां निर्मितिमादधतीभारतीकवेर्जयति।।" –काव्यप्रकाश 1/1
11. साहित्यदर्पण–आचार्यविश्वनाथ 6/298
12. व्यक्तिविवेक–प्रथम विमर्श, पृ.–96
13. सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्विचित्रं चित्रपटवद्विशेष साकल्यात्।
    ततोऽन्यभेदक्लिप्तिः, ततो दशरूपकादन्येवां भेदानांक्लिप्तिः कल्पनमिति।
    दशरूपकस्य हि इदं सर्वं विलासितं, यदुतकथाख्यायिका महाकाव्यमिति।
    का.सू.वृ. 1/3/30–32
14. मालविकाग्निमित्र–महाकवि कालिदास–1/4
15. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि, 1/4
16. वही, 1/1
17. वही, 1/25
18. नाट्यशास्त्र भरतमुनि, 1/27

19. संस्कृतसाहित्य का इतिहास–मेक्डॉनल (अनु, डॉ. रामसागर त्रिपाठी), पृ. –331–332
20. रिजवे–ड्रामा एण्ड ड्रेमेटिक डान्सेज ऑफ नान योरोपियन रेसेज
21. संस्कृत ड्रामा–डॉ. कीथ, पृ.–38
22. डॉ. स्टेनकोनो–दास इण्डिश ड्रामा
23. आन दि आर्ट ऑफ पोयट्री : अरस्तू, पृ.–35
24. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि, 1/104
25. वही, 1/108–9
26. वही, 1/114
27. वही, 1/116
28. दशरूपक–धनंजय, 1/7
29. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त–मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पृ.–334–335
30. दृक् पत्रिका अंक 17 जनवरी–जून 2007, पृ.–55
31. वही, पृ.–55–56
32. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–महाकवि कालिदास–अंक–4 चतुर्थ श्लोक
33. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि 1/114
34. दृक् पत्रिका–अंक 17 जनवरी–जून 2007, पृ.–59
35. काव्यालंकारसूत्रम्–भामह 1/3/30
36. प्रेक्षणकसप्तकम्–राधावल्लभत्रिपाठी, भूमिका से उद्धृत
37. दृक् पत्रिका अंक 24–25 जुलाई–दिसंबर 2010 जनवरी–जून 2011, पृ.–176
38. साहित्यानुशासनम्, पृ.–993
39. दृक्पत्रिका अंक 24–25 जुलाई–दिसंबर 2010, जनवरी–जून 2011, पृ.–176
40. साहित्यानुशासनम्, पृ.–984
41. संस्कृतसाहित्य–20वीं शताब्दी, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी पृ.–49
42. संस्कृतपरिवेश और मध्यप्रदेश, डॉ. निलिम्प त्रिपाठी, पृ.–293
43. अभिराजयशोभूषणम्–डॉ. राजेन्द्रमिश्र–निर्मितितत्त्वोन्मेषः
44. आधुनिक संस्कृतसाहित्य–श्री के.रा. जोशी, पृ.–290

45. दृक् पत्रिका अंक 24–25, जुलाई दिसम्बर 2010, जनवरी–जून 2011, पृ.–179
46. मृत्युरयंकस्तूरीमृगोऽस्ति–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–11
47. मृत्युरयंकस्तूरीमृगोऽस्ति–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–13
48. चिताग्निः साक्षिरुपोवर्तते–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–14
49. मृत्युरयंकस्तूरीमृगोऽस्ति–चिताग्निः साक्षिरूपो वर्तते–डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.–16
50. वही, पृ.–17
51. वही, पृ.–18
52. मृत्युरयंकस्तूरीमृगोऽस्ति–डॉ. हर्षदेवमाधव–भूमिका से उद्धृत
53. दृक् पत्रिका–अंक 17, जनवरी–जून–2007, पृ.–58
54. मृत्युरयंकस्तूरीमृगोऽस्ति–कामला–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–20
55. दृक् पत्रिका–अंक 3 जनवरी–जून 2000, पृ.–83
56. मृत्युरयंकस्तूरीमृगोऽस्ति–जिगमिषा–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–26
57. वही, पृ.–29
58. दृक् पत्रिका–अंक 3, जनवरी–जून 2000, पृ.–84
59. मृत्युरयं–परीक्षा–डॉ. माधव, पृ.–32
60. वही, पृ.–32
61. दृक्पत्रिका–अंक 3 जनवरी–जून 2000, पृ.–84
62. मृत्युरयं–हर्षदेव माधव–पृ.–36
63. वही
64. वही, पृ.–38
65. दृक्पत्रिका–अंक 3 जनवरी–जून 2000, पृ.–84
66. वही, पृ.–85
67. कल्पवृक्ष–डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.–30
68. वही, पृ.–31
69. दृक् पत्रिका अंक–3 जनवरी–जून 2000, पृ.–82
70. कल्पवृक्ष–डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.–7
71. वही, पृ.–2

72. वही, पृ.—6

73. कल्पवृक्ष, पृ.—12

74. वही, पृ.—13

75. वही, पृ.—15

76. कल्पवृक्ष

77. कल्पवृक्ष—डॉ. माधव, पृ.—18

78. वही, पृ.—22

79. वही, पृ.—26

80. वही, पृ.—28

81. वही, पृ.—31

82. वही, पृ.—3

83. वही, पृ.—41

84. कल्पवृक्ष—वर्तमानः—डॉ. हर्षदेव माधव—पृ.—48

चतुर्थ अध्याय

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में डायरी-मूकोरामगिरिर्भूत्वा

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा रचित यक्ष की डायरी है। डायरी शैली में यह **महाकवि कालिदास** द्वारा रचित **मेघदूत** का विस्तार है और पुनः सर्जना भीगा यह एक विशिष्ट और नये प्रयोग के लिबास में नये आयाम का मूर्त रूप है। संस्कृत साहित्य में डॉ. हर्षदेव माधव ने मेघदूत की कथावस्तु को सर्वथा नवीन विधा (डायरी शैली) में प्रस्तुत किया है। 'यक्ष की डायरी' श्याममेघ, अरुणमेघ, रक्तमेघ, सुवर्णमेघ इन चार मेघ में विभक्त है– जो भौतिक एवं सर्जनात्मक कल्पना की भावभीनी उड़ान के विस्मयकारी निदर्शन है। पूरी डायरी अछूती, सर्वथा नूतन और नव प्रयोगोत्थापित कवि कल्पना का हृदयावर्जकफलक प्रस्तुत करती है। लेखनी के धनी डॉ. हर्षदेव माधव ने 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' को अपने लेखन कौशल का जो उत्तरीय पहनाया है वह निस्संदेह बेजोड़ है यक्ष की यह डायरी व्यथा और रुदन का प्रलाप नहीं है इसमें तो परिवर्तनशील जगत् की झाँकी है कठिनाइयों से लड़ने का साहस है और कर्मशील जीवन के प्रति सच्ची निष्ठा है। माधव का यक्ष कोई और नहीं वे स्वयं है उनका जीवन दर्शन यही है कि भूतकाल के प्रत्येक पल से चिपके रहना अपनी उन्नति में बाधा पैदा करना है जो व्यक्ति भूतकाल को देखकर, भविष्य की सोचकर, वर्तमान को निखारते हैं, संवारते हैं वहीं जीवन के सच्चे साधक है। नीम की मंजरी का स्वाद लेने वाली चीटियाँ उनका आदर्श हैं जो कटु स्वाद में भी मिठास ढूंढती है– **"तिक्तेनु किं स्वादेऽपिमिष्टता भवेत्।"**[1] वे बादल के सामने गिड़गिड़ाने वाले यक्ष नहीं है अपितु वे तो अपने अन्दर की उस शक्ति को जाग्रत करना जानते हैं जो उन्हें उनके अभीष्ट तक पहुँचायेगी। इस कर्मशील जगत् को कर्म से जीता जाये तब ही मानव मूल्यों की सफल स्थापना हो सकती है। यह डायरी किसी देव, गन्धर्व अथवा महापुरुष की नहीं है अपितु एक सामान्य कर्त्तव्यशील व्यक्ति की है। इसमें भावप्रवणता तो है परन्तु सांसारिक कार्यों के प्रति उदासीनता नहीं है, विरह की करुणा से भीगा मन तो है परन्तु अपने उत्तरदायित्व का बोध भी है। अपने पितरों के प्रति तर्पण की मर्यादा है और यक्षिणी के प्रति हृदय की प्रत्येक कमजोरी को स्पष्टतः कह देने का साहस भी है उनका एक निष्ठ प्रेम समर्पण तो जानता है परन्तु स्वतंत्रता का सच्चा अधिकारी है। गुलामी में सुख भोगना माधव के लिए पाप है। डॉ. माधव की डायरी का प्रत्येक स्तम्भ सुदृढ़ता से निर्मित है चाहे वो सामाजिक पक्ष, सांस्कृतिक पक्ष या साहित्यिक पक्ष हो कहीं कोई सुराख नहीं है।

डॉ. आचार्य रहसबिहारी द्विवेदी यक्ष की वासरिका 'मूकोरागिरिर्भूत्वा' के प्रति इस प्रकार कहते हैं– "यक्षस्य वासरिका' हर्षदेवमाधवस्य नवीनोपन्यासविन्यासः। प्राक्तना गद्यकाव्यविधाया कथाऽऽख्यायिकादिनाम्ना विभाजनं कुर्वन्तः 'कथा तु कल्पिता प्रोक्ता सत्यार्थाऽऽख्यायिका मतेति तत्स्वरूपं निर्धारितवन्तः। सम्प्रति गद्यकाव्यस्य वृहद्बन्ध उपन्यासः कथ्यते। महाकाव्य–नाटक–चम्पू–गद्यकाव्य प्रभृतिषु प्रबन्धात्मिकासु विधासु भारतीयसंस्कृतिस्वीकृतान्युदात्तजीवन मूल्यानि तु सर्वत्र वस्तु पात्रादिमाध्यमेन पुरस्कुर्वन्ति संस्कृत कवयः यथा तपः स्वाध्यायनिरतं वाग्विदां वरं मुनिपुंगवं नारदं प्रति भारतीयानां कवीनां प्रतिनिधि भूतः तपस्वी वाल्मीकिः स्वाभिमतं नायक स्वरूपं 'को न्वस्मिन्' (वा.रा.बा. 1.2.4) इत्यादि रूपेण प्रस्तौति। प्रायः सर्वेऽपि भारतीयाः कवयो वाल्मीकिसमीहित जीवन मूल्यान्याश्रयन्त एवं स्वप्रबन्ध रचनाया वस्तु विन्यासं विदधति। अत उपन्यासेऽपि नायकचरितविकासस्तथैव भवति। सर्जन–शिल्पदिशा उपन्यास स्वरूपं मया स्वकीयायां नव्यकाव्यतत्त्वमीमांसायामेवमाकलितम्–

"गद्यकाव्यवृहद्बन्ध उपन्यासोऽभिधीयते।
अस्मिन्युगोचितं वस्तु पात्रं कवि समीहितम्।।
देशकालोचितं चित्रं गद्यशिल्पं मनोहरम्।
कल्पितं चापि तत्सर्वं यथार्थ सत्प्रतीयते।।"[2]

हर्षदेवमाधवस्यां रचनायां कविमनसि कालिदासस्य मेघदूते वर्णितस्य कस्य चित्कान्ताविरहिणः शापेनास्तङ्गमितमहिम्नो यक्षस्यमर्मन्तुदा संवेदना विनिविष्टा यथा कश्चिद्भिनेता रङ्गमंचे स्वं वर्तमान जीवनं स्वरूपं विहाय अनुकार्यकायं प्रविष्याभिनयं करोति, तथैव कविरयं निरपराधोऽपिशापितमिव दूरीकृतमिव परित्यक्तमिवात्मानंमत्वा स्वतन्त्रः सन् साधनया शक्तिमवाप्य प्रवासे प्राप्तं स्ववर्तमानाश्रयस्थलं नहि–नहि पूर्वजन्मस्थलं तपसा प्राप्ताद् देवस्थलाद्वरं मनुते, उताहो मानवनिवासस्थलीं धरां नित्यनूतनरूपां देवावाहनसमर्थां साधनायै चोपयुक्तां सर्वाभीष्टपूर्तिसमर्थासर्वदेवतीर्थ–स्थलपूतां बन्धनमुक्त विचरण व्योग्यां तां देवलोकादपि श्रेष्ठां मन्यते। कदाचित्कश्चित् सहृदयोऽविरलप्रिया प्रेम्णासहाध्यात्मचैतन्ययात्राया अपि पुंजीभूतमेकस्यंसौन्दर्यं वीक्षितुं तन्माधुर्यं पातुं तच्चेतसा नूनमबोधपूर्वं जननान्तरसोहृदं तन्मयी भवनक्षमतया च माधवस्य मधुरमिममुपन्यासमवयश्यं पठतु।

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' का सामाजिक सांस्कृतिक व साहित्यिक विश्लेषण

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' डॉ. हर्षदेव माधव की लेखनी से निःसृत ऐसी अनमोल डायरी है। जो समस्त संस्कृत साहित्य में डायरी विधा की शुरुआत करती है और आगे आने वाले कवियों का पथ–प्रदर्शन करती है। डॉ. हर्षदेव माधव ने संस्कृत साहित्य के लिए सर्वथा नवीन विधा डायरी विधा में इस उपन्यास की रचना कर स्वयं को साहित्य–जगत् में प्रतिष्ठापित कर दिया है। कवि माधव ने महाकवि कुलचूडामणि कालिदास के 'मेघदूत' की कथावस्तु को आधार बनाकर अपने साहस का परिचय प्रस्तुत किया है। महाकवि कालिदास ने जहाँ मेघदूत की कथा वस्तु को समाप्त किया है डॉ. हर्षदेव माधव ने वहीं से सोचना प्रारम्भ किया है। डॉ. माधव ने शापित पात्र (यक्ष) को नायक न मानकर के यक्ष के चरित्र को उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न किया है इनके अनुसार देवता शाप भी अनुग्रह करने के लिए ही देते हैं। यक्ष को भी उसके पूर्वजन्म के जन्म जन्मान्तर के प्रेम व इस पृथ्वी से मिलवाने के लिए ही कुबेर द्वारा शाप दिया गया है। डॉ. माधव ने इस कथावस्तु को यक्ष की आधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक यात्रा के रूप में प्रस्तुत किया है।

उपन्यासोऽयं चतुर्भि मेघखण्डैर्विभाजितः

श्याममेघः, अरुणमेघः, रक्तमेघः, सुवर्णमेघ इति।...उत्थिते शाङ्र्गपाणौ इति मेघदूतपङ्क्तिं मनसि निधाय देवोत्थान–एकादशीः कार्तिकशुक्लैकादशी यावदियं वासरिका, समाप्ता च एक वर्षात्परं तस्मिन्नेव तिथौ।[3] अत्र वर्णिता कथा संक्षेपेण एव मस्ति।

1. **श्याममेघ** – प्रथम भागे एकादशीतिथौ रामगिर्याश्रेमेषु अवतीर्णोयक्षः विरह व्यथापीड़ितः सन् सर्वत्र तोलयति पूर्वतनसौभाग्येन सह इदानीन्तनं दौर्भाग्यम्। जडेषु चेतनेषु सर्वत्र पश्यति सः प्रियायाः रूपम्। नारदमुखात् श्रुतां स्वीय पूर्वजन्मत्रयस्य कथां स्मरति यक्षः। माघकृष्ण द्वितीयायां सः पापरूचिपिशाचरूपेण स्थानभ्रष्टेन पुण्यदर्शनगन्धर्वेणसह मिलति।

2. **अरुणमेघ** – द्वितीय भागे यक्षः अनुभवति काचित् प्रतिप्रातः तस्य कुटीरं परिष्कृत्य पुष्पैः सज्जीकरोति, रङ्गवल्लीं चित्रयति। चैत्रशुक्ल द्वितीयायां प्रच्छन्नः स्थितः

सः तां नारीमाविष्करोति, तस्याः परिचयं प्राप्नोति सा पार्थिवी इति। वैशाखशुक्ल द्वितीयायां पार्थिवी भारद्वाजमुनेः सकाशात् आकाशगामिनी विद्याकल्पग्रन्थं स्वीकरोति। तत्र सिद्धि लाभार्थं 232 द्रव्याणामुपयोगः वर्णितोऽस्ति उभावपि औषधीनां स×चयं कुरुतः। ततः वैशाख शुक्लपूर्णिमायांसिद्धिं।

3. **रक्तमेघ** – तृतीय भागे तौ श्रावण शुक्ल द्वितीयायां यात्रां विधाय वेत्रवत्यास्तीरे कस्यचन राजमहालयस्य ध्वंसावशेषं दृष्टवन्तौ। तत्र यक्षः जानति यत्–पूर्वजन्मनि सः विदिशा सम्राट् पुण्यकेतुः आसीत्, पार्थिवी च दशार्ण राजकन्या पद्मिनी। स तत्र पितृदर्शनं कृत्वा दाम्पत्यं स्वीकृत्य रामेश्वरस्य दर्शनं कृतवान्।

4. **सुवर्णमेघ**– चतुर्थभागे यक्षः कामाख्यामन्त्रानुष्ठानं प्रारब्धवान्। आश्विनशुक्लनवम्यां मातादर्शनं दत्वा वरप्रदानं करोति। तेन सह साधुवेशिनः कालजङ्घाराक्षसस्य परिचयं, नाशोपायं च उपदिशति। विजया दशम्यां पापरुचेः साहाय्येन मृत्युद्रंष्टापर्वतगुहां प्राप्य राक्षसं हत्वा पार्थिव्याः उद्धारं करोति। दीपावल्यां दीपकरागेण लक्ष्म्याः कुबेरस्य च आराधनां करोति, कुबेरश्च क्षमां ददाति कार्तिक शुक्ल प्रतिपदि पार्थिवी माता भवितेति सूचनां प्रदाय तस्य शापमुक्तिसमये विरहकष्टं सोढुमनिच्छुका सा प्रतिष्ठते। पंचमस्य माहिष्मतीनरेशस्य नागपालस्य राज्य–कन्या–प्रलोभनं विहाय अदृश्यो जातः। दशम्यां कुबेरस्य दूतः समागतः। किन्तु कर्मभूमिं सिद्धिभूमिं वसुन्धरां विहाय यक्षो न गच्छति। सर्वमपि एकपदेन कवयति कविः–अहं रामगिरिर्भूत्वास्थितोऽस्मि/अलकायाः प्रतीक्षां कुर्वन्/पृथिव्याः प्रणयं प्रतिपालयन्/एकोमूकोरामगिरिर्भूत्वा।

इस प्रकार चार मेघखण्डों में विभाजित कथावस्तु का सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक विश्लेषण इस प्रकार है–

1. सामाजिक आयाम

मनुष्यों के समुदाय को समाज कहते हैं। मनुष्य स्वभाव से समुदाय बना कर रहने का अभ्यासी है, इसीलिये मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा है। मनुष्य समाज में ही रहकर अपनी सब प्रकार की उन्नति कर सकता है। बिना समाज के उसका जीवन नहीं और बिना उसके समाज की सत्ता नहीं। अतः व्यक्ति और समाज का

अभेद–सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध चिरकाल से चलता आ रहा है और प्रलयकाल पर्यन्त चलता रहेगा। इसी समाज शब्द में 'इक्' प्रत्यय लगकर बना शब्द है समाज+इक–सामाजिक सामाजिक से तात्पर्य समाज से जुड़ी हुई घटनाएँ। समाज में रहकर मनुष्य एक दूसरे से जुड़ा रहता है। जब जनसमूह पारस्परिक सम्बन्ध बनाए रखता है तब वहाँ स्वर्गीय परिस्थितियाँ बनी रहती है।[4]

कवि माधव ने अपनी इस डायरी में सामाजिक पक्ष को बड़ी ही सुगढ़ता से गढ़ा है। कवि ने समाज में रहने वाले सामान्य से सामान्य जनों की पीड़ा व व्यथा को, उनकी खुशी व हर्षोल्लास को, नारी की चेतनता को, अपने शब्द देकर जीवंत कर दिया है। डॉ. माधव के अनुसार प्रत्येक कृति की सार्थकता सबलता सामाजिक पक्ष पर ही निर्भर है। **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** इस डायरी में कवि ने पार्थिवी के माध्यम से नारी की चेतनता, यक्ष–पार्थिवी के पवित्र दाम्पत्य प्रेम, समाज की दरिद्रता समाज में व्याप्त शिक्षा के महत्त्व, संगीत विधा के महत्त्व, कर्म की महत्ता, निश्चल मित्रता, पराधीनता का विरोध, लोक जीवन का वर्णन, परिवर्तनशील जगत् की झांकी आदि बिन्दुओं के माध्यम से सामाजिक पक्ष को प्रस्तुत किया है। इसमें कवि का उद्देश्य मात्र यक्ष की कथा का वर्णन करना नहीं है वरन् यक्ष की कहानी को आधार बनाकर के समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण करना है। वर्तमान समय में व्याप्त बुराइयों को समाज–पटल पर प्रस्तुत करना है जिससे उनका निराकरण किया जा सके। कवि इसमें स्त्री शिक्षा, समाज की दरिद्रता, परतंत्रता का विरोध आदि बुराइयों के प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ठ करता है। 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' का सामाजिक परिप्रेक्ष्य निम्न है–

1. नारी चेतना

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' में डॉ. हर्षदेव माधव ने नारीचेतना को सुदृढ़ता से चरितार्थ किया है। डॉ. माधव की डायरी का प्रमुख पात्र यक्ष के पश्चात् यदि हमारे मस्तिष्क में कोई पात्र प्रवेश करता है तो वह पार्थिवी है। **पार्थिवी** ही इस डायरी की प्रधान नायिका प्रतीत होती है। पार्थिवी पृथ्वी से बना शब्द है इसलिये पार्थिवी के चरित्र में पृथ्वी की समानता है। पार्थिवी आदर्श नायिका है जो अपने पूर्वजन्म के निश्चल, पवित्र व स्वार्थ रहित प्रेम को प्राप्त करने के लिये कई जन्मों तक इंतजार

करती है। पार्थिवी आदर्शप्रेम का परिचायक रूप है उसमें भाव गाम्भीर्य तथा पृथ्वी के समान सहनशीलता, पवित्रता, निश्चलता, पतिव्रता आदि गुण कूट–कूट कर भरे हुये हैं। वह भारतीय संस्कृति के आदर्श मंत्र **'अतिथि देवो भव'** का अनुसरण करती हुई यक्ष की निश्चल भाव से दिन–रात सेवा करती है और उसे पता भी नहीं लगने देती। डॉ. हर्षदेव माधव यक्ष के माध्यम से पार्थिवी के सौन्दर्य का निरूपण इसप्रकार करते हैं– **"अस्मिन् प्रदेशे कापि ऋषिकन्या मन्दं मन्दं प्रविशति। तन्वी क्षामा पक्वबिम्बाधरोष्ठी प्रविशति। नैसर्गिकं रूपम्, पाण्डुक्षामं वपुः, ललिता देहलता, मृगनयनी सा विचरति सलीलं मम् कुटीरनिकटे। किंचिद् गायति सा घटेन बालवृक्षान् सिंचन्ती। विस्मृतकमलवासा लक्ष्मीरिव, अकाण्डे विनापि समुद्रमन्थनं प्रादुर्भूता वारुणीव, माधवीं शोभां द्रष्टुकामेव वनदेवी, धरणीतलप्राप्ता देवाङ्गनेव, विस्मृतदिवसकालेव कौमुदी, त्यक्तजलाशयप्रीतिः कमलिनीव सा अकृतकसौन्दर्येण राजहंसीव कमलाद् बिसतन्तुवन्मे मनः प्रसभं कर्षन्ती विचरति।"**[5] वह कृशांगी, रक्तवर्णीय अधरवाली, कमल का निवास भूली हुई लक्ष्मी के समान, समुद्रमंथन के बिना उत्पन्न हुई वारुणी (मदिरा) के समान, माधवीलता का सौन्दर्य देखने के लिये आयी हुई वनदेवी के समान, जलाशय के प्रेम को त्यागकर आई हुई कमलिनी के सदृश, स्वाभाविक सौन्दर्य में राजहंसी के समान, कमल के तन्तु जैसी गोरवर्ण की कोमलांगी बाला, यक्षिणी के पवित्र प्रेम में डूबे हुये, यक्ष के चित्त का चुपके–चुपके से हरण कर लेती है परन्तु पार्थिवी का प्रेम स्वार्थरहित था। कुबेर के शाप से शापित तथा अलका से निष्कासन से यक्षिणी के विरह में डूबे हुये यक्ष के जीवन को नई दिशा प्रदान करती है वह कहती है कि– **"यदि आप पृथ्वी पर पतन (निष्कासन) को अपनी पृथ्वी यात्रा में बदल दोगे तो यह आपकी विजय होगी और कुबेर की पराजय।**[6] **पतन है........अपराध का परिणामरूप अतः आप सदैव मन में संतप्त होते हैं। किन्तु यात्रा इच्छानुसार होती है, यात्रा पुण्यदायिनी होती है। यात्रा प्रतिक्षण शुभ संकल्प से युक्त होती है जैसे मनुष्य जब अन्न से अपना पेट भरता है तब अन्न होता है किन्तु जब वह प्रभु के सामने उसे रखता है तब वह प्रसाद (भोग) बन जाता है। इस प्रकार आप प्रतिदिन प्रतिक्षण पृथ्वी दर्शन के हर्ष को अनुभव करें आपकी यही प्रवृत्ति यात्रा के समान होगी पृथ्वी का दर्शन भी नित्य परिवर्तनशील पुण्य देने वाला ही है अतः देवता भी पृथ्वी का सेवन करने के लिए अवतार लेते हैं।**

यहाँ निष्प्रयोजन कुछ नहीं है। तुम्हारी यात्रा का भी कुछ प्रयोजन होना चाहिए। हो सकता है कि कुबेर का यह शाप तुम्हारे लिए अनुग्रह ही हो।"[7]

इस प्रकार पार्थिवी यक्ष के जीवन को नया अर्थप्रदान करती है तथा यक्ष के पृथ्वी पर आने के उद्‌देश्य को जानने में यक्ष की हर कदम पर सहायता करती है वह महर्षि भारद्वाज से **'आकाशगामिनी विद्या कल्प'** नामक ग्रंथ लाती है तथा आकाशगामी विधा के विधान के लिए ग्रंथ में उल्लिखित 232 वस्तुओं को एकत्रित करने के लिए वन से वन में, झाड़ी से झाड़ी में, वृक्ष से वृक्ष, लता से लता में औषधि की परीक्षा करके उनका चयन किया। देखकर, सूंघकर, चखकर, स्पर्श करके घिसकर चूर्ण करके उसे देखकर परीक्षा, समीक्षा करके उन्हें ग्रहण किया। बड़े–बड़े ऋषि मुनियों द्वारा अगम्य तथा दुर्लभ औषधियों को धोकर, कभी खरल–मूसली से कूटकर, कभी कोमल उंगलियों से उछाल–उछालकर कभी सूप से भूसे और कणों को अलग करके, कभी धूप में सुखाकर, कभी नारियल के चम्मच से सभी को मिलाकर घोंटते हुये काढ़ा बनाया तथा भूमि में पाकक्रिया के पश्चात् उसके लेप से यक्ष तथा पार्थिवी ने आकाशगामिनी विद्या को प्राप्त किया इस विधा से यक्ष ने सम्पूर्ण पृथ्वी की यात्रा की तथा अपने पूर्वजन्म को जानकर, पितरों, देवताओं, गंधर्वों के आशीर्वाद से परिणय सूत्र में बंध गये पार्थिवी यक्ष के साथ बिताये हुये सुख के पाँच पलों में ही अपने जीवन की सार्थकता मानती है। वह पतिव्रता धर्म के प्रभाव से अपने पूर्वजन्मों के प्रेम को प्राप्त करती है। वह यक्ष के अलका जाने के मार्ग में बाधा नहीं बनती। पार्थिवी कहती है कि– **"मैं आपके जाने के कुछ समय बाद यहीं आकर आपके पुत्र का पालन–पोषण करुंगी। यदि आप यहीं होगें तो पुनर्मिलन की सम्भावना होगी। मैं विघ्नकारिणी बनना नहीं चाहती। प्रेम, लूटकर, बलपूर्वकहरण करके प्राप्त नहीं किया जा सकता वह तो स्वयं ही प्राप्त होता है। मेरा प्रेम स्वार्थमय नहीं है अलका पहुँचना अथवा आपकी पत्नी बनकर रहना मेरा उद्देश्य नहीं है मेरे प्रेम में यक्षिणी का भी स्थान है यदि वह चाहे तो।"**[8] पार्थिवी स्त्रियों के लिए असहनीय परस्त्री को भी सखिरूप में स्वीकार करने की कहती है पार्थिवी का चरित्र सम्पूर्ण नारी जगत् का आदर्श रूप है जो नारी का सबलतम पक्ष का प्रमाण है।

यक्षिणी – यक्षिणी कुबेर के शाप से शापित यक्ष की पतिव्रता पत्नी है जो अलका नगरी में रहते हुये विरह के दिनों को अनाज कणों को गिन–गिन कर काट रही है। यक्षिणी का नख–शिख वर्णन कवि ने यक्ष के माध्यम से किया है। यक्षिणी अद्‌भुत सौन्दर्य की धनी थी। जिसका वर्णन यक्ष इस प्रकार करता है– **"कमला–कमलसौन्दर्येण पादद्वयम्, वनदीर्घिकामरालिकागमनेन लीलयाभ्रमणम्, कदलीस्तम्भेन जङ्घे, कमल–कोशसौकुमार्येणजघनम्, मन्दाकिन्यावर्तेण नाभिम्, सौन्दर्यवापिकामग्न, हरदग्धमनोभवधूमेन रोमावलिम्, कदम्बपुष्पस्तबकेन कुचद्वन्द्वम्, दाडिमबीजैर्दशनाम्, शिरीषपुष्पलावण्येन स्मितम्, चन्दनैलालवङ्गकस्तूरिकासुगन्धेन निःश्वासपवनम्, खञ्जनचांचल्येन लोचनमिथुनम्, शाङ्र्गचापमौर्व्या भ्रूलते, कलंकहीनसिताशुंकान्त्या वदनम् विधातुं कस्य प्रावीण्यमस्ति।"**[9] सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति यक्षिणी ने भी पतिव्रता का आदर्श प्रस्तुत किया है।

देवाङ्‌गनायें – कुबेर की अलका नगरी में निवास करने वाली देवाङ्‌गनाओं का चित्रण किया गया है। देवाङ्‌गनायें स्वभाव से ही कामुक व चंचल होती है उनकी कामुकता का उदाहरण कवि ने इस प्रकार दिया है कि एक बार मृगाङकावली को देखकर उग्रशुंग नामक असुर कामासक्त हो गया उसने मृगाङ्‌कावली को खींचा तथा कमलिनी के समान कांपती हुई उसे कठोर हाथों से पकड़कर रथ में बैठाकर उसे पाताल ले गया तब यक्ष उसका पीछा कर और जाकर शिव के द्वारा प्रदान की गई शक्ति से उसे जीतकर मृगाङकावली को लाया किन्तु वह आधे मार्ग में ही रम्येश्वर नामक विद्याधर को देखकर उसके पास चली गई और यक्ष के प्रति वह धन्यवाद शब्द कहना भी भूल गई। अरे! यह है देवांगनाओं की चंचलता। क्या निस्वार्थ सहायता का कोई मूल्य नहीं है? क्या काम का साम्राज्य ही तीनों लोकों में व्याप्त है? यह कैसी रति है जो सबको 'काम' रूप में ही देखती है? अर्थात् कामुक व्यक्ति सम्पूर्ण जगत् को काममय देखता है।

2. दाम्पत्य जीवन

पुरुष और नारी समाज रूपी रथ के दो पहिये हैं। इन दोनों की ही सहायता से हमारा सामाजिक जीवन गतिशील बनता है। समाज की प्रगति के लिए दोनों का सहयोग आवश्यक है क्योंकि दोनों का जीवन एक दूसरे का पूरक है। नारी के बिना

मनुष्य अपूर्ण है और मनुष्य के बिना नारी। जीवन के कार्य क्षेत्र में संघर्ष करते हुए पुरुष को नारी की सहायता की पग–पग पर आवश्यकता होती है उनका पारिवारिक जीवन उनके दाम्पत्तिक प्रेम पर ही आधारित होता है। प्रेम जीवन का शाश्वत् भाव है। जीवन का सम्पूर्ण स्पन्दन इस भाव पर ही आधारित है। प्रेम कविता का उत्स है। डॉ. बनमाली विश्वाल के अनुसार–

कवेः कृते
कविताऽस्ति काचित् प्रियतमा
कवितायाः कृते प्रिये!
अपेक्ष्यते काचित् प्रियतमा।[10]

डॉ. बनमाली विश्वाल ने प्रेम के संयोग व वियोग के क्षणों को बखूबी चित्रित किया है।

अद्वैतरसाञ्चित दाम्पत्यसुख भारतीय परम्परा का प्रथम पक्ष है। हृदयानुराग–बन्धन के अनेक प्रकार है। व्यभिचार से लेकर 'एकपत्नीव्रत' तक व्याप्त यह रतिरसायन आज भी समाज में हजारों प्रकार का दिखाई ही पड़ता है परन्तु समाज का उन्नायक कवि आज भी अनुमोदन कर रहा है निष्कल्मष एवं पवित्र दाम्पत्य–प्रणय को ही। इस संदर्भ में प्रमाण हैं–

आचार्य बच्चू लाल अवस्थी 'ज्ञान' –

दृशोरावर्जकाः कल्याणि! सम्भाराः क्व यातास्ते?
हृदि स्फूर्जां वितन्वाना अलंकाराः क्व यातास्ते?
शिरो वक्षो जयोराधाय मे केशेषु साकूतम्
स्मितैर्विद्योतमाना अङ्गुलीचाराः क्व यातास्ते?
निमेषोन्मेषलीला नेत्रयोर्दन्तच्छदे स्पन्दः
निचोले वेपथुः सर्वे वशीकाराः क्व यातास्ते?
चटुव्याहारसौभाग्यं प्रतीषत् सप्रतीकाराः
प्रतीपं कूणितापाङ्गाश्चमत्काराः क्व यातास्ते?[11]

महाकवि कालिदास के अनुसार भी दाम्पत्य प्रेम अजर–अमर है। कालिदास ने मेघदूत में यक्ष के दाम्पत्य–प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है। यह प्रेमिल भावना ही थी जो यक्ष 'मेघ' को अपना संदेशवाहक बना देता है। कामी व्यक्ति जड़ व अचेतन को नहीं देखता। **"कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु"**[12] मूकोरामगिरिर्भूत्वा का यक्ष अपनी इस वासरिका में अपनी पत्नी के लिए प्रतिदिन के स्मरण को लिखता है। यक्ष कुबेर के द्वारा अलका से निष्कासन किये जाने से विरहकाल को सहने में असमर्थ अपनी पत्नी को देखकर पहली बार वेदना को अनुभव करता है। यक्ष रामगिरि में रहकर भी यक्षिणी को प्रतिदिन स्मरण करता है आज कार्तिक पूर्णिमा देवताओं की दीवाली है तुम्हारे द्वारा भी आज शिवालय जाकर मेरी मंगलकामना के लिये प्रार्थना की गई होगी। आज मार्गशीर्ष एकादशी (मोक्षदा एकादशी) है किन्तु प्रेम से विलग मेरे लिये मोक्ष कहाँ मेरे लिये तुम्हारा नाम जपना ही जप है, तुम्हारा स्मरण ही पूजा है, तुम्हारे मुख का स्वप्न में चिन्तन करना ही ध्यान है, तुम्हारी प्राप्ति के लिये घूमना ही मेरी प्रदक्षिणा है। तुम्हारा दर्शन ही ब्रह्मसाक्षात्कार है। मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी आज सकला एकादशी है आज तुम्हारे द्वारा अन्नपूर्णा का व्रत किया गया होगा। माघ शुक्ल पंचमी आज बसन्त पंचमी को तुम्हारी भयभीत मुख–भंगिमा का स्मरण करके वीणावादन किया तथा एक नया राग बनाया गया जिसे नाम दिया **'हरिणाक्षी'** यक्ष का दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था जिसमें कुबेर के शाप ने विरह उत्पन्न कर दिया। यक्षिणी के प्रति यक्ष का प्रेम सच्ची निष्ठा से युक्त था जिससे वह उसे एक पल भी भुलाने में समर्थ नहीं था। अलका में मेरे प्रेम की सुगन्ध है और यहाँ रामगिरि में तुम्हारे स्नेह की पवित्रता व्याप्त है। मेघों की पंक्ति होकर चमकती विद्युत होकर पुष्पों की सुगन्ध होकर, हिरणी की दृष्टि होकर पार्थिवी रूप धारिणी होकर तुम ही मेरी समग्र चेतना को चमत्कृत करने के लिये मेरे चारों ओर विचरण कर रही हो, मेरे स्वप्नों में तुम्हारे चरणों के चिह्न हैं। तुम्हारा अस्तित्व भी मेरे अस्तित्व का ही पर्याय है।[13]

इसी प्रकार यक्ष अपने पूर्व जन्म की पत्नी दशार्ण देश की राजकन्या पद्मिनी (पार्थिवी) को इस पृथ्वी पर प्राप्त करता है। पूर्वजन्म में विदिशा नगरी के पुण्यकेतु (यक्ष) नामक सम्राट और उनकी रानी पद्मिनी दोनों का इस पृथ्वी पर कई जन्मों

पश्चात् मिलन यह दाम्पत्य प्रेम का उत्कृष्टतम उदाहरण है। लेखक के अनुसार पार्थिवी व यक्ष के लिए नियति ही समस्त घटनायें बुनती है। रत्नेश्वर का प्रतिशोध, कुबेर का शाप, यक्ष का अलका से निष्कासन, यक्ष का रामगिरि में निवास, नागराज वसुसेन आदि सभी मानों पूर्व जन्म के इस पवित्र प्रेम को मिलवाने के लिए रंगमंच के पात्र मात्र थे। सबका उद्देश्य इन समस्त घटनाओं के माध्यम से पूर्वजन्म के बिछुड़े हुये दम्पत्ती को मिलवाना था। यह इस पवित्र पृथ्वी पर ही घटित होता है कि कई जन्मों के पश्चात् भी पति–पत्नी रूप में प्राप्त करने के लिये एक दूसरे का जन्मों का इंतजार करते है। इससे भारतीय संस्कृति के पवित्र दाम्पत्तिक प्रेम का पता चलता है। वरना कुबेर की स्वर्ण नगरी अलका में भी प्रेम का यह रूप दृष्टिगत नहीं होता है। यह पुण्य पवित्र भारत–भूमि का ही प्रताप है जहाँ आज भी पति–पत्नी सात जन्मों तक एक–दूसरे का वरण करने का वचन देते हैं। यह दाम्पत्य प्रेम की मिसाल है।

3. समाज की दरिद्रता

मनुष्य समाज का एक अंग है वह समाज से अलग नहीं रहना चाहता। मनुष्य की प्रत्येक इकाइयाँ मिलकर ही समाज का निर्माण करती है। समाज में मनुष्य एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं इसीलिये समाज–सेवा की भावना मनुष्य के हृदय में उच्चतम भावना है। सेवा की यह भावना मनुष्य मात्र की उन्नति के लिये आवश्यक है। इसी भावना से प्रेरित होकर अनेक महापुरुषों ने जाति, देश और मानव–समाज के कल्याण के लिए अपना जीवन अर्पणकर दिया है।[14] मनुष्य समुदाय के सुखी समाज की कल्पना तभी की जा सकती है जबकि उसमें किसी प्रकार की विषमता न हो। सब लोगों को जीवन की समान सुविधाएँ प्राप्त हों। समान अधिकारों के लिये सब फलें–फूलें। ऐसा न हो कि समाज में एक ओर निर्धन जनों का ऐसा विशाल समुदाय हो जो अपनी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाये, पेट न भर सके, तन न ढक सके। दूसरी ओर थोड़े से धनवान लोग अपनी आवश्यकताओं से अधिक संग्रहकर विलासितामय जीवन व्यतीत करें। अमीरी और गरीबी का यह भेद–भाव, यह वर्ग विषमता समाज के सुखी जीवन के लिये अभिशाप है। इस अभिशाप को वरदान में तभी बदला जा सकता है, जबकि समाज का

निर्माण संचय की भावना पर न होकर त्याग की भावना पर हो। यह त्याग भावना ही सुखी जीवन का मूलमंत्र है। भारतीय इतिहास में अनेक समाज–सेवी पुरुषों के आदर्श उदाहरण विद्यमान है। आज शताब्दियों की दासता से मुक्त होने पर हमें अपने देश की उन्नति के लिये समाज–सेवा की ओर अग्रसर होना पड़ेगा।

देश की उन्नति के पथ पर अग्रसर कवि डॉ. हर्षदेव माधव भी एक समाजचेता कवि है जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की विषमताओं को प्रकट किया है। इनकी **'व्रणोरूढग्रन्थि'** और **'भाति ते भारतम्'** आदि रचनाओं में आदर्श समाज की छवि प्रस्तुत की गई है।

यक्ष की वासरिका 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' के माध्यम से कवि सामाजिक जन–जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है। समाज में विद्यमान गरीबी, दरिद्रता की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता है। लेखक का उद्‌देश्य केवल मेघदूत के यक्ष की प्रेमकथा का निरूपण करना मात्र नहीं है अपितु हमारे आस–पास फैली हुई गरीबी, भुखमरी की ओर भी इंगित करना है। यह पृथ्वी कर्म भूमि है यहाँ कर्मो की प्रधानता है यहाँ कोई छोटा या बड़ा नहीं है। कुबेर की स्वर्ण नगरी अलका में निवास करने वाला यक्ष भी इस पृथ्वी पर छोटी सी घास–पूस की कुटी बनाकर निवास करता है जंगल की कंद–मूल–फल खाता है। पार्थिवी नाना प्रकार के फूलों के आभूषण धारण करती है। स्वर्णाभूषण धारण करने वाला यक्ष पृथ्वी पर आकर ही अपने जीवन की सार्थकता प्राप्त करता है। यह पृथ्वी ही उसे आत्मिक शांति प्रदान करती है।

एक बार पार्थिवी तथा यक्ष दक्षिण समुद्र के निकट किसी दरिद्र गाँव को देखने जाते हैं जहाँ गाँव किनारे स्थित कुटी के बाहर पत्थर के ढेर पर न्यग्रोधवृक्ष के नीचे कोई चेष्टाहीन पुरुष सो रहा था उसके समीप सभी परिवारजन रो रहे थे। यक्ष पार्थिवी के साथ जाकर उनके दुःख का कारण पूछता है परन्तु वह उनकी भाषा को समझने में असमर्थ थे लेकिन वाणी का शब्द परिचय होने से ज्ञात होता है कि पत्थर पर गिरने से उसका सिर फट गया है और वह 'मूर्च्छितावस्था' में चला गया है और दो दिन से इसी प्रकार मूर्च्छित है। चिकित्सकीय ज्ञान से अनभिज्ञ ये निर्धन लोग सिर्फ उस युवक समीप बैठकर रुदन कर रहे हैं तभी यक्ष मां भगवती का

स्मरण करके गोपायन बंधुओं को प्रत्यक्षीकृत करके तीन बार मन में 'आवर्तनसूक्त' का पाठ करके उसकी मूर्छित देह पर शुद्ध जल से जलाभिषेक किया जिससे वह उसी क्षण निद्रा से जागे हुये के समान उठ खड़ा हुआ। सभी यक्ष को देवता मानकर पूजा करने लगे। यक्ष कहता है देवता के रूप में बहुत शक्ति एवं ऐश्वर्य प्राप्त करके व्यक्ति बहुत दर्प के कारण विनाश को प्राप्त होता है। वे यक्ष के वाक्यों का अर्थ नहीं जान सके परन्तु प्रेमवश उस रात उन्हीं की कुटी में उन्हीं के साथ भोजन किया कठिनाई से पचने वाले धान्य से बनी रोटियों के साथ मठ्ठा, ग्रामीण शाक, खजूर–नारियल की मिश्रित चटनी, दूध, चावल इत्यादि खाद्य पदार्थों को प्रथम बार खाया। उक्त कथानक में गाँव की गरीब ग्रामीण जनता का चित्रण किया गया है कि गाँव की भोली–भाली जनता अपने ऊपर उपकार करने वाले को भगवान मान लेते हैं तथा जैसा उनके पास उपलब्ध था उससे उनका आतिथ्य सत्कार करती है तथा भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र 'अतिथि देवो भव' का अनुसरण करती है। इस प्रकार कवि निर्धनता से तथा दरिद्रता से युक्त परन्तु गुणों से भरपूर समाज का आदर्श चित्र प्रस्तुत करता है।

4. शिक्षा

शिक्षा 'शिक्ष्' धातु से निष्पन्न है। जो मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्तियों को विकसित करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य में विवेक शक्ति आती है, जिसके द्वारा अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को समुचित रूप से समझ पाता है। शिक्षा ही मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को दूर करके उसे मनुष्य बनाती है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य–**मनुष्य में विवेकशक्ति को जागृत करना, उसके चरित्र को शुद्ध और पवित्र बनाना, उसकी बौद्धिक शक्ति का विकास करना, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति करना, निकृष्ट स्वार्थभाव को नष्ट करके निःस्वार्थ भाव को जागृत करना और जीवन को सर्वप्रकारेण उन्नत करना।**[15]

प्लेटो ने कहा है कि– **अज्ञानी रहने से न जन्म लेना अच्छा है, क्योंकि अज्ञान की सब दुःखों का मूल है। हमें इस अज्ञान के अंधकार से निकल कर ज्ञान के प्रकाश की ओर बढ़ना है। ज्ञान का मुमुक्षु बन जीवन का विकास करना है। इसी विकास में राष्ट्र का कल्याण सच्चे अर्थों में निहित है।**[16]

मनुष्य में बुद्धितत्त्व ही एक ऐसा विशेष तत्त्व है जो मनुष्य को पशुओं से अलग करता है यदि मनुष्य में ज्ञान नहीं है तो वह पशुओं सा आचरण करता है। वह ईर्ष्या–द्वेष, कलह आदि दुष्कर्मों में ही प्रवृत्त रहता है। उसकी सुखशान्ति विदा हो जाती है और वह अभ्युदय तथा कल्याण प्राप्ति के मुख्य ध्येय से गिर जाता है। महामंत्र गायत्री में भी बुद्धितत्त्व का ही उल्लेख है। उसमें हमारी बुद्धि प्रभु द्वारा सत्कार्यों में प्रेरित होने के लिये प्रार्थना की गई है। उन्नति विधायक समस्त शुभ–कार्य एक मात्र सद्बुद्धि से ही सम्पन्न होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है– **"जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना।"**

इसी का अनुसरण करते हुए आधुनिक कवि डॉ. माधव द्वारा रचनाओं में शिक्षा के महत्त्व को भलीभांति प्रतिपादित किया गया है।

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' में शिक्षा (विद्या) का महत्त्व लेखक के द्वारा बताया गया है। लेखक अपनी इस डायरी और यक्ष के जीवन के माध्यम से लोगों में जागरुकता का भी संचार करना चाहते हैं। इस डायरी का यक्ष जिसकी अलका से निष्कासन के समय सारी शक्तियाँ छीन ली गई थी, वह यक्ष पृथ्वी पर आने के पश्चात् उड़ने में समर्थ नहीं था लेकिन **'आकाशगामिनीविद्या कल्प'** पुस्तक में लिखित आकाशगामिनी विद्या से यक्ष व पार्थिवी को उडने का सामर्थ्य प्राप्त होता है जिससे वे समस्त पृथ्वी का भ्रमण करने में समर्थ होते हैं। तिरस्कारिणी विधा मंत्र के जाप के प्रभाव से गगनयात्रानिर्विघ्न होती है। यक्ष कमर तक जल में खड़े होकर चिन्तामणि मंत्र का जाप करता है। रात्रि में मृत संजीवनी विधा के लिये हवन करता है। साधुवेशधारी कलजङ्घ राक्षस से पार्थिवी को बचाने में पापरूचि पिशाच (जो पूर्वजन्म में पुण्यदर्शन था) अपनी पिशाच विधा से 'मृत्युदंष्ट्रा' नामक पर्वत गुफा की ओर ले जाता है और पार्थिवी को यक्ष द्वारा बचा लिया जाता है।

पार्थिवी और यक्ष कुरुक्षेत्र में महर्षि कुलपति पिप्पलाद के विशाल गुरुकुल में जाते हैं। गुरुकुल के विश्वविद्यालयीय परिसर में कुछ आचार्य वेद के पठन–पाठन में व्यस्त थे कुछ शास्त्र अध्यापन में रत थे कुछ न्याय–वैशेषिक चर्चा में मग्न थे, कुछ काव्यशास्त्र, व्याकरण, धर्मशास्त्र एवं काव्य शास्त्रार्थ की चर्चा के विषय में उपदेश दे रहे थे। एक स्थान पर युवक धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। ग्रंथों व

पाण्डुलिपियों का विशाल संग्रह था। यक्ष के मन में स्वाभाविक सा प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन समस्त कार्यों के लिये धन की व्यवस्था कौन करता है। महर्षि पिप्लाद हंसकर भूमि पर तीन बार पैर से प्रहार करते हैं तब ही एक गोपनीय द्वार खुलता है वहाँ स्वर्ण मुद्राएँ, स्वर्णपात्र और रत्नों के प्रकाश से अंधकार नहीं था। वैदूर्य, माणिक, हीरे, पद्म रागमणि से दैदीप्यमान किरणें निकल रही थी। ये विद्यालय की निधि है। विद्यालय के कल्याण के लिए बंग, कलिंग, मालव, सुराष्ट्र, चोल, काशी आदि देशों के राजाओं ने भेजी है। यह निधि–संस्कृति की उन्नति के लिये सुरक्षित है। यहीं से सभी छात्रों के भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था होती है। आचार्य अपने जीवन को समर्पित करके यहाँ रहते हैं। उस काल में शिक्षा का स्वरूप उच्च था। शिक्षा के माध्यम से समाज की सेवा निस्वार्थ भाव से की जाती है। यक्ष भी ऐस ऋषि मुनियों के पैरों में सिर रखकर उनकी पूजा करता है। पिपलाद ऋषि यक्ष को मधुविधा का ज्ञान देते हैं और कहते हैं कि इस विद्या से तुम कुबेर से भी श्रेष्ठ हो जाओगें। यह विद्या भोग और मोक्षकारी है इसकी उपासना से सर्वत्र परम आनन्द होगा।[17] मधुविद्या की उपासना से यक्ष का समस्त अस्तित्व मधुमय हो गया। यक्ष ने वायु से, आकाश–प्रकाश, अग्निशिखा, वृक्षों के पत्ते, कलश के जल से, झरने से आदि सभी के जल से मधुरस का आस्वादन किया यक्ष सूर्य से, चन्द्रमा से, जल से, आकाश से, पृथ्वी से, पर्वत से, मृत्तिका (मिट्टी) से सभी से मधुरस पीने की शक्ति से युक्त हो गया। यह विधा का ही फल है कि यक्ष का समस्त अस्तित्व ही मधुमय हो गया।

संगीत विद्या – यक्ष को संगीत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त था। यक्ष भैरवराग द्वारा महाकाल शिव की आराधना करता है। गन्धर्व शास्त्र का ज्ञाता यक्ष 'पुत्रदाएकादशी' को 'यमन कल्याण राग' में विष्णु की पूजा करता है। बसन्त पंचमी को 'शंकराभरण राग' में निषाद ऋषभ स्वरों के आरोह–अवरोह का संयोजन करके, मन्द स्वर में सारङ्गस्वर से समाप्ति करके नये राग का निर्माण किया जिसे 'हरिणाक्षी' नाम दिया।

कुबेर की सभा में यक्ष की संगीत प्रवीणता से प्रसन्न होकर नारदमुनि अंतिम तीन जन्मों का रहस्य कहते हैं। तिलककामोद राग से पाताललोक में मणिभद्र नागराज का युवराज वसुसेन प्रसन्न होता है और तिरस्कारिणी विधा प्रदान करता

है। जिससे कोई भी आपको देखने में समर्थ नहीं होगा तथा दूसरी विषहरण करने वाली मणि जिससे महाविष का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है। यक्ष की यमन कल्याण राग को वसुसेन अपने नागमित्रों के साथ सुनने आता है। पर्थिवी और यक्ष दी पराग की स्तुति करते हैं। यक्ष दीपराग बजाता है और पार्थिवी लक्ष्मी स्तुति गाती है उनकी स्वर साधना से पेड़ों की शाखाओं पर रखे दीपक स्वयं जल उठे। धीरे–धीरे स्वरों का आरोह उच्चता को प्राप्त होता गया और वृक्षों की शाखाओं पर अदृश्य किरणों ने सभी दीपक प्रज्वलित कर दिये समस्त रामगिरि दिव्य शोभा से सम्पन्न हो गया यह स्वर साधना की उच्चता का शिखर है जिसने समस्तरामगिरि को दीपावली के समान जगमगा दिया।

5. कर्म की महत्ता

गीता के द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म का सम्यक् प्रतिपादन किया है। निष्काम कर्मयोग से तात्पर्य है– बिना फल की इच्छा किए हुए अपना कार्य करना। कर्म के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

"नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।।[18]
"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।"[19]

अर्थात् हे अर्जुन तेरा कर्म करने मात्र में अधिकार होवे फल में कभी नहीं और तू कर्मो के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवें इसलिए निष्काम फल की इच्छा से अपना कर्त्तव्य कर्म करना चाहिए यही हितकर है। जो मनुष्य सभी स्थितियों में समान रहता है वह समावस्था ही उपयुक्त है इसे ही योग कहा है। और भी–

"बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग कर्मसुकौशलम्।।"[20]

अर्थात् समत्व बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य–पाप दोनों को इस लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे लिप्त नहीं होता है यही समत्व बुद्धि कर्मों में चतुरता है अर्थात् कर्मबन्धन से मुक्त होने का उपाय है। समत्त्व बुद्धि वाला मनुष्य कर्म करके भी–

"जन्मबन्धविर्निमुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥"[21]

कर्म बन्धन में नहीं पड़ता तथा परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त होता है।

कर्म जीवन की आधारशिला है। संसार की प्रत्येक वस्तु अपने कर्त्तव्य का पालन करती है सूर्य निरन्तर प्रकाश देता है, हवा चलती है और पृथ्वी प्राणिमात्र को धारण करती है। सभी अपने–अपने कर्मों को कर रहे हैं। जीवन को सुखमय बनाने में मनुष्य के सद्कर्मों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्रत्येक मनुष्य को सद्कर्मों का पालन करना चाहिए जैसे माता–पिता–गुरुओं की सेवा, विद्याध्ययन, चरित्र की उन्नति, देश–जाति और समाज की सेवा, सदाचार का पालन, परोपकार करना आदि। कर्मों के पालन से ही सदा उन्नति होती है।

डॉ. हर्षदेव माधव स्वयं कर्मशील व्यक्तित्व है उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वी को कर्मशील जगत् की झांकी रूप में प्रस्तुत किया है। मूकोरामगिरिर्भूत्वा में कवि ने पृथ्वी को कुबेर की स्वर्ण नगरी अलका से भी श्रेष्ठ माना है कवि के अनुसार पृथ्वी कर्मलोक है यहाँ श्रम के बिना कुछ भी नहीं फलता। पार्थिवी यक्ष को कर्म की महत्ता बताती है तथा शोक में डूबे हुए यक्ष को जीवन के प्रति तथा पृथ्वी पर आने के प्रति दृष्टिकोण में ही परिवर्तन कर देती है कि कर्म के बिना इस पृथ्वी पर कुछ भी संभव नहीं है और कर्म करने पर यहाँ सब कुछ संभव है कोई वस्तु श्रम से असाध्य नहीं है। **"स्वर्ग में प्राप्त कामधेनु, कल्पवृक्ष द्वारा देवताओं को आलसी बनाया जाता है क्योंकि जो बिना श्रम तथा कर्म के सिद्ध होता है वहाँ भोग प्रधान होता है और यह भोग ही धीरे–धीरे सत्वगुण को कम करके दिव्यता को हरण करता है। इसलिये स्वर्ग में निवास करने वाले ऐश्वर्य में मतवाले देवता परास्त होते हैं और स्वर्ग से बाहर निकाले जाने पर उपासना करते हैं, तप करते हैं और सिद्धि को प्राप्त करके पुनः मद से मतवाले नेत्र वाले नृत्य गान और भोग में रत होकर तुच्छ हो जाते हैं।"[22]** अतः दिव्य लोक में कर्म की सत्ता न होकर भोग–विलास का

साम्राज्य है जबकि इस पृथ्वी पर कर्म की सत्ता विराजमान है। यहाँ कर्म ही प्रधान है। पुण्य कर्म के प्रभाव से ही यक्ष को यक्षत्व प्राप्त हुआ। तीसरे जन्म में यक्ष जब विदिशा के राजकुल में जन्मा तब विद्वानों को दान, साधुओं के लिये सम्मान, गुरुजनों के लिये आजीविका के साधन, छात्रों के लिये आश्रमों का निर्माण, शिल्पियों को बहुत मान देकर यश प्राप्त किया। दुःख जैसा शब्द प्रजा के शब्दकोश में भी नहीं था। प्रजा को अपनी सन्तान के समान मानकर राज्य शासन किया। निरन्तर धुएँ से आकाश के आच्छादित होने पर वेदमंत्रों के अंतरिक्ष में गुंजित होने पर ग्रामीणों के धर्मकथा के श्रवण में मग्न होने पर, मंत्रियों के इष्टापूर्त कर्म में व्यस्त रहने पर, प्रजा के धर्मशास्त्र निर्दिष्ट सदाचार से युक्त होने पर, दण्ड के बिना राज्य के नियंत्रित होने पर शिव की भक्ति में सम्पूर्ण जीवन बिताया गया। इन कर्मों से प्रसन्न देवताओं द्वारा कुबेर की स्वर्ण नगरी अलकापुरी में जन्म हुआ अर्थात् इस पृथ्वी पर कर्मों की ही महिमा है पूर्व जन्मकृत कर्मों की प्रधानता अगले जन्म में भी रहती है और उन्हीं के आधार पर शुभ–अशुभ की प्राप्ति होती है इसलिये यक्ष को देवत्व व दिव्यलोक प्राप्त हुआ।

6. निश्चल मित्रता

दो हृदयों के निःस्वार्थ भाव से मिलन का नाम ही मित्रता है। मनुष्य समाज में रहता है इसलिये वह चाहता है कि जीवन में उसका कोई साथी हो, जो सुख और दुःख में सदा उसका साथ दे। जिसको वह अपने दुःख और सुख की सभी बातें निःसंकोच बता सके। अतएव मनुष्य को सदैव एक सच्चे मित्र की आवश्यकता होती है। सच्चा मित्र वही है जो बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी साथ न छोड़े। दुःख में साथ दे और सुख में प्रसन्न हो। सदा उत्तम सम्मति दे कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लावे। विपत्ति में धन और प्राणों से मित्र की सहायता करें। इसलिये दुर्जन से कभी भी मित्रता नहीं करना चाहिए। समान आयु समान बल और समान गुणों वालों की ही मित्रता स्थायी होती है।

नीतिशतक में सत्संगति के महत्त्व को इस प्रकार कहा है–

जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यं,

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,

सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।।[23]

संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ व निश्चल मित्रता की महिमा सर्वविदित है हितोपदेश का मित्रलाभप्रकरण यह पूरा प्रकरण कवि नारायण पण्डित द्वारा श्रेष्ठ मित्रता के विषय में ही रचित है।

संस्कृत साहित्य की इसी परम्परा का अनुसरण करते हुये डॉ. हर्षदेव माधव ने यक्ष की डायरी में निश्चल मित्रता का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वसुसेन व यक्ष की मित्रता अप्रतिम है मित्रता के कारण ही यक्ष वसुसेन के द्वारा बताये गये वृक्ष के कोटर में जाकर सात बार सर्प मंत्र का जाप करके आह्वान करता है जिससे वसुसेन स्वर्णपात्र में सोमरस लेकर आता है। अमृत से युक्त सोमरस को ग्रहण करके **'आकाशगामिनी विद्या'** को प्राप्त करते है। वसुसेन कहता है– **"प्रिय मित्र! त्वया मामाहूय मह्यं गौरवं दत्तम्। मित्रकार्यं कृत्वा कृतार्थोऽहं स×जातः गृह्णातु भवान् सोमरसम्। सुधया संपृक्तोऽयं रसो यथेच्छां सिद्धिं दास्यति। किन्तु भवता सावधानतया गन्तव्यम्। भवता कुबेरस्य प्रदेशे न प्रवेष्टव्यम्। कुबेरस्य प्रभावाद् भवते विघ्नं भवेद् अतः तस्य निदेशे स्थातव्यम् देवतानां गौरवस्थ हानिर्न स्यात्। सर्वथा वयं सर्वे सर्वास्ववस्थासु भवतः सहायकाः स्मः। स्वस्ति भवते।"**[24]

यक्ष वसुसेन की निश्चल मित्रता का अनुभव करके धन्य हो जाता है। इसी प्रकार पापरुचि व यक्ष मित्रता, पापरुचि जो पुण्यदर्शन नाम का गन्धर्व है जो उर्वशी के रूप को देखकर चकित हुये किसी देवर्षि को प्रणाम करना भूल गया उन्हीं के शाप से पिशाच योनि में उत्पन्न होता है। जब एक साधुवेशधारी कालजङ्घ नामक राक्षस पार्थिवी का हरण कर लेता है तब पापरुचि ही यक्ष को अपनी पैशाच विद्या से 'मृत्युदंष्ट्रा पर्वत की गुफा की ओर ले जाता है। यक्ष रक्षोघ्नसूक्त का उच्चारण करते हुये यक्ष कालजङ्घ का वध कर देता है और पापरुचि की सहायता से पार्थिवी को बचा लेता है।

पापरुचि की निष्कपट मित्रता और उसकी दयालुता से यह सिद्ध होता है यथा– **"दिव्य स्थानेषु दिव्यात्मसु पिशाचत्वं वर्तते तथा पिशाचेष्वपि दिव्य भावा**

वर्तन्ते।"[25] अर्थात् जहाँ दिव्य स्थान में दिव्य आत्माओं में पिशाच होता है वहीं पिशाचों में भी दिव्य भावना होती है। यजुर्वेद में भी मित्रता की भावना उत्पन्न करने वाले मंत्र उद्धृत है–

"दृ ते दृ हमा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहै।"[26]

मित्रों की निष्कपट मित्रता के सहारे ही यक्ष अपनी रामगिरिरूपी पृथ्वी यात्रा को निर्विघ्न समाप्त करता है।

7. लोक जीवन का वर्णन

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति होती है– **लोक्यतेऽसौ इति लोक (लुक+घञ्)।** इसका प्रयोग 1. भुवने भुवनशब्दे दृश्यम्, 2. जने च अमरः (भावे घञ्) तथा 3. दर्शन–इन तीन अर्थों में हुआ है।[27]

सामान्यतया 'लोक' शब्द के दो ही अर्थ अधिक प्रचलित हैं– त्रिविध लोक तथा जनसामान्य वर्तमान में इसके लिए 'लोग' शब्द प्रचलित है। ऋग्वेद में कहा गया है–

"नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोतात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।"[28]

अतः भारतीय मनीषा में 'लोक' शब्द लोक (त्रिलोक, सप्तलोक आदि) तथा जनसामान्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि ने वेद से विलग लोक की सत्ता स्वीकार की है। **"लोक सर्वलोकाट्ठञ्"**[29] पतंजलि महाभाष्य में 'लोक' शब्द का ग्रहण धूलि–धूसरित पाद वाले, शिक्षा से दूर, ग्रामीण से किया गया है।[30]

'लोक' शब्द व्यापक है, वह जीवन का महासमुद्र है। वह भूत, भविष्य, वर्तमान को अपने में समेटे है। वह सार्वदेशिक व सार्वकालिक है। वह किसी काल–विशेष की परिधि में नहीं बंधा है। अतः यह शब्द वर्गभेद–रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता व संस्कृति के कल्याणमय

विवेचन का द्योतक है। भारतीय संस्कृति का यदि एक चक्र शास्त्र पर आधारित है, तो दूसरा लोक पर। जीवन से सम्बंधित सम्पूर्ण उपकरणों को समेटे हुये इसका एक सामुहिक व्यक्तित्व है। अतः हम जिसे संस्कृति की संज्ञा देते हैं, उसका उत्स लोक है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोकशब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है वरन् नगरों व गाँवों में फैली वह सम्पूर्ण जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।[31] निष्कर्षतः 'लोक' वह है जो ग्राम हो या नगर, कहीं भी रहता हो, साक्षर हो या निरक्षर, किसी भी जाति या धर्म का हो, परिस्थितियों व अभावों के कारण समाज का एक ऐसा वर्ग जो सम्प्रति सम्मान व शक्ति की दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन में तथाकथित उच्च सभ्य व सुशिक्षित वर्ग की दृष्टि से उपेक्षित है एवं निम्न है या उनके शोषण का शिकार है फिर भी जीवन में उस देश की पारम्परिक पुनीत संस्कृति का जीवन्त रूप झलकता है।[32]

डॉ. हर्षदेव माधव जैसे जमीन से जुड़े हुये आधुनिक कवियों ने लोकजीवन के सामान्य, अर्धशिक्षित, ग्रामीण, निरक्षर लोगों का सम्पूर्ण चित्रण किया है। डॉ. माधव ने इस डायरी में लोकजीवन की सजीव झांकी प्रस्तुत की है यह पृथ्वी कर्म–भूमि है और कर्म–भूमि पर कर्म करने के लिये मनुष्य सामान्य जीवन यापन करता है यक्ष जो देवताओं के अधिपति कुबेर का सेवक है स्वर्ण नगरी अलका में निवास करता था वह भी रामगिरि में घास–पूस की छोटी सी कुटी बनाकर, साधारण वेश धारण करके, जंगली कंदमूल का सेवन करता है पार्थिवी कुटी में झाडू लगाती है, घड़े में स्वच्छ जल भरती है, कुटी के द्वार पर नये–नये पत्तों का वन्दनवार लगाती है, कुटी के आगे चबूतरे पर फूलों की रंगोली बनाती है, स्वयं के लिए प्रतिदिन भिन्न–भिन्न प्रकार के फूलों के आभूषण बनाती है। प्रत्येक व्रत व त्योहार को यक्ष भिन्न–भिन्न राग बजाकर उत्सव रूप में मनाता है। पार्थिवी और यक्ष पृथ्वी यात्रा के समय सामान्य लोकजीवन के दर्शन करते हैं।

"जन कोलाहलयुक्तानि नगराणि, दरिद्रजनयाच्आस्वराकुलितानि देवमन्दिराणि, कृषकस्वेदसिक्तानि क्षेत्राणि, सुवर्णमुद्रापूर्णा राजमहालयाः, क्षुत्क्षामकण्ठजन–

चीतकारोद्वेजितानि कुटीराणि, श्रोत्रियवेदमन्त्रगानपूरितानि आश्रमस्थानानि, शास्त्रचर्चा गुञ्जिताः पाठशालाः, हाहाकारशङ्खदुन्दुभिनाद जयशब्दविदीर्णगगनमण्डला राज्यसीमानः, लुण्ठयमानानां स्त्रीणां रोदनानि, शत्रुप्रज्वालिताग्निदाहदग्धा ग्रामाः, किरात यूथाक्रोशसंकुला वनप्रदेशाः, गीतगानप्रकटितोल्लासाः पथिकसार्था गवाक्षेषु मुक्तवेणीबन्धाः प्रतीक्षा विह्वलाः प्रोषित भर्तृकाः प्रियतममिलनोत्सुकास्तमिस्रेऽपि निर्भयाः द्वीपद्वितीयाविकीर्ण मुक्तासूचितमार्गा गच्छन्त्योऽभिसारिकाः, संसारं शमशानवत् पश्यन्तो भस्मावलिप्तदेहाः कापालिकाः प्रज्वलन्तीषु चितासु मांसमदिरादिनैवेद्यं निवेद्यमानाः कपालेषु नररक्तं पिबन्तस्तान्त्रिकाः शत्रुकवलित–राज्या वनाद् वनं हिण्डमानाः पांसुलिप्ता›k राजानः मुण्डितमस्तका जीवन्मृता इव कष्टानि सहमाना अकाल निमीलिताकलिका इव दुःखिता बालविधवाः, वस्त्रहीनाअकिंचन बालाः, तीव्रातपम्लान कायाः कृषकाः श्रमकर्कश शरीरा यौवनेऽपि वार्धक्यक्लममनुभवन्त्यः स्तनंधयशिशुवियुक्ताः श्रमिकवध्वः, नग्नपादैरातपे दूर–दूरं गच्छन्त्यः प्रस्वेदमलिना जलहारिण्यः, तीर्थलुब्धपुरोहितैः कदार्थिताभाविकाः, मृत्युं प्रतीक्षमाणा व्याधिविक्लवगात्रा वृद्धाः।"[33]

पार्थिवी और यक्ष पृथ्वी भ्रमण के दौरान ग्रामीण लोक जीवन के समीप से दर्शन करते हैं।

8. पराधीनता विरोधी

यक्ष इस पृथ्वी पर आकर ही प्रथम बार स्वतंत्रता का अनुभव करता है। पार्थिवी से परिचय के पश्चात् ही यक्ष स्वतंत्रता की परिभाषा जानता है स्वर्ण नगरी अलका में निवास करने से क्या प्रयोजन जहाँ निर्दोष व्यक्ति दण्डित होते हैं, जहाँ सत्य को नहीं समझा जाता है, सज्जनों को ठगा जाता है, गौरव को लूटा जाता है, देवत्व की प्रताड़ना होती है, श्रेष्ठ व्यक्तित्व नष्ट (लोप) हो जाते हैं, अपनी शांति का हनन होता है, आत्मसुख जल जाते हैं। पुण्य का अपहरण होता है, धन रूपी मदिरा से मतवाला बनाया जाता है, स्वामी एवं प्रभु होने के मद से पुण्यों को पराजित कर दिया जाता है। यक्षेश्वर कुबेर का प्रिय सेवक होने, उनके चरणों में सिर झुकाकर निरन्तर प्रणाम करने से कठोर नाखून वाले, धन के मद से चंचल नेत्रों वाले कुबेर देवता ने बिना दोष के शापित किया है यक्षेश्वर ने क्षणमात्र भी विचार नहीं किया

अन्यथा वे जान जाते कि यह रत्नेश्वर की एक चाल है। ऐसी स्वर्ण नगरी अलका में कुबेर का सेवक बन के रहने में क्या लाभ? इससे तो इस **"पृथ्वी पर महान सुख है यहाँ मुझे निरंतर स्वतंत्रता की अनुभूति होती है मन को प्रसन्नता मिलती है, सुख से घूमता हूँ। अपुण्य होने पर भी पुण्य जैसा सुख ही मिलता है। देवत्व का नाश हाने पर भी अपने तेज की अनुभूति होती है।"**[34] इस पृथ्वी पर आकर ही मैं स्वतंत्रता का सही अर्थ जान पाया हूँ वरना अलका में उस परतंत्रता को ही स्वतंत्रता मानकर वहाँ से निकले जाने पर दुःखी हुआ। परन्तु अब मैं कुबेर की दासता को त्याग चुका हूँ अतः पुनः परतंत्रता के पिंजरे में निवास नहीं करुंगा। जहाँ जीवन भी स्वामी के अधीन हो मैं यहाँ स्वतंत्र जीवन जी रहा हूँ अलका में जो तुच्छता मुझमें थी उसे दूर करके मेरा अस्तित्व ऐश्वर्य का पात्र बन चुका है। अतः भोगपरायण सुख तुच्छ प्रतीत होते है। सेवकत्व (गुलामी) में विचारों और व्यवहार की स्वतंत्रता कहाँ होती है जैसाकि तुलसीदास जी भी कहते हैं कि– **'पराधीन सपनेहूँ सुख नाही।'**

9. परिवर्तनशील जगत् की झांकी

परिवर्तन इस संसार का नियम है। परिवर्तन रूपी इस रथ का पहिया निरन्तर चलता रहता है। सुख बाद दुःख, दुःख के बाद सुख, रात के बाद दिन, नये के बाद पुराना, पुराने के बाद पुनः नया यही इस सृष्टि का नियम है इस संसार में कोई भी वस्तु स्थायी नहीं है प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। यह डायरी परिवर्तनशील इस जगत् की झांकी है। कठिनाइयों से हारकर बैठ जाना हार मानकर अवसाद ग्रस्त होना, रुदन व प्रलाप करना जीवन का उद्देश्य नहीं है बल्कि कर्म करते हुये दुःख के हर पल को सुख में बदल देने का साहस होना चाहिए। "जो हर पल (प्रत्येक क्षण) नवीनता को प्राप्त करे वही सौन्दर्य है जहाँ स्थिरता होती है वहाँ नवांकुरण (नवीनता) की संभावना कैसे हो सकती है। परिवर्तनशीलता में ही सौन्दर्य होता है जैसे 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' का यक्ष यदि दुःखी होकर, अवसाद ग्रस्त होकर बैठ जाता तो अपने जीवन के इस परिवर्तनशील रूप के दर्शन कभी नहीं करता पार्थिवी के मार्ग दर्शन से यक्ष अपने जीवन के दूसरे पहलू के दर्शन करता है। पृथ्वी के नित्य परिवर्तनशील रूप के दर्शन करता है– स्वर्ग में, दिव्यलोक में सभी में

स्थिरता है वहाँ जो सौन्दर्य होता है वह दयनीय होता है प्रतिक्षण परिवर्तन होना ही महाकाल का नियम है। वहाँ जो सौन्दर्य होता है वह दयनीय होता है प्रतिक्षण परिवर्तन होना ही महाकाल का नियम है। वहाँ सभी कुछ घनीभूत, निश्चेष्ट–बर्फ समान जड़ है जबकि पृथ्वी समय–समय पर नवीनता को प्राप्त करती है।"[35] न तो नाश के लिए दुःख है और न ह्रास का निर्वेद। सब कुछ परिवर्तनशील है। नित्य नवीनता ही पृथ्वी का जीवन–मंत्र है। क्षीण झरने अपने मार्ग में प्रवाहित होते हैं। दुर्बल मनुष्य रोग ग्रस्त होकर भी जीवन के लिए प्रयत्नशील है। जीर्ण पत्तों को हटाकर वृक्ष पुनः वायु के साथ नृत्य करते हैं। मृग तृष्णा को पी कर भी हिरण–हिरणी से प्रेम करता है। पराजित व्यक्ति पुनः जीतने की इच्छा करके आक्रमण करते हैं। जाल में मछलियाँ प्राप्त न करके भी धीवर पुनः समुद्र तट को जाते हैं। प्रयत्नों की निराशा रहित गति है। जिजीविषा (जीने की इच्छा) के कारण दुःख में भी सुख की अनुभूति है। देवों के प्रति कृपणता नहीं है। यहाँ स्वर्ग के उपभोग के समान आलस नहीं है। अलका के अमृत्व में चेतना नहीं है। ऐसी कोई भी चेतन्य शक्ति वहाँ नहीं है जिसे पृथ्वी पर अनुभव न किया गया हो इसलिये यक्ष स्वर्ण नगरी अलका के निश्चेष्ट सौन्दर्य को पुनः प्राप्त करना नहीं चाहता जबकि उसकी प्राणप्रिया वहाँ निवास करती है बल्कि यक्षिणी को ही इस पृथ्वी पर आकर निवास करने का निमंत्रण देता है इस प्रकार यक्ष की सोच व दृष्टिकोण में ही परिवर्तन हो जाता है।

सांस्कृतिक आयाम

'संस्कृति' शब्द (सम्+कृति) संस्कृत भाषा का है। उसका अर्थ है 'उत्तम कृति' अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि की उत्तम चेष्टाएँ या हलचल। इनमें लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक–सभी प्रकार के अभ्युदय–उन्नति के अनुकूल चेष्टाएँ आ जाती हैं।[36] सारांश यह है कि वेदादि शास्त्रों तथा शिष्टानुमोदित परम्परागत आचार–विचार ही भारतीय अथवा हिन्दू संस्कृति है। हमारी संस्कृति में मनुष्य का परम ध्येय जीवन को उत्कर्ष की चरम–सीमा पर पहुँचाना अर्थात् आत्म–साक्षात्कार अथवा भगवत्प्राप्ति है। हमारे इस ध्येय की प्राप्ति तथा सांस्कृतिक–जीवन की रक्षा एवं उसके उत्कर्ष के लिये ही

हमारे कवि प्रयत्नशील है। भारतीय संस्कृति में एक प्रेम तत्त्व ही वैभिन्य को मिटाकर सबको एक समान 'भाव–भूमि' पर लाकर खड़ा करके जीवन उत्कर्ष का पाठ पढ़ाता है।

'विभिन्नता में एकता' के सूत्र का अनुसरण करने वाली संस्कृति की आधुनिक कवियों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। भारतीय संस्कृति सदा सर्वदा परमपूज्या रही है क्योंकि यहाँ धर्म, जति, समाज, भाषा में विभिन्नता होने पर भी यहाँ सब एक है। डॉ. हर्षदेव माधव जैसे लब्धप्रतिष्ठ कवि ने अपनी रचनाओं के माध्यम सम्पूर्ण विश्व को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरो दिया है। डॉ. माधव ने 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' डायरी के सांस्कृतिक आयाम को भारत की भौगोलिक एकता, धर्म, सकारात्मक सोच, पुनर्जन्म में विश्वास, पृथ्वी सौन्दर्य का वर्णन आदि बिन्दुओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है जिसका विश्लेषण इस प्रकार है–

1. भारत की भौगोलिक एकता

यक्ष अपनी इस डायरी में भारत भूमि के सम्पूर्ण भौगोलिक भू भाग का चित्रण करता है अलका से लेकर रामगिरि, रामगिरि से संपूर्ण पृथ्वी के भू–भाग की भौगोलिक एकता का परिदृश्य इस डायरी में विद्यमान है। पार्थिवी व यक्ष आकाश गामिनी विद्या से पृथ्वी के समस्त, भू–भाग के दर्शन करते हैं। सर्वप्रथम भगवान विश्वनाथ की नगरी, तीर्थों की रानी काशी में प्रवेश करते हैं, जहाँ **"ऊँचे–नीचे भूमि भाग, चंचल किशोर के समान झरने, आलसी बेलों के समान सफेद मेघखण्ड, सूर्य के ताप से स्वर्ण रस को छोड़ती हुई सी दिशाएँ, पृथ्वी को मण्डित करके सूर्य के ताप से मानों छत्र के समान उसकी रक्षा करते वृक्ष, ससुराल जाती स्त्रियों के समान नदियाँ, ध्वजों से सुशोभित महल, खेतों में बेलों के साथ कार्य में लगे हुए पसीने से युक्त किसान, कहीं हिरण दौड़ रहे हैं, कहीं सिंह गर्जन कर रहे हैं, कही मोथा नामक घास को उखाड़ते हुए शूकर हैं। शैवाल से युक्त घाटों की सोपान पंक्ति अर्धदग्ध शव, हड्डियों के टुकड़े और भस्म से युक्त जल, निरन्तर चिता की ज्वाला से साक्षात् महाकाल के समान रोद्र और वीभत्स का दर्शन कराने वाला मणिकर्णिका घाट से युक्त काशी में भगवान विश्वनाथ की चौसठ उपचारों से पूजकर एक सौ आठ बार परिक्रमा की।"**[37]

काशी के पश्चात् भगवान कृष्ण की लीलाभूमि मथुरा का चित्रण किया गया है। वृन्दावन के प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक शाखा, प्रत्येक पर्ण, प्रत्येक कु×ज, मिट्टी, प्रत्येक अणु में कृष्ण की अनुभूति होती है। वहाँ का कण–कण कृष्णमय है यमुना का जल, कृष्ण की बंशी, गोपिकाएँ आज भी कृष्ण की भक्ति का मान करते हैं, यही भक्ति की पराकाष्ठा है। प्रणयभूमि में जाकर यक्ष ने भी प्रणय (प्रेम) के संपूर्ण रूप को प्राप्त किया।

मथुरा के पश्चात् पुराणप्रसिद्ध पापनाशिनी नगरी अयोध्या का वर्णन किया गया है। अयोध्या की पवित्र–पावन माटी का वर्णन है जिसमें भगवान राम ने भ्रमण किया था, सरयू का जल, अयोध्या की भूमि पवित्र बना रहा है। राम ने रावण को मारा किन्तु रावण द्वारा अपने दश मस्तकों का घमण्ड कुबेर के लिए समर्पित कर दिया। राम वनवास को स्वीकार करके पंचवटी गये और यक्ष रामगिरि में आया। यह विधि का विधान ही है।

अयोध्या के पश्चात् भगवान महाकाल का वर्णन किया गया है। विश्वभ्रमण की उत्कण्ठा से यक्ष ने बहुत स्थानों पर प्रवास किया तथा पृथ्वी के ज्ञात–अज्ञात सौन्दर्य को देखकर प्रेमी हो गया। **"मेखला (मध्य) में रामचन्द्र जी के पैरों से चिह्नों से युक्त आम्रकूट पर्वत, वनचर वधूओं द्वारा भोगे गए वन निकुंज, पत्थरों (बहुमूल्य पत्थरों) से विषम (उबड़–खाबड़) नतोन्नत विन्ध्याचल की तलहटी में छिन्न–भिन्न हुई रेवा नदी, दशार्णदेश के पीली छाया वाले उपवनों की स्थिति, वेत्रवती नदी के जल में प्रतिबिम्बित सोने के महलों वाली विदिशानगरी, वेश्याओं के रतिगन्ध को व्यक्त करती हुई शिलाएँ (भूखण्ड), विहगपंक्ति की करधनी पहने हुई निर्विन्ध्या, पवन रूपी प्रियतम के चाटुकारिता पूर्ण वचनों को सुनती हुई क्षिप्रा, रत्नों की चमक से कांतियुक्त उज्जयिनी के बाजारों में दुकानों की पंक्ति, युवतियों के स्नान से सुवासित जल वाली गन्धवती (नदी) कुन्द के पुष्प के समान श्वेत जलवाली गम्भीरा, उदुम्बर (गूलर के फल) की गंध से कसैले देवगिरि के स्थान, रन्ति देव की कीर्तिध्वजा को फहराती चर्मण्यवती (नदी) शंखनाद से आकुल (गुञ्जित) दशपुर की गलियाँ, प्रचण्डयुद्ध का स्मरण कराता हुआ भीषण कुरुक्षेत्र, बलराम द्वारा सेवित सरस्वती, स्वर्ग–मोक्ष दिलाने वाली (कल्याणमयी) गंगा, हिमालय के उन्नत शिखर"**[38]

आदि भौगोलिक प्रदेशों का वर्णन किया गया है जो पृथ्वी की एकता की सूचक है। यक्ष इस डायरी में आम्रकूट पर्वत से लेकर विन्ध्याचल पर्वत तक के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करता है जहाँ की छटा अद्‌भुद् है। इन पर्वतों से निकलने वाली रेवा नदी, वेत्रवती नदी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, गन्धवती नदी, चर्मण्यवती, सरस्वती, गंगा आदि नदियाँ इस पृथ्वी के भिन्न–भिन्न भागों में प्रवाहित होती हुई सम्पूर्ण पृथ्वी के भू–भाग का सिंचन करती है। जिससे मानव–जगत का कल्याण होता है। ये भिन्न–भिन्न प्रांतों के भिन्न–भिन्न भाग भौगोलिक दृष्टि से एक होकर भौगोलिक एकता को लक्षित करते हैं। यक्ष इस अनुपम सौन्दर्य को देखकर चकाचौंध हो जाता है और निर्निमेष नेत्रों से पृथ्वी के इस सौन्दर्य का पान करता है क्योंकि जैसी पवित्रता व पावनता इन स्थानों में विद्यमान थी वैसी पवित्रता कुबेर की स्वर्ण नगरी अलका में दुर्लभ है। सोने की बालू में नवीनता एवं वैभव है परन्तु जल के प्रवाह का वैविध्यपूर्णफल कल निनाद नहीं है जबकि यहाँ इस पृथ्वी पर जीर्ण पुष्पों के स्थान पर नवीन पुष्प विकसित होते हैं। सूखे पत्ते गिरते हैं तब नये पत्तों की संरचना होती है शून्य घोंसलों में पक्षियों का कलरव गूंजने लगता है व्यक्ति वृद्धावस्था को उपेक्षित करके आनन्द से जीते हैं। यहाँ तो क्षण भी उत्सव होते हैं यह पृथ्वी तो **'उत्सवों की जननी है'**। उत्सवों में प्रेम व हर्ष का प्रसार होता है और पृथ्वी पर प्रेम ही जीवन की संजीवनी है अतः प्रणयी प्रत्येक व्यक्ति में अपने प्रियजन की प्राप्ति की अभिलाषा रखते हैं। मृत्युलोक में प्रणय भोग का हेतु (निमित्त) नहीं है अपितु प्रेम ही पूजा है वस्तुतः अभिप्राय यह है कि पृथ्वी पर लोकभावना, कल्पना और यथार्थता विद्यमान है। यहाँ महान सुख है, स्वतंत्रता की अनुभूति है, मन की प्रसन्नता है, अपुण्य हो जाने पर भी पुण्य जैसा ही सुख मिलता है, देवत्व का नाश हो जाने पर भी तेज की अनुभूति होती है। यहाँ श्रम के बिना कुछ नहीं फलता है परिश्रम व ज्ञान ही यहां की थाती है। यह पृथ्वी कर्मलोक है। पार्थिवी व यक्ष 'आकाशगामिनीविधाकल्प' के लिए इस पृथ्वी से नाना प्रकार की जड़ी–बूटियाँ ढूँढ निकालते हैं जो अनायास ही पृथ्वी पर उग जाती है जैसे–श्वेतार्क, पिप्पलीफल, मिर्च, लज्जालुपर्ण (छुई–मुई के पत्ते) श्वेतकनेर, मजिंष्ठ–सहदेवी, तिंतडीफल, चित्रकमूल–वटशाखा–कुमारिकापर्ण, कृष्णातुलसीपत्र, अश्वगन्धामूल, तगरपुष्प, इलायची, लोंग, कस्तूरी, सुपारी, कपिकच्छुबीज, अहिफेन, गोरोचन, सोमलता के पत्ते,

पनर्नवा, सौवीरांजन, नागवल्लीपत्र, शिलीन्ध्र, श्वेतगु×जा, जीरक, लोध्र, हरिद्रा, हारितकी, अजमोद, प्रवालचूर्ण, रुद्रवंती काकजङ्घा, हिंगुचूर्ण, कर्पूर, प्रिय›।, कृष्णधत्तुर, शिलाजीत, व्याघ्रनखभस्म, सिन्दूर, कक्कोल, तक्कोल, सैन्धव मयूर शिखा, लाक्षारस, इक्ष्वाकु, कोशातकीमूल, मलयजचूर्ण, त्रायमाण, वज्रकष्टक, रसांजन, हेमकन्द इत्यादि।[39] पृथ्वी प्रदत्त औषधियों से पार्थिवी व यक्ष अलका के समान आकाश–यात्रा करने में सक्षम हो जाते हैं। आकाश यात्रा के दौरान विश्वभ्रमण की उत्कण्ठा से यक्ष बहुत स्थानों पर प्रवास करता है पृथ्वी के ज्ञात–अज्ञात, सौन्दर्य व स्थान–स्थान पर ही सौन्दर्य को देखकर प्रणयी (प्रेमी) हो जाता है। पंखों को फैलाकर नाचते हुए मोर, नदी के किनारे बालू में अंडों को सेते कछुए, कीचड़ से बने हुए के समान, कीचड़ में मग्न शूकर, अपने गर्जन से भय विह्वल करते सिंह, श्मशान में आधे जले माँस के लोलुप सियार, घास पर मृगी के साथ घूमते कृष्णसार मृग, कूएँ से जल पीते हुये अष्टपाद (पशुविशेष) सहचरी से अलग होकर विलाप करते हुये चकवे, विचित्रपुष्पों की झाड़ियों में नृत्य करते चितकबरी तितलियों का दल, भय से रोमांचित शरीर वाली दौड़ती हुई गायें, सूंड से प्रियतमा को स्नान कराते मदयुक्त गजराज, वृक्ष की कोटरों में मुखरित जंगली तोते, मनुष्य के रक्त के प्यासे झाड़ियों में छिपे भेड़िये (गीदड़) इत्यादि यक्ष द्वारा देखे गये। लौकिक होने पर भी अलौकिक के समान, अनेक कौतुहलों को उत्पन्न करती हुई यह सृष्टि अनेक रसों से युक्त है। कहीं खिले कमलों का सौन्दर्य, कहीं शाखाओं पर लटके हुए अजगर की निश्वासों का विष, कहीं खेतों के धान्य की रमणीयता है, कहीं मरुभूमि के (रेगिस्तान सदृश) सूर्य से तपे हुए बालू के कण फैले हुए हैं, कहीं रमणीय स्त्रियों के चलने से कामदेव की लीला प्रतीत होती है। कहीं भूतप्रेत के प्रसार का भय है, कहीं साम्राज्य की शंख ध्वनि सुनाई देती है कहीं महासाम्राज्य के खण्डहरों के अवशेष है। इस प्रकार विविध रूपों को धारण करके नचाती हुई पृथ्वी सुशोभित है। पृथ्वी समय–समय पर नवीनता को धारण करती है नित्य नवीनता ही पृथ्वी का जीवन मंत्र है। यहाँ स्वर्ग के उपभोग के समान आलस नहीं है। अलका के अमृत्व में चेतना नहीं है ऐसी कोई भी चेतन्य शक्ति वहाँ नहीं है जैसी यक्ष ने पृथ्वी पर अनुभव की।

यक्ष कहता है कि मैंने इस पृथ्वी पर आकर ही प्रेम की परिभाषा को जाना। मैंने चकवे के नेत्रों से रामगिरि को देखा है। मोरों के पंखों का गिरना मैंने अब समझा है। टूटे अण्डे की वेदना मैं अब जान सका हूँ। पुष्पों का शाखाओं से अलग होना मैंने अब अनुभव किया है। शरीर की अनुपस्थिति में भी प्रेम के भाष्य को जाना है। यह पृथ्वी आनन्दलोक है। यहाँ इस पृथ्वी पर वह सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है जो अलकापुरी में यक्ष ने प्राप्त किया था। निस्संदेह इसलिए स्वर्ग से भी अधिक पृथ्वी पर कुछ विशेष है। अतः यह पृथ्वी बहुमान के योग्य है।

2. धर्म

भारत धर्मप्राण एवं धर्मप्रधान देश है। यहाँ नैतिकता, आचार एवं उदात्तता सभी के पीछे धर्म निहित है। यहाँ की समाज व्यवस्था, यहाँ के सभी धर्म एवं दर्शन धर्म से अनुशासित एवं अनुप्राणित है। **'आचारः परमो धर्मः'**, **'अहिंसा परमो धर्मः'**, **'सत्यं वद, धर्म चर'** आदि वाक्य भारतीय समाज के आदर्श सूत्र हैं।

धर्म क्या है, धर्म का स्वरूप क्या है, धर्म की परिभाषा क्या है? यह सब चिन्तन का विषय है। संक्षेप में कहें तो कह सकते हैं कि धर्म ही ऋत है। धर्म वस्तु एवं पदार्थ का स्वभाव है; **'वस्तु स्वभावो धर्म।'**[40] पवन का गतिशील होना, अग्नि का ज्वलनशील एवं दाहक होना तथा जल का शील होना धर्म है। इसी तरह प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों, इन्द्रियों एवं आत्मा के स्वभाव गत धर्म होते हैं। जल में ऊष्मा या उबाल आना विकार है; यह निरन्तर या शाश्वत नहीं रहता। अन्त में जल शीतल ही हो जाता है। ऐसे ही मनुष्य का क्रोध ईर्ष्या विकार हैं जो शाश्वत नहीं रहते। स्पष्ट है कि स्वभाव ही धर्म है। यह धर्म प्रकृति का आधार है एवं प्रेरणा स्रोत है। प्रकृति से धर्म की शिक्षा प्राप्त होती है। ऋतु संचरण, जन्म मरण एवं वायु के संचरण आदि से धर्म की महत्ता का ही बोध होता है। धर्म शाश्वत है, धर्म ही इस नाशवान संसार में सदैव मनुष्य के साथ रहता है भगवान मनु ने भी कहा है–

"एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण सम नाशं सर्वमन्यद्हि गच्छति।।"[41]

भारतीय ऋषियों एवं विचारकों के अनुसार धर्म मानव जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। अतएव कहा गया है–

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मों हतोऽवधीत्।।"[42]

वस्तुतः मानव जीवन में सुख–दुःख, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य तथा स्वर्ग, मुक्ति या आनन्द जैसे विषयों से सम्बद्ध चिन्तन प्रक्रिया में दार्शनिकों, विचारकों एवं ऋषियों ने जो योजनाएँ बनाई, जो व्यवस्था दी तथा जो विधान किया, वे सब धर्म के अन्तर्गत ही आती है। विविध परिस्थितियों में मनुष्य कैसा व्यवहार करें, यह भी धर्म का ही आचारशास्त्र है।

धर्म शब्द बहुत व्यापक है संक्षेप में धर्म जीवन का मूल आधार है इसीलिए कहा गया है **"धारणाद् धर्म इत्याहुः।"** धर्म ही मानव मात्र के अभ्युदय एवं आनन्द प्राप्ति का सोपान है– **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'** धर्म ही मानवीयता का प्रेरण स्रोत एवं प्रकाश स्तम्भ है। आचार्य मनु के अनुसार–

"वेदोऽखिलोधर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।"[43]

भारतीय धर्म की आध्यात्मिक – आधिभौतिक तथा आधिदैविक दृष्टि को डॉ. हर्षदेव माधव ने यक्ष की डायरी में उत्कृष्टतम रूप में चरितार्थ किया है डॉ. माधव के अनुसार इस डायरी में धर्म के भिन्न–भिन्न रूप दृष्टिगत होते हैं।

पतिव्रत धर्म – पार्थिवी तथा यक्षिणी दोनों का पतिव्रत धर्म इस समस्त संसार के लिए उदाहरण स्वरुप है यक्षिणी अपने धर्म का पालन करने के लिए कुबेर की स्वर्ण नगरी में विरह के दिनों को काटती है और अपने पति का इंतजार करती रहती है। नव–नवेली वधू अन्न कणों को गिन–गिनकर एक–एक दिन को और एक–एक पल को काटती है। इसी प्रकार पार्थिवी भी अपने पतिव्रत धर्म का पूर्णरूपेण पालन करती है, जिसे निभाने के लिए पार्थिवी कई वर्षों ही नहीं अपितु कई जन्मों तक प्रतीक्षा करती है, कई जन्मों के पश्चात् हुये मिलन में भी निस्वार्थ रूप से अपने धर्म का पालन करती है। पार्थिवी यक्ष को बन्धन में बांधकर नही रखती अपितु वह स्वयं

वन में गमन कर अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती है। वह यक्ष को किसी दुविधा मं नहीं डालती और न ही यक्ष को अलकापुरी जाने से रोकती है बल्कि स्वयं गर्भवती होने पर भी वन में रहकर अपने पुत्र का पालन–पोषण स्वीकार करती है। पार्थिवी यक्ष को अपने पुत्र–मोह में नहीं बांधती। वह अकेले ही अपने धर्म का पालन सहर्ष स्वीकार करती है और वह यक्षिणी यदि इस पृथ्वी पर आकर निवास करे तो उसे भी अपनी सखि रूप में स्वीकार करने की कहती है। पार्थिवी यक्ष के साथ रामगिरि में बिताये गये कुछ समय से संतुष्ट होकर अपने धर्म का पालन करती है।

पितृसेवा धर्म – मातृदेवो भव पितृदेवो भव–तैत्तिरीयोपनिषद् के मंत्र का अनुसरण करते हुये पार्थिवी पितृ सेवाधर्म का आचरण करती है और अपने पिता महर्षि शांखायन की सेवा करती है जब पार्थिवी को अपने पिता के रोम ग्रस्त होने का पता चलता है तो वह कई जन्मों के पश्चात् मिले हुए यक्ष को छोड़कर कुछ दिनों तक कृशकाय व रोगग्रस्त पिता की सेवा के लिये प्रस्थान करती है ताकि वह नीरोग हो जाये।

यक्ष का धर्म – यक्ष भी अपने धर्म का पूर्णतया निर्वाह करता है। यक्ष अलका में निवास करने वाली अपनी पत्नी को पृथ्वी पर आने के पश्चात् एक क्षण के लिए भी नहीं भुलाता है और पार्थिवी से विवाह करने से पहले भी यक्षिणी की अनुमति लेता है तथा उसे पृथ्वी पर आकर उसके साथ रहने का निमन्त्रण देता है। यक्ष स्वामी कुबेर के प्रति भी अपने धर्म का निर्वाह करता है। यक्षेश्वर कुबेर से किसी प्रकार की शिकायत न करके उनकी उदारता हेतु कृतकृत्य ज्ञापन करता है कि– "आपने मेरे लिए जो कृपा की है उसके लिए मैं ऋणी हूँ। आपके कारण ही मैने पार्थिवी के परिचय से स्वतंत्रता की परिभाषा जानी है तथा स्वर्ग से भी अधिक सुख प्राप्त करने में समर्थ मधुविधा से मैंने कुण्डलिनी की जाग्रतावस्था का अनुभव किया है।"[44] आप कृपा करके रत्नेश्वर को भी क्षमा कर दीजियेगा। अब मेरे मन में रत्नेश्वर के प्रति किसी प्रकार का क्रोध नहीं है और कोई शिकायत नहीं है। शायद यही नियति थी। इस प्रकार यक्ष स्वामीकुबेर के प्रति अपनी सच्ची निष्ठा का परिचय देकर अपने धर्म का निर्वाह करता है।

जीवन दर्शन – अनादि काल से चलते हुए संसार–प्रवाह में आज तक कितने महाकवि दार्शनिक, शास्त्रकार आये और उन्होंने जीवन तत्त्व के जटिल रूप को भली–भाँति समझने का प्रयत्न किया। उनके विचारों का प्रतिबिम्ब शास्त्रों और काव्यों में मिलता है। कहा जा सकता है कि इस विचित्रतापूर्ण विशाल संसार में सबसे उत्कृष्ट, महत्त्वपूर्ण और अधिक उपभोग्य वस्तु जीवन ही है। जीवन से बढ़कर मधुर और स्पृहणीय तत्त्व इस संसार में न है और न होगा। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है– **जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।** जीव जब तक संसार में प्राणवायु के साथ शरीर धारण करता है, उस कालखण्ड को जीवन कहते हैं। अन्य शब्द में जन्म से शुरु करके शरीरविच्छेद तक प्राणवायु की समयसीमा को जीवन कहते हैं।

प्राचीन संस्कृत–वाङ्मय में, विशेषतः स्तोत्र साहित्य में जीवन के दर्शन और सूक्ष्म दृष्टिकोण का भली–भांति विचार–विमर्श हुआ है इसी का एक सुंदर दृष्टान्त है–

"मम जीवनमीनमिमं पतितं मरुघोरभुवीह सुवीहमहो।
करुणाब्धिचलोर्मिजलानयनम् जनतारण तारय तापितलम्।।"[45]

डॉ. हर्षदेव माधव अपने काव्य–संकलन **'निष्क्रान्ताः सर्वे'** में जीवन–विषयक विचारों को इस तरह संजोया है–

"जीवनं यत्र 'हृदयं' स्पन्दते,/जीवनं यत्र कीलकः व्यथयति/यत्र च 'शरः' 'कवचं' 'रथं' च विदीर्य/सर्वं नूतने जीवने बलात् प्रवेशयति।"[46]

आधुनिक संस्कृत–साहित्य–जगत् में हमेशा नूतन सर्जन करने वाले कवि माधव जीवन की लाक्षणिकताओं को 'ग़ज़ल' के रूप में पेश करते हैं–

"खण्डितं श्वासै×च नष्टं जीवितम्।/पुष्पवद् घ्रातं च पिष्टं जीवितम्।।"
मिश्रितं हालाहलं मृत्योर्पुनः।/मद्यवद् दत्तं न मिष्टं जीवितम्।।
विप्रयोगोऽस्ति तनुच्छायानिभः।/केन कथितं मूर्ख! इष्टं जीवितम्।।
धूमवद् जीवस्य नष्टाऽपि कथा।/भस्मनि दग्धं च शिष्टं जीवितम्।।"[47]

‘मूकोरामगिरिर्भूत्वा’ में डॉ. माधव पार्थिवी के माध्यम से जीवन को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं। यक्ष अलका से निष्कासन होने से दुःखी होकर अवसाद की अवस्था में पहुँच जाता है पार्थिवी उसके जीवन पथ को नवीन आयाम एवं नवीन आकार देती है कि–

“पतनमस्ति अपराधस्य परिणामरूपम् अतः सदैव मनसि भवान् संतप्तो भवति। किन्तु यात्रा तु यथेच्छं भवति। यात्रा पुण्यदायिनी भवति। प्रतिक्षणं शुभसंकल्पवती भवति यात्रा। यथा मनुष्यः स्वोदरं पूरयति तदा अन्नम् अन्नमस्ति, किन्तु यदा प्रभोः समक्षं तत् स्थापयति तदा नैवेद्यं भवति, तथैव भवान् प्रतिक्षणं पृथ्व्या दर्शनस्य हर्षम् अनुभवतु तदा इयं प्रवृत्तिः यात्राकल्पा भाविष्यति। पृथिव्या दर्शनमपि नित्यपरिवर्तनशीलं पुण्यदम् अस्ति। अत्र निष्प्रयोजनं नास्ति किंचित्। तव यात्राया अपि प्रयोजनं भवेत्। कदाचित् यक्षेश्वररस्य शापमिषेणायम् अनुग्रह एव स्यात्।”[48]

इस प्रकार पार्थिवी के मार्गदर्शन के पश्चात् यक्ष अपने जीवन के विषय में चिन्तन करता है कि क्या मैंने भोगों का उपभोग करने के लिए कुबेर की सेवा की। मैंने अपनी चेतना को तुच्छ देवताओं के लिए गुलाम बना दिया अर्थात् अपना स्वाभिमान नष्ट कर दिया। यक्षत्व प्राप्ति अनुग्रह था अथवा शाप इस प्रकार विचार करता हुआ यक्ष का जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो जाता है। पार्थिवी का जीवन–दर्शन यक्ष के शाप को पृथ्वी यात्रा में परिवर्तित कर देता है और यह परिवर्तन उसके जीवन को पूर्णरूपेण बदल देता है यक्ष को अपने अतीत को जानने का अवसर प्राप्त होता है और अपने पूर्वजन्मों का प्रेम भी प्राप्त होता है जिसकी प्रतीक्षा पार्थिवी कई जन्मों तक करती है। इस प्रकार यक्ष का जीवन भोग विलास से सत्य और अध्यात्म की ओर अग्रसर होता है। प्रारम्भ में शाप के कारण कुबेर को दोष देने वाला यक्ष कुबेर को उसकी उदारता हेतु धन्यवाद देता है। हर बात के दो पहलू अच्छे व बुरे दोनों होते हैं यह सिर्फ दृष्टिकोण की भिन्नता होती है अब यक्ष कुबेर के प्रति कृतज्ञ है। इस प्रकार यक्ष के जीवन में पूर्णतया परिवर्तन हो जाता है।

4. सकारात्मक सोच

अलकापुरी से निष्कासन पश्चात् आशा का बंधन ही यक्ष को जीवित रखता है। आशा जीवन की वह ज्योति है जो मनुष्य का अंतिम समय तक साथ निभाती है आशा रूपी बंधन के सहारे व्यक्ति बड़े से बड़े दुःख व कठिनाई को भी पार कर जाते हैं। यक्ष भी अपने

सकारात्मक विचारों से अपने विरह के दिनों को व्यतीत करता है। यक्ष अपनी पत्नी को याद करते हुये विचार करता है कि– जिस प्रकार चन्द्रमा की एक कला अंधकार के साथ लड़ने की इच्छा से अपनी कांति फैलाने का साहस कर रही है उसी प्रकार मेरी कुटी (जीवन) में भी प्रकाश की एक रेखा सी प्रविष्ट हो रही है उसी चन्द्र लेखा से मैं तुम्हारी मूर्ति अर्थात् (तुम्हें पाने का पूर्ण प्रयास) बनाने का प्रयास करूंगा यही चन्द्रलेखा अंधकार को जीतकर पूर्ण चन्द्रमा की जन्मदात्री होगी। यक्ष विरह के इन दिनों में आशा के बंधन को बाँधे रखता है वह वृक्षों से बातें करता है, बोलता है कि मैं वृक्ष की शाखाओं से तुम्हारा नाम कहूंगा, वृक्ष की शाखाएँ अन्य शाखाओं से, वायु के कान में पत्ते तुम्हारा नाम गायेगें, वायु आकाश से और आकाश में प्रतिध्वनि होगी जो महल के ऊपर व्याप्त गगन में सुनाई देगी इस प्रकार तुम्हारे तक मेरी वाणी पहुँच जायेगी। यक्ष का आशा बंधन ही है कि एक तिथि (दशमी) के क्षय होने पर विचार करता है कि मेरी शाप अवधि का एक दिन कम हुआ। इस प्रकार यक्ष अपने सकारात्मक विचारों के साथ अपने विरह के दिन व्यतीत कर रहा था परन्तु धीरे–धीरे यक्ष हिम्मत हारकर निराशा के अंधकार में प्रवेश करने लगता है तभी पार्थिवी का यक्ष के जीवन में प्रवेश होता है। पार्थिवी यक्ष के जीवन से नकारात्मक विचारों को निकालकर सकारात्मकता का संचार करती है। अलका से निष्कासन से दुःखी यक्ष से कहती है कि– यदि आप पृथ्वी पर पतन को अपनी पृथ्वी यात्रा में बदल दोगे तो यह आपकी विजय होगी और कुबेर की पराजय। यक्ष के घने अंधकारमय जीवन में यह विचार उजाले की किरण के समान थे। जीवन के प्रति इसी सकारात्मकता ने यक्ष को नया जीवन प्रदान किया।

विचारों में सकारात्मकता होने से ही इस पृथ्वी पर आशा का बंधन कभी नहीं टूटता है यहाँ अमावस्या में भी पूर्णिमा की प्रतीक्षा रहती है। अंधकार में प्रकाश की उपासना की जाती है, मृत्यु में भी अमृत का अन्वेषण किया जाता है, अमरत्व में शाश्वत सुख की अनुभूति नहीं की जाती बल्कि दुःख में भी दीनता को त्यागकर सुख प्राप्ति के लिये संघर्ष किया जाता है। सकारात्मक सोच से ही यक्ष में शाप रूपी महाभारत को जीतने का हौंसला है जबकि टूटे हुये रथ पर शस्त्रहीन बैठा हुआ सैंकड़ों भागों में खण्डित भी युद्ध के लिए तत्पर है। दुर्बल मनुष्य रोगग्रस्त होकर भी जीवन के लिए प्रयत्नशील है। "जीर्ण पत्तों को हटाकर वृक्ष पुनः वायु के साथ नृत्य करते हैं। मृग तृष्णा को पीकर भी हिरण हिरणी से प्रेम करता है। पराजित व्यक्ति पुनः जीतने की इच्छा करके आक्रमण करते है। जाल में मछलियाँ प्राप्त

करके भी धीवर पुनः जीतने की इच्छा करके आक्रमण करते हैं। जाल में मछलियाँ प्राप्त करके भी धीवर पुनः तट को जाते हैं। प्रयत्नों की निराशा रहित गति है। जिजीविषा (जीने की इच्छा) के कारण दुःख में भी सुख की अनुभूति हैं।"[49] यह सब जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का ही परिणाम है।

5. पुनर्जन्म में विश्वास

यक्ष की इस डायरी में पूर्वजन्म और पूर्वजन्मकृत पुण्यों के प्रभाव पर अटूट विश्वास व्यक्त हुआ है इस डायरी के प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड में भ्रमण के रसिक ब्रह्मवेता ऋषि नारद यक्ष को अन्तिम तीन जन्मों का रहस्य कहते हैं।[50]

प्रथम जन्म में चोर कर्म में निपुण दुष्ट था किन्तु चोरी किया गया धन, राजदण्ड से स्वयं को बचाने के लिये निर्जन शिव मन्दिर में रख दिया गया अतः भगवान शिव ने कृपा की।

द्वितीय जन्म में वैश्यकुल में जन्म हुआ इस जन्म में छल से प्राप्त धन द्वारा देवमन्दिर का निर्माण कराया। पापकर्मों की विशुद्धि हेतु काशी जाने के इच्छुक छात्रों के लिये यात्रा, धन, भोजन, वस्त्र आदि प्रदान किए।

तृतीय जन्म में विदिशा नगरी के राजकुल में जन्म हुआ। विद्वानों को दान, साधुओं के लिये सम्मान गुरुजनों के लिए आजीविका के साधन, छात्रों के लिए आश्रमों का निर्माण, शिल्पियों को मान देकर यश प्राप्त किया। दुःख जैसा शब्द प्रजा के शब्दकोश में नहीं था। पुण्यकर्मो के प्रभाव से यक्षत्व की प्राप्ति हुई और पुण्यों से ही अलका में निवास प्राप्त हुआ।

पूर्वकृत पुण्यों के प्रभाव से ही तीनों लोकों में विख्यात, कीर्ति वाले, सुर–असुर, सिद्ध समूह द्वारा वन्दित चरण–युगल वाले महादयालु, दिव्यलोकवासी, इन्द्र के मुकुट के घर्षण से कठोर नाखूनों वाले भगवान बृहस्पति द्वारा प्रदत्त, यक्ष को दिव्य खड्गमालामंत्र का स्मरण हो आता है। जिसके सिद्ध होने पर वह अठारह महाद्वीपों का भोग करने वाला सम्राट होता है।

पूर्वजन्म में विश्वास के कारण ही पार्थिवी कई जन्मों तक यक्ष के इस पृथ्वी पर आने की प्रतीक्षा करती है पार्थिवी को उसके पुण्यों के प्रभाव से पूर्वजन्म का सबकुछ स्मरण रहता है और वह यक्ष को भी उन स्थानों पर ले जाकर सबकुछ स्मरण कराती है। उनके पुण्यों के प्रभाव से ही कई जन्मों के पवित्र–प्रेम का मिलन होता है।

6. पृथ्वी सौन्दर्य का वर्णन

पृथ्वी का सौन्दर्य अनुपम है यह अवर्णनीय विषय है जिसे शब्दों के द्वारा बांधा नहीं जा सकता। स्वर्ण नगरी अलका में निवास करने वाला यक्ष जब कुबेर के शाप से शापित होकर इस पृथ्वी पर आता है तो पृथ्वी के इस प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है कि– **"यहाँ दूर पर्वत की तलहटी में पलाश के फूल दिखाई दे रहे हैं। शीतल वायु खिले हुये पुष्पों का चुम्बन कर रही है। तृणम्लान हैं। उन पर पड़ी हुई ओस की बूंदों के स्पर्श से शीतल वायु मन्द मन्द बह रही है। पके हुये शालि–धान्य से रमणीय पृथ्वी के अनेक भाग अत्यधिक रमणीय कान्ति को धारण कर रहे हैं। मृग सूर्य की ऊष्मा का सेवन कर रहे हैं। कुछ दूरी पर मृगी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है। तपस्वियों की कुटियों से यज्ञ का धुंआ बाहर निकल रहा है। पृथ्वी के इस रूप को देखकर मैं सहसा ही अपनी अलकापुरी में तुम्हारा स्मरण कर रहा हूँ।"**[51] इस प्रकार पृथ्वी के इस अनुपम सौन्दर्य को देखकर यक्ष कहता है कि स्वर्ण नगरी अलका में तो सिर्फ एक ही चन्द्रमा है जबकि इस पृथ्वी पर ओस की हर एक बूंद चंद्रमा के समान है। अलका में प्रकाश चेतनाहीन, परिवर्तन रहित अर्थात् जीवन्तता से रहित है वहाँ नित्य विकसित होने वाले पुष्पों में विकास का हर्ष नहीं है।

3. साहित्यिक आयाम

साहित्य समाज का दर्पण होता है। प्रत्येक युग के समय की झाँकी तत्कालीन साहित्य के पृष्ठों में अपने स्वरूप का बोध कराती है। वहाँ उस समय की सत्यता भी होता है, शिवत्व भी और सौन्दर्य का दृगुन्मेष भी। भाषा, शिल्प और अभिव्यंजना के वैविध्य के साथ युग के चरित्र के विविधवर्णी चित्र जिस वाङ्मय में हो, वे ही युगबोध के वास्तविक प्रतिपादक होते हैं और यह भी सत्य है कि कोई भी सचेता कवि अपने युग के सत्याभिव्यंजन में पराङ्मुख नहीं होता।[52]

'संसरति इति संसारः' इस उक्ति के अनुसार इस संसार में पल–पल परिवर्तन होता ही रहता है और साहित्य इस संसार का प्रतिबिम्ब है, इसीलिए इसमें यदि वैविध्यता देखने को मिलती है तो इसमें कोई भी अतिशयोक्ति नहीं है।[53] जब हम वैश्विकता की बात कर रहे होते हैं तो नित्य, नई उर्मियों से सम्पन्न और वैविध्यमय साहित्य की रचना होना अपने आप

में ही एक अनोखी बात है। समयानुसार इस यांत्रिक युग में गाँव–गाँव, नगर–नगर और देश–देश के बीच में अंतर भी कम हो गया और उसी के कारण सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास हो रहा है।

साहित्य में जो जीवन–प्रदायिनी शक्ति है, वह किसी औषध में नहीं। साहित्य में जो अनिवर्चनीय आनन्द है, वह साधना के कठिन मार्ग में नहीं। साहित्य हमारी वृत्तियों को पवित्र करके हमारे संस्कारों को उज्ज्वल बनाता है और हम में विविध गुण भरता है। वास्तव में यदि साहित्य न होता तो समाज और राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता था।[54] साहित्य आत्मतृप्ति कारक मानसिक भोजन है जिस प्रकार अच्छे स्वास्थ्यप्रद भोजन से हमारा स्थूल शरीर बलिष्ठ होता है, उसी प्रकार सत्साहित्य से हमारी बुद्धि और विचार शक्ति बढ़ती है। उससे आत्म–तुष्टि होकर अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। यह अलौकिक आनन्द ही मनुष्य की उन्नति में सहायक है।

आधुनिक कवियों ने साहित्य की शक्ति को जानकर ही उत्तम साहित्यिक पक्ष से युक्त साहित्य की रचना की है। डॉ. हर्षदेव माधव ने 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' डायरी का साहित्यिक विश्लेषण सुदृढ़ता से प्रस्तुत किया है उनकी डायरी में भाषा, अलंकारों का प्रयोग, नवीन सूक्तियों का प्रयोग बेजोड़ है जिसका विश्लेषण इस प्रकार है–

भाषा – भाषा मानव–जीवन की प्राचीनतम उपलब्धि है। भाषा का अध्ययन भारत में चिरकाल से होता आ रहा है। वेदों में भी भाषा के सम्बन्ध में अनेकशः विचार किया गया है–

"वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पश्वोमनुष्याः।
वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी।।"[55]

व्याकरण महाभाष्य में भी पतंजलि ने लिखा है–

"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गेलोके कामधुग् भवति।
दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।।"[56]

भाषा वह है जिसे बोला जाए क्योंकि भाषा शब्द की उत्पत्ति 'भाष्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है बोलना या कहना।

इस प्रकार भाषा मानव उच्चारणवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भी समाज या वर्ग विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान–प्रदान या विनिमय करते हैं।

डॉ. हर्षदेव माधव ने अपनी रचनाओं में गूढ़ार्थ व उत्कृष्ट भाषा का प्रयोग किया है। जिसका एक उदाहरण मूकोरामगिरिर्भूत्वा है। यह गद्य की नवीन विधा डायरी शैली में लिखी गई यक्ष की वासरिका है।

इसका गद्य सहज–सरल व काव्यात्मक है। कहीं भी कोई शब्दाडम्बर नहीं है। सहज व सरल–सरल तरीके से लेखक अपनी बात कहता है। काव्यात्मक रूप में निबद्ध यह गद्य ऐसा प्रतीत होता है मानों जैसे कविता या मुक्त छंद है। पाठक इन मुक्त छंदों को पढ़कर आनन्द का अनुभव करते हैं। आधुनिक गद्य के इस नवीन प्रयोग में कवि सिद्धहस्त है। लेखक अपने सरल–सरल वाक्यों के द्वारा अपने पात्रों की व्यथा को आसानी से व्यक्त कर देते हैं उसके लिए उन्हें शब्दों के भारी जमावड़े की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जैसे कुबेर के शाप से व्यथित यक्ष की वेदना इस प्रकार है– **"किन्तु नात्र पूर्णिमा नास्ति स्वर्गसुख स्वप्नः नास्ति सुवर्णपद्म सुगन्धः, नास्ति त्वन्मुखचन्द्रद्युतिः। मम मनसि प्रसृतोऽस्ति गाढगाढ़ोऽन्धकारः। प्रसृतमस्ति खण्डितवीणामौनम्, प्रसृताऽस्ति शून्यकुटीरे वेदना। किमयं मृत्युलोकानुभवः? किमयं शापप्रभावः? किमयमेवास्ति यक्षेश्वरक्रोधजनितो नियतिप्रहारः?"**[57]

यक्ष का विरह सूखे तिनकों पर ओस की बूंदों को देखकर और बढ़ जाता है। रमणीय सूर्योदय मन को प्रसन्नता देता है। यक्ष अपनी तुलना एक लंगड़े हिरन से करता है कि मैं भी समय के इस मार्ग पर लंगड़ा हो गया हूँ। चरण तो वैसे ही है परन्तु उनमें गति नहीं है। शरीर तो वही है परन्तु उसमें चेतना नहीं है सूर्योदय तो वैसा ही होता है परन्तु मेरी कमलिनी सदृश तुम दुःखी हो रही होंगी यह सोचकर प्रातःकाल होने पर भी मेरे चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो रहा है। यह लंगड़ा हिरन तो फिर भी तेजगति से दौड़ेगा किन्तु इस आघात से आहत मेरा हृदय किसके लिये धड़क रहा है? इस उदाहरण के माध्यम से कवि ने कितनी सरलता से व सहजता से विरही यक्ष के मन की व्याकुलता व वेदना को दर्शाया है। भाषा की सरलता का एक उदाहरण इस प्रकार है–

"अविहा! मम यक्षत्वस्य स्मरणं जातम्।
भयरहितमस्तित्वमेव अमरत्वस्य चिह्नमस्ति।।"[58]

अर्थात् मुझे अपना यक्षत्व स्मरण हो आया है। मेरा अस्तित्व ही भयरहित है जो अमरत्व का चिह्न है। इसमें लेखक ने अपने शब्दों के प्रभाव से यक्ष को निर्भीक व्यक्तित्व बना दिया अर्थात् कुबेर के शाप से यक्ष का सब–कुछ नष्ट नहीं हुआ है अपितु यक्ष की निर्भयता अब भी उसके पास है। कवि द्विअर्थक भाषा का प्रयोग करके भी भाषा की श्रेष्ठता को दर्शाता है। जैसे– **"अहो तरलत्वं देवाङ्गनानाम्! अपि किं निर्व्याज साहाय्यस्य ऋणस्वीकारोऽपि न भवेत्? केवलं कामस्य साम्राज्यमेव त्रिभुवने प्रभवति? कीदृशीयं रतिर्या कामुक मेव पश्यति?"**[59] अर्थात् देवाङ्गनाओं की चंचलता के माध्यम से कवि यह दर्शाना चाहता है कि क्या निस्वार्थ सहायता का कोई मूल्य नहीं है क्या काम का ही साम्राज्य तीनों लोकों में व्याप्त है यह कैसी रति है। अर्थात् कामुक व्यक्ति सम्पूर्ण जगत को काममय देखता है। यहाँ 'रति' और 'कामदेव' को संयोग रूप में चित्रित करना ही कवि का उद्देश्य है।

कवि के शब्दों में साधारणता के साथ–साथ भावों की गम्भीरता भी कूट–कूट कर भरी हुई है। इस डायरी की एक–एक पंक्ति गंभीर भावार्थ लिये हुए है। जैसे–

"छिद्रेष्वनर्था इव संख्यातीताः कीटाः धरणीमुपयान्ति व्योम्नः। हा धिक्! कुटिला दुर्जना निशाचरा द्विजानां राजनि शासति शासनं कुर्वन्ति। परोपकार धृतव्रताः सज्जनाः पीड़यन्ते दानवैः। सुरलोकोऽपि न भयान्मुक्तो वर्तते।"[60]

अर्थात् एक छिद्र में से भी अनेको अनर्थ रूपी कीट प्रवेश कर सकते हैं अर्थात् एक गलती से ही व्यक्ति का पतन हो जाता है।

कवि इस पृथ्वीलोक की प्रशंसा अपने शब्दों के माध्यम से इस प्रकार करता है– **"धन्योऽयं लोको यत्र प्राप्यते शाश्वतंपदम्। प्रकृतिरेव भोगान् ददाति, किन्तु तपसा पूर्णता लभ्यते, या न लभ्यते दिव्यलोकेषु। दिव्यालोकास्तु वस्तुतः तपसां व्ययलोकाः। वस्तुतो धरित्र्यामेव पुण्यार्जनं शक्यम्। अत्रैव पंचभूतानां मायां क्षिप्त्वा जीवात्मा परमात्मनो दायादो भवति। अलौकिकोऽयं लोकः।"**[61]

अर्थात् दिव्यलोको में तप से पूर्णता प्राप्त नहीं होती है केवल तप से दिव्य लोक प्राप्त होते हैं वस्तुतः धरती पर ही प×चभूतों की माया फैंक कर जीवात्मा, परमात्मा में मिल जाती है। यह लोक अलौकिक है।

श्लेषयुक्त शब्दावली का प्रयोग भी कवि द्वारा स्थान–स्थान पर किया गया है– **"कुटीरालिन्दे पुष्पमयी रचनापि दृश्यते।"**[62] यहाँ आलिन्द का आभिप्राय चबूतरा भी है व शयनकक्ष भी है अतः दोनों अर्थों में यह अभिप्राय सार्थक है। **"यदि अयमशोको भवेत् तर्हि अहमपि अशोकोभवेयम्"**[63] अर्थात् यदि यह अशोक (वृक्षविशेष) हो जाये, तो मैं भी अशोक (शोकरहित) हो जाऊँ। यहाँ अशोक द्विअर्थक शब्द है। इसीप्रकार कवि द्वारा कथन में भी द्वित्वता व्यक्त की गई है जैसे–

"विष्णोर्भक्ता न पराभवं यान्ति, पराभवं नैव यान्ति।"

अर्थात् विष्णुभक्त कभी पराजय को प्राप्त नहीं होते, पराजय को कभी भी नहीं प्राप्त होते यहाँ कथन की द्वित्वता दृढ़ता को व्यक्त करती हैं।

डॉ. माधव के सहज व सरल आधुनिक गद्य में नवीन–नवीन शब्दों का प्रयोग किया गया है इनकी भाषा नित्य–नवीनता का वेशधारण करती है। निर्व्याज (निस्वार्थ), अष्टपाद, इष्ट्रगोप, मैनसिल, वासयष्टि, भवन सरोवर, कृतकपुरुष (बिजूका) अर्थात् बनावटी रूप में निर्मित किया गया पुरुष आकृति का पुतला, निर्गुण्डी (वृक्ष विशेष), लज्जालुपर्ण (छुई–मुई के पत्ते) वन्दनवार आदि अनेकों नवीन–नवीन शब्दों का प्रयोग डॉ. माधव ने सहजता से किया है। इनके शब्दों में कही आडम्बर नहीं है बल्कि ये ऐसे नवीन शब्दों का प्रयोग करते हैं जो साधारण पाठक के भी समझ आ जाता है तथा भाषा की नवीनता भी बनी रहती है। इनकी भाषा अलंकारों के बोझ तले दबी हुई नायिका के समान नहीं है अपितु ऐसे–ऐसे सौन्दर्ययुक्त आभूषणों से सजी हुई है जिससे उसका सौन्दर्य और बढ़ रहा है। डॉ. माधव की भाषा रूपी नायिका का सौन्दर्य अद्भुत है। इसकी भाषा की गम्भीरता व सौष्ठव निराला है जैसे–

"यदा भवान् मृत्योर्मौनं ज्ञास्यति, तदैव जीवनस्य भाष्यं वाचयितुं शक्ष्यति। यदा भवान् रोदनस्य वेदनां विस्मर्तुं क्षमो भविष्यति तदैव हास्यस्य मूल्यमपि ज्ञास्यति।"[64]

इसमें भावों की अगाध गम्भीरता विद्यमान है इसी प्रकार यक्ष–

"तारकान् गणयितुं प्रयत्नोऽपि कृतः", **"सहसा वर्षा वीणातन्तुषु अंगुलिं निधाय विद्युन् नृत्यति"**[65] अर्थात् सहसा वर्षा रूपी वीणा के तारों पर उंगली रखकर विद्युत नाचने लगी इत्यादि भाषा सौष्ठव के उत्कृष्टतम उदाहरण इस डायरी में है।

2. नवीन सूक्तियों का प्रयोग

यक्ष की डायरी 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' के लेखक डॉ. हर्षदेव माधव ने इस डायरी में सर्वथा नवीन प्रयोग किए हैं उन्होंने सर्वप्रथम नवीन प्रयोग इसे नवीन विधा (डायरी शैली) में लिखकर ही किया है डॉ. माधव ने इस डायरी का आगाज ही नवीनता से किया है जैसाकि किसी विद्वान के द्वारा कहा गया है जिसका आगाज अच्छा होता है उसका अंजाम भी अच्छा होता है। इस पूरी डायरी में नित्य नवीनता के दर्शन होते हैं कवि ने छोटी–छोटी सूक्तियों को पाठक के हृदय में गहराई तक पहुँचाया है तथा पाठक को सार्थक अर्थ का ज्ञान कराया है। कवि ने इस डायरी में अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया है जैसे– **"नास्त्यगोचरं स्वाधीनसिद्धि महात्मनां कृते।"**[66]

अर्थात् स्वाधीन सिद्धि वाले महात्माओं के लिए कुछ भी अदृष्ट नहीं होता उनके द्वारा सब कुछ प्राप्य है– **"धरित्र्यां बहुबहु ज्ञातव्यमस्ति"**[67]

यह पृथ्वी बहुमान के योग्य है यहाँ श्रम के बिना कुछ नहीं फलता क्योंकि यह पृथ्वी कर्मलोक है। यहाँ परिश्रम व कर्म ही श्रेष्ठ है। **"अति स्नेह पापशंकी"**[68]

अत्यधिक स्नेह ही पाप की आशंका करता है। **'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'** में महाकवि कालिदास भी शकुन्तला के संदर्भ में इस उक्ति का कथन करते हैं अर्थात् अत्यधिक प्रेम में व्यक्ति व्यर्थ की अनेकों शंकाएँ करके चिन्तित होता है।

"महात्मानः प्रकृत्यैव–ऋजुहृदयाः परोपकारिणः सन्ति।"

अर्थात् महात्मा स्वभाव से ही कोमलहृदय और परोपकारी होते है अर्थात् उनका स्वभाव ही कोमलता परोपकार से युक्त होता है जैसा कि नीतिशतक में महाकवि भर्तृहरि द्वारा भी कहा गया है–

परोपकाराय फलन्ति वृक्षा
परोपकाराय वहन्ति नद्या
परोपकाराय नगाः अपगा;
परोपकाराय संता विभूतयः।[69]

"दुर्गमकार्यसिद्धिः स्वजनसाहाय्येनैव लभ्यते।"[70]

अर्थात् दुर्गम कार्य की सिद्धि अर्थात् कठिनाई के समय में अपने लोग ही काम आते हैं। जो कठिनाई में साथ देता है वही वास्तव में अपना होता है।

"प्राणहरणं–कार्यं सुलभम्, प्राणत्राणकर्तव्यं दुर्लभमस्ति।"[71]

अर्थात् प्राण लेना आसान है परन्तु किसी व्यक्ति के प्राण बचाना अत्यन्त कठिन है। अर्थात् किसी बड़े से बड़े व्यक्ति के प्राणों को लेना अर्थात् जान से मारना आसान है जबकि छोटे से छोटे जीव चाहे वो चीटीं, मक्खी आदि ही हो उनके प्राणों को बचाना अत्यन्त ही कठिन है कोई भी बुरा कार्य करना आसान होता है परन्तु अच्छा कार्य करने में मनुष्य के पसीने आ जाते हैं।

"तादृशं खड्गमाप्नोति येन हस्तस्थितेन वै।
अष्टादशमहाद्वीपे सम्राड् भोक्ता भविष्यति।।"[72]

अर्थात् जो खड्गमन्त्र को प्राप्त करता है, जिसके द्वारा हाथ में स्थित हो जाता है वह अठारह महाद्वीपों का भोग करने वाला सम्राट होता है। **"किं नाम भोगा एव साध्याः सन्ति पुण्यैः।"**

"सेवकत्वे कुत्रास्ति स्वातंत्र्यं विचाराणां वा व्यवहाराणां वा।"[73]

गुलामी में विचारों और व्यवहार की स्वतन्त्रता कहाँ होती है अर्थात् जैसाकि कहा भी गया है। **'पराधीन सपनेहु सुख नाही'** पराधीन अर्थात् दूसरों के अधीन व्यक्ति को सपने में भी सुख नहीं है। **"यदि समुद्र तरणमपि शक्यं तर्हि किमन्यद् अशक्यं पौरुषाय।"**[74]

अर्थात् यदि समुद्र को पार करने जैसे असम्भव व दुष्कर कार्य को भी किया जा सकता है तो मनुष्य के पुरुषार्थ के लिए क्या असंभव है अर्थात् मनुष्य अपने पौरुष से वह सब प्राप्त कर सकता है जो वह चाहता है। पुरुषार्थ ही मनुष्य के जीवन में आनन्द का संचार करने में समर्थ है। पुरुषार्थी व्यक्ति के लिये इस समस्त सृष्टि में कुछ भी कार्य असंभव नहीं है।

डॉ. माधव की ये सूक्तियाँ गहन अर्थ की द्योतक है जिन्होंने यक्ष की इस डायरी को गूढार्थक बना दिया है। डॉ. माधव ऐसे प्रयोगों के सिद्धहस्त कवि है। ये प्रयोग ही उन्हें भीड़ से अलग करते हैं और राष्ट्रवादी कवि की पहचान दिलाते हैं।

3. अलंकारों का प्रयोग

डॉ. माधव का गद्य सहज व सरल है इसमें शब्दों अलंकारों का जंगल नहीं है अपितु अलंकारों का ऐसा सुन्दर व साधारण रूप में प्रयोग किया है जो पाठक के हृदय को आकृष्ट करता है। पाठक को आनन्द व सौन्दर्य की अनुभूति कराता है अलंकारों का जटिल प्रयोग नहीं हुआ है ताकि पाठक का मस्तिष्क बोझिल न हो। उपमा अलंकार के प्रयोग में कवि बेजोड़ प्रतीत होते हैं कवि ऐसी–ऐसी सुन्दर उपमा प्रयुक्त करता है कि आश्चर्य होता है। कवि की डायरी की प्रत्येक पंक्ति उपमाओं से भरी हुई है जैसे–

'देवाङ्गनाओं के शेष अंगराग के सदृश बादल', कल्पलता के वस्त्र के समान वातावरण, सांप के पेट के सदृश आकाश।[75] यहाँ कवि बादलों की उपमा देवाङ्गना की अंगराग से तथा वातावरण की कल्पलता के वस्त्र के समान, आकाश को सांप के पेट के सदृश बताता है। **'रिक्तः श्वेतशशक सदृशो जलदखण्डः'**, अर्थात् जलरहित बादल सफेद खरगोश के समान प्रतीत होता है। हार के मध्य में मणि के समान सूर्य ने पूर्व दिशा को त्याग दिया है। **'केतकीकुसुमपाण्डुना शशांकेन चूर्णमुष्टिरिव धवल–धवलांशु समूहो रजत कुम्भसदृशो हिमांशुः कर्पूरगौर–पयोधराकारोनभो।'**[76]

यहाँ कवि चन्द्रमा को चांदी के घड़े के समान तथा कर्पूर के समान श्वेत पयोधराकार आकाश को बताता है। जिस प्रकार चांदी के घड़े में उज्ज्वलता व दिव्यता होती है उसी प्रकार चन्द्रमा में दिव्यता सुशोभित होती है। चन्द्रमा के उदित होने पर जिसका पति परदेश गया हो ऐसी नायिका के समान म्लान मुख वाली पूर्वदिशा प्रसन्न होती है।

यक्ष यक्षिणी को पीली प्रिय› लता की उपमा देता है जिस प्रकार प्रिय› लता के पत्ते रोज गिर रहे हैं जिससे उसकी चेतना शक्ति टहनियाँ आज शोक की मूर्ति जैसी लग रही है उसी प्रकार हास्य से रहित, श्रृंगार से रहित, अलंकारविहीन तुम भी शोक मूर्ति सदृश ही लग रही होंगी। ओस कणों से आच्छादित पर्वतशिखर ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों कपास के वस्त्र धारण किए हो। धतुरे के फूल उन्मत्त सर्प के समान शोभित हो रहे हैं।

डॉ. माधव ने इस डायरी में नवीन उपमाओं का प्रयोग किया है–

"पचेलिमं दाड़िमकल्पं सूर्यबिम्बं कालेन भगवता खादितम् तस्योज्झिता त्वगिव सन्ध्या कल्पते। तारामयानि रक्तबीजानि विकीर्णानि क्षणवारम्। पक्वदाडिमफलकल्पं सूर्यबिम्बं

निपतितम्। मृदितदाडिमबीजवर्णो विकीर्णः सर्वत्र। कदलीफलत्वक्सदृशी पश्चिमा दिक् जाता कपिशा। सहसा तमिस्राजलात् लक्ष्म्या गजमस्तकमिव उत्थितं चन्द्रबिम्बम्।"[77]

यहाँ संध्या सूर्य के द्वारा पके अनार के छिलके के समान, तारों के रूप में लाल बीज, पके हुये अनार के फल के समान सूर्य बिम्ब, मसले हुये अनार के बीजों के रस के समान रंग चारों ओर फैल गया। केले के फल की त्वचा के समान पश्चिम दिशा कपिश (मटमेले) वर्ण की, हाथी के मस्तक के समान चन्द्रमा इत्यादि अवर्णनीय उपमा कवि द्वारा प्रयोग की गई है जो नवीनतम है। इसी प्रकार रुई के समान बादलों का समूह, रजोदर्शन से पीड़ित कन्या के समान आकाश, पापकर्म में प्रवृत्त हुए मन के समान अन्धकार, राक्षसों से भयभीत जानकी के समान कौमुदी, वेद विद्या से रहित ब्राह्मण के समान प्रकाश आदि नित्य नवीन उपमाओं का प्रयोग किया गया है। विद्रुम लता के समान लाल संध्या, तपोवन की कपिला धेनु के समान आनन्ददायी संध्या, सोने के रस के समान पीले सूर्य की प्रकाशमय ऊष्मा, कृष्ण मृगचर्म के समान अंधकार, हंस के समान श्वेत चाँदनी, श्वेत सिन्धुवार पुष्पों के समान पाण्डुवर्ण चन्द्रमा की किरणें दसों दिशाओं में फेल गई है। डॉ. माधव उपमाओं के सम्राट तो है ही साथ ही श्लेष अलंकार का भी लेखक ने सुन्दर प्रयोग किया है। उदाहरणतः

"कुटीरालिन्दे पुष्पमयी रचनापि दृश्यते।"

यहाँ **आलिन्द** का अभिप्राय कुटी आगे चबूतरे तथा **शयनकक्ष** दोनों से है दोनों ही अर्थों में यह अभिप्राय सार्थक है। **"तथापि अशोको भूत्वा प्रतिपालयिष्यामि त्वाम्। यदि अयमशोको भवेत् तर्हि अहमपि अशोकोभवेयम्।"**[78]

अर्थात् फिर भी अशोक होकर मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ यहाँ **अशोक** यह शब्द द्विअर्थक है अशोक से अभिप्राय **वृक्षविशेष** तथा **शोकरहित** दोनों से है अर्थात् यदि यह अशोक (वृक्षविशेष) हो जाये, तो मैं भी अशोक (शोकरहित) हो जाऊँ।

डॉ. माधव देवता व पितरों के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं– **कुमुदचन्द्रकान्तिवतः, बालसूर्यप्रतिमाः, सुवर्णतेजोमयाः, नीलोत्पलदलश्यामाः पितरो**[79] अर्थात् पितरों की कान्ति कुमुद के समान, उगते हुए सूर्य के समान बालरूप अप्रतिमता, सोने के समान उज्ज्वल प्रकाश तथा नीलकमल के समान श्यामलता रूप देवों का सौन्दर्य अलौकिक है।

डॉ. हर्षदेव माधव उपमा के प्रयोग में सिद्धहस्त है वे कालिदास के मेघदूत की केवल कथा का अनुसरण मात्र नहीं करते अपितु **'उपमाकालिदासस्य'** को आदर्श मानकर ऐसी बेजोड़ व नवीनतम' उपमाएँ ढूंढ कर लाये है कि वे कालिदास के सच्चे अनुसरणकर्ता ही प्रतीत होते हैं। उनकी उपमाओं ने काव्य को जो सौन्दर्य प्रदान किया है वह अलौकिक है, दिव्य है। इनके अनुसार "जो हर पल अर्थात् प्रत्येक क्षण नवीनता को प्राप्त करे वही सौन्दर्य है। जहाँ स्थिरता है वहाँ नवांकुरण (नवीनता) की संभावना कैसे हो सकती है।"[80] अर्थात् जो हर क्षण नवीनता को धारण करे वही सच्चे अर्थों में सौन्दर्य है कालिदास ने भी कहा है– **"यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयताया"**। कवि द्वारा अन्य अलंकारों का प्रयोग यत्र–यत्र स्थानों पर ही किया गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः डॉ. हर्षदेव माधव की डायरी शैली में रचित 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' का सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विश्लेषण करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम डायरी शैली में रची गई यह रचना उत्कृष्ट है। कवि हर्षदेव ने अपनी सृष्टि विद्यमान सांचों में नहीं रची उन्होंने अपने लिए एक नवीन मार्ग की रचना की है। डॉ. माधव ने लघुत्रयी में गिनी जाने वाली महाकवि कालिदास की रचना 'मेघदूत' को नवीन शैली (डायरी) में रचकर सम्पूर्ण आधुनिक संस्कृत साहित्य को अचम्भित कर दिया यह उनका साहस ही है। उन्होंने नवीन विधा में 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' को रचकर सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य को सर्वप्रथम डायरी समर्पित कर दी जो डायरी विधा का नींव का पत्थर साबित होगी। कहते हैं **"कि यदि इमारत की नींव मजबूत होगी तो इमारत स्वतः ही मजबूत होगी।"** डॉ. माधव का यह प्रयास पूर्ण सफल है। माधव का मन प्रयोगधर्मा है और हृदय भावुकता से लबालब भरा हुआ है। इसी नवीन प्रयोगधर्मिता से माधव ने अनेक नवीन पात्रों व कथानक का निर्माण किया है। माधव ने कालिदास के यक्ष की धूसर व मलिन छवि को उज्ज्वल बनाने के लिए रत्नेश्वर जैसे पात्र की कल्पना की और यक्ष के शाप को अनुग्रह में परिवर्तित कर दिया उनका मानना है कि देवी–देवता अनुग्रह करने के लिए ही शाप देते हैं, सजा के लिए नहीं। यक्षराज कुबेर का मकसद भी पूर्वजन्म की प्रियतमा पार्थिवी से मिलवाना था।

'पार्थिवी' को कवि ने नारी शक्ति के रूप में चित्रित किया है जैसे सांख्य–दर्शन में प्रकृति पुरुष को भोग व अपवर्ग दोनों देती है इसी तरह पार्थिवी के कारण यक्ष का

उर्ध्वीकरण होता है। दासभाव से मुक्त होकर जीवन्मुक्त और कुबेर से भी ऊँचा बन जाता है। एक शापित पात्र को अपने स्वामी कुबेर से भी ऊँचा बनाने की अपूर्व क्षमता हर्षदेव माधव जैसे कवि में ही हो सकती है।

कवि माधव ने अपनी रचना विद्यमान शैली में नहीं रची बल्कि युगीन कथन–मार्गों से संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध किया है। यह उनका बड़ा योगदान होने के बावजूद कालजयी रचनाकार कहलाते हैं तो उन सांचो के बल पर नहीं, जिनकों संस्कृत में प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हें हैं, अपितु उस वाग्धारा के बल पर है जो किसी भी साँचे में रहकर सहृदय के हृदय का आह्लादन कर सकती है। डॉ. माधव ऐसे सर्जक है जिन्होंने अपने समकाल को प्रभावित किया है उन्होंने न केवल वैश्विक सर्जन के श्वासोच्छ्वास की गन्ध से संस्कृतपाठक को अभिज्ञ बनाया, अपितु इन प्रयोगों की बौद्धिकता और बौद्धिक कर्कशता के स्थान पर हार्दिकता और रसात्मकता का विनियोग कर वैश्विक सर्जन को उपकृत किया है। निस्संदेह 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' आधुनिक संस्कृत साहित्य का ऐसा देदीप्यमान नक्षत्र है जिससे सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य आभामण्डित होता रहेगा।

❖❖❖

संदर्भ –सूची

1. मूकोरामगिरिर्भूत्वा–डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.–103
2. वही, पृ.–87
3. दृक् पत्रिका अंक 22 जुलाई–दिसम्बर 2009, पृ.–46
4. दृक् पत्रिका अंक 14 जुलाई–दिसम्बर 2005, पृ.–127
5. मूकोरामगिरिर्भूत्वा–डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.–31
6. वही, पृ.–141
7. वही, पृ.–145
8. वही, 193
9. वही, 35–36
10. प्रियतमा–डॉ. बनमाली विश्वाल, पृ.–11
11. प्रतानिनी–आचार्य बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' पृ.–144
12. मेघदूत–महाकवि कालिदास, पूर्वमेघ 5
13. मूकोरामगिरिर्भूत्वा, पृ.–173
14. भाषा रत्नचन्द्रिका–डॉ. जयकिशन प्रसाद, पृ.–338
15. रचनानुवादकौमुदी–कपिल देव द्विवेदी, पृ.–256
16. भाषारत्नचन्द्रिका–डॉ. जयकिशन प्रसाद, पृ.–367
17. मूकोरामगिरिर्भूत्वा, पृ.–190
18. श्रीमद्भगवतगीता–तृतीय अध्याय, 8वाँ श्लोक
19. श्रीमद्भगवतगीता–द्वितीय अध्याय, 47वाँ श्लोक
20. वही, 50वां श्लोक
21. वही, 51वां श्लोक
22. मूकोरामगिरिर्भूत्वा, पृ.–147
23. नीतिशतक–महाकवि भृर्तहरि, 5वां
24. मूकोरामगिरिर्भूत्वा, पृ.–55
25. वही, पृ.–92
26. यजुर्वेद 36–18

27. वाचस्पत्यम् (बृहत्संस्कृताभिधानम्), षष्ठ भाग, पृ.–4833
28. ऋग्वेद–पुरुषसूक्त 10/90/14
29. अष्टाध्यायी, 5/1/34
30. व्याकरण महाभाष्य, पंचम आह्निक
31. लोक साहित्य और समाज, डॉ. मीनाक्षी बोराणा (मधुमति जुलाई 06)
32. संस्कृत–लोक कथा में लोकजीवन, डॉ. गोपाल शर्मा, पृ.–8
33. मूकोरामगिरिर्भूत्वा, पृ.–58
34. वही, पृ.–135
35. वही, पृ.–139
36. भाषा रत्नचन्द्रिका, पृ.–429 डॉ. जयकिशन प्रसाद
37. मूकोरामगिरिर्भूत्वा, पृ.–157
38. वही, पृ.–153
39. वही, पृ.–158–159
40. मनुस्मृति (द्वितीयोऽध्यायः) डॉ. श्याम शर्मा 'वाशिष्ठ' प्राक्कथन।
41. मनुस्मृति, 8 अध्याय–17
42. मनुस्मृति–8/15
43. मनुस्मृति–2/6
44. मूकोरामगिरि.–पृ.–195
45. परमेश्वरस्तोत्र–3 श्लोक
46. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ.
47. निष्क्रान्ताः सर्वे–डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–233
48. मूकोरामगिरि, पृ.–43–44
49. वही, पृ.–160
50. वही, पृ.–119
51. वही, पृ.–107
52. दृक् पत्रिका 26–27 जुलाई–दिसम्बर 2001, जनवरी–जून 2012 पृ.–204
53. वही, पृ.–192

54. भाषारत्नचन्द्रिका, डॉ. जयकिशन प्रसाद, पृ.—437

55. ऋग्वेद—इन्द्र सूक्त 10वां मंत्र

56. महाभाष्य—पंतजलि—पंचम आह्निक

57. मूकोरामगिरि., पृ.—4

58. वही, पृ.—12

59. वही, पृ.—20

60. वही

61. वही, पृ.—25

62. वही, पृ.—30

63. वही, पृ.—38

64. वही, पृ.—40

65. वही, पृ.—41

66. वही, पृ.—46

67. वही

68. अभिज्ञानशाकुन्तलम्—चतुर्थ अंक—महाकवि कालिदास

69. नीतिशतक—महाकवि भर्तृहरि

70. मूकोरामगिरि.—पृ.—55

71. वही, पृ.—80

72. वही, पृ.—13

73. वही, पृ.—24

74. वही, पृ.—43

75. वही, पृ.—122

76. वही, पृ.—8

77. वही, पृ.—19

78. वही, पृ.—48

79. वही, पृ.—38

80. वही

पंचम अध्याय

मेघदूत पर आधारित अर्वाचीन संस्कृत कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन

'मेघदूत' दूतकाव्य परम्परा का मानक ग्रन्थ है। यह भारतीय संस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र, सरस्वती के वरद् पुत्र, कवि शिरोमणि **'महाकवि कालिदास'** द्वारा रचित दूत काव्य, खण्डकाव्य तथा गीतिकाव्य है। महाकवि कालिदास के मार्मिक संदेश तथा प्रांजल चित्रण–कला ने **'मेघदूत'** को ऐसे पद पर स्थापित कर दिया कि इसने एक पृथक् साहित्य–प्रकार को जन्म दिया जिसे 'दूतकाव्य' या 'सन्देश काव्य' कहा जाता है। अमरकोषकार भी दूत उसे ही कहते हैं जो संदेश का हरण (ले जाने) करने वाला हो– **'स्यात् सन्देशहरो दूतः।'**

महाकवि कालिदास का **'मेघदूत'** संस्कृत साहित्य का प्रथम दूतकाव्य या संदेशकाव्य है। उन्होंने इस काव्य के लेखन की प्रेरणा आदिकवि वाल्मीकि से ग्रहण की थी। वे लिखते हैं– **"इत्याख्याते पवनतनये मैथिलीवोन्मुखी सा।"**[1]

मेघदूत महाकवि कालिदास की प्रसिद्ध गीतिरचना है जिसे प्रबन्धात्मकता के कारण परम्परा से खण्डकाव्य भी कहा गया है क्योंकि इसमें मानव–जीवन की किसी एक विशिष्ट घटना का ही चित्रण किया गया है। साहित्य दर्पणकार ने खण्डकाव्य का लक्षण करते हुये लिखा है– **"खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च।"**[2]

अर्थात् खण्डकाव्य वह काव्य होता है जिसमें मानव–जीवन की किसी एक घटना का वर्णन किया गया हो अर्थात् जो महाकाव्य के एक अंश का अनुसरण करता हो। अतः खण्डकाव्य में महाकाव्य के कुछ विषय का ही वर्णन होता है अतएव यह महाकाव्य की अपेक्षा आकार–प्रकार में भी छोटा होता है।

लौकिक संस्कृत–साहित्य में 'गीतिकाव्य' के रूप में सर्वप्रथम उल्लेखनीय स्थान भी 'मेघदूत' का है। गीतिकाव्य वह काव्यप्रकार है जिसमें कवि अपने अन्तर› में स्थित कोमल भावों में से किसी एक को केन्द्र में रखकर कल्पना शक्ति के द्वारा उसे गेय बनाकर संक्षिप्त रूप में प्रकट करता है। हृदय में स्थित भाव का अतिरेक होने पर ही गीतिकाव्य की अभिव्यक्ति होती है ऐसी रचना निर्मित नहीं की जाती, बल्कि इसकी स्वतः स्फूर्ति होती है। कवि का हृदय सुख–दुःख या किसी धार्मिक–नैतिक भावना से उद्वेलित होकर सहसा काव्य के रूप में फूट पड़ता है।

चिरकाल से उसकी सँजोई हुई कल्पना प्रवाहित होने लगती है तथागेय छन्दों या रागों में मृदु शब्द निर्गत होने लगते हैं।

आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय के अनुसार–

“गीतिकाव्य संस्कृत–भारती का परम रमणीय अ› है। गीतियों का निर्माण उस बिन्दु पर होता है, जब कवि का हृदय सुख–दुःख के तीव्र अनुभव से आप्लावित हो जाता है और वह अपनी रागात्मिका अनुभूति को अपनी हार्दिक भावना की पूर्णता के कारण बाह्‌य अभिव्यक्ति के रूप में परिणत करता है। स्वगम्य अनुभूति को परगम्य अनुभूति के रूप में परिणत करने के लिये कवि जिन मधुर भावापन्न रस सान्द्र उक्तियों का माध्यम पकड़ता है, वहीं होती हैं गीतियाँ।”[3]

संक्षेप में ‘गीतिकाव्य’ का यह लक्षण दिया जा सकता है–

“भावानामात्मनिष्ठानां कल्पनावलितं लघु।
स्फुरणं गेयरूपेण गीतिकाव्यं निगद्यते।।”[4]

कुछ विद्वानों ने ‘गीतिकाव्य’ को संस्कृत काव्यशास्त्र में निरुपित ‘खण्डकाव्य’ से अभिन्न समझा है। महाकाव्य के कथानक के एक खण्ड पर आश्रित रचना ही खण्डकाव्य है अनिवार्य रूप से यह काव्य प्रबन्धात्मक होता है, शास्त्रीय दृष्टि से यह छोटा काव्य (8 सर्ग से कम) होता है वर्णन की इसमें प्रधानता रहती है। आधुनिक समीक्षा की दृष्टि से खण्डकाव्य और गीतिकाव्य में भेद होता है। खण्डकाव्य वस्तुवर्णनपरक अर्थात् बहिर› का प्रतिपादक होता है जबकि गीतिकाव्य आत्माभिव्यक्ति–प्रधान होता है। गीतिकाव्य प्रबन्धात्मक के अतिरिक्त मुक्तक भी होता है जिसमें प्रत्येक पद्य स्वच्छन्द भावोच्छ्‌वास से पूर्ण रहता है।

दूतकाव्य परम्परा का प्रारम्भ–मेघदूत

‘मेघदूत’ प्रबन्धात्मक गीतिकाव्यों में सर्वोत्कृष्ट गीतिकाव्य है अतएव यह सभी गीतिकाव्यों का उपजीव्य ग्रंथ भी है। मानवीय अन्तः भावों के चित्रण में तथा बाह्य प्रकृति के उतमोत्तमरम्य दृश्यों के अंकन में यह काव्य अद्वितीय है, वस्तुतः यह एक प्रकृति काव्य ही है। आधुनिक समीक्षक इसे गीतिकाव्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रंथ कहते हैं।

डॉ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि– "इस काव्य को वही समझ सकता है और वही इससे पूरा–पूरा आनन्द उठा सकता है जो कि स्वयं कवि हो और जिसे कवित्व की एवं कवि हृदय की पहचान हो।"[5]

बंगाली कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर – कालिदास के इस काव्य के विषय में जो उद्गार प्रकट किये हैं वे इसप्रकार हैं– भारत में अनेक आनन्दोत्सवों के अवसर पर अनेक मिट्टी के दीपक अनेक क्षणिक साहित्य अर्धरात्रि को ही अपना काम पूरा करके सवेरे बुझ गए हैं, विस्मृति–लोक में लीन हो गए हैं। पहले–पहल जो स्वर्ण दीपक हमें दिखाई देता है, वह कालिदास की कल्पना है। वह पैतृक प्रदीप इस समय भी हमारे घरों में प्रकाश डाल रहा है। वह जो रत्नदीप हमारे उज्जयिनीवासी पितामह के प्रसाद शिखर पर जल रहा था, उसमें अभी तक कलंक की छाया नहीं पड़ी। हमारे कहने का अभिप्राय है कि संस्कृत–साहित्य में केवल आनन्द प्राप्ति के उद्देश्य से काव्य की रचना सर्वप्रथम कालिदास ने की है। हमारे इस कथन का दृष्टान्त है–मेघदूत।[6]

डॉ. बलदेव उपाध्याय के शब्दों में – "बाह्य प्रकृति की मनोरम झांकी प्रस्तुत करने में तथा अन्तस्तल में–सन्तप्त उदय होने वाले भावों के चित्रण में यह काव्य अपनी तुलना नहीं रखता। किसी विरह विधुर प्रेयसी के पास मेघ को प्रेम का संदेशवाहक दूत बनाकर भेजने की कल्पना ही विश्व के साहित्य में अपूर्व, कोमल तथा हृदयावर्जक है।[7] वाल्मीकीय रामायण में अशोक–वाटिका में रावण के द्वारा अपहृत जनकनन्दिनी के पास हनुमान को भेजना तथा महाभारत में हंस के द्वारा दमयन्ती के हृदय में राजा नल के प्रति प्रणय–भाव के प्रादुर्भाव की कथा अवश्यमेव कालिदास से प्राचीनतर है। परन्तु इनमें चेतन पदार्थों में ही दौत्य कार्य की सम्मति दीख पड़ती है। किसी अचेतन वस्तु को प्रेम प्रसंग में दौत्य कर्म के लिए भेजना तथा प्रणय में गाढ़ उत्कंठातिरेक की सद्यः अभिव्यक्ति करना सचमुच एक प्रतिभा सम्पन्न कवि की मौलिक कल्पना है।"[8]

जर्मन महाकवि गेटे (Goethe) ने मेघदूत की भावव्यंजना से प्रभावित होकर भावुक हृदय से कहा था– "मेघदूत एक ऐसा दूत है जिसे अपनी हृदयस्वामिनी के पास कौन नहीं भेजना चाहेगा? ऐसे ग्रंथ से परिचय होना जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना होती है।"[9]

ए.बी.कीथ की यह उक्ति प्रशंसापरक है– "मेघ के मार्ग–वर्णन की उज्ज्वलता और शोकाकुल तथा विरहिणी यक्षिणी के चित्रण के कारुण्य की जितनी प्रशंसा की जाये, कम ही होगी।"[10]

प्राचीन पण्डितों की कालिदास के लोकप्रिय काव्य के विषय में धारणा थी–

"माघे मेघे गतं वयः"

अर्थात् माघकाव्य की शास्त्रीयता और मेघदूत की भावप्रवणता के अनुशीलन में पूरी आयु बीत गयी।

निष्कर्षतः आधुनिक व पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार मेघदूत संस्कृत–साहित्य का चमकता हुआ नक्षत्र है जिसकी आभा से सम्पूर्ण साहित्य–जगत् आभामण्डित होता रहेगा।

कालिदास की प्रसिद्ध गीति रचना 'मेघदूत' मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित केवल 115 पद्यों की यह लघुकाय कृति दो भागों में विभक्त है– पूर्वमेघ (63 पद्य) तथा उत्तरमेघ (52 पद्य)। विभिन्न संस्करणों में 108 से लेकर 127 श्लोक तक मिलते हैं।[11] मेघदूत पर प्रायः 50 प्राचीन टीकाएँ मिलती हैं। अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में इसके गद्य–पद्यानुवाद प्रकाशित है। कालिदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना यही है जिसमें उनकी प्रतिभा शिखर तक पहुँची है।[12]

मेघदूत का कथानक कल्पित है। कवि ने कल्पना की है कि अलकापुरी का निवासी यक्ष अपनी प्रियतमा का परम अनुरागी था। उसके स्वामी कुबेर ने उसे एक वर्ष के लिए शाप देकर रामगिरि में भेज दिया। अपनी प्रिया के विरह में यक्ष ने रामगिरि के विभिन्न आश्रमों में रहकर आठ मास बिता लिये। वर्षाकाल के आरम्भ में पर्वत से क्रीड़ा करने वाले मेघ को देखकर वह अपनी उत्कण्ठा रोक नहीं सका तथा उसी के द्वारा अपनी प्रियतमा के पास विरह–सन्देश भेजने का उपक्रम करने लगा। काव्य के पूर्वभाग में मेघ का यथोचित स्वागत करके उसने रामगिरि से अलकापुरी तक का मार्ग बतलाया जिसमें माल प्रदेश, आम्रकूट, नर्मदा नदी, विदिशा नगरी, नीच–गिरि, निर्विन्ध्या नदी, उज्जयिनी, महाकाल मन्दिर, क्षिप्रा नदी, देवगिरि, चर्मण्यवती नदी (चम्बल), कुरुक्षेत्र, सरस्वती नदी, कनखल, गंगानदी, हिमालय,

Ø(×चरन्ध्र (नीतिघाटी), कैलास और मानसरोवर का वर्णन रोचकता एवं भव्यता के साथ किया गया है। उत्तरमेघ में अलकापुरी के वैभव का वर्णन करते हुए यक्ष ने कुबेर के राजप्रासाद के उत्तर में अवस्थित अपने घर की पहचान बतलायी। उस घर का प्राकृतिक वैभव देखकर मेघ को यक्षप्रिया के पास पहुँचना है।

इस काव्य में **'नियतिकृतनियम–रहिता कवि–निर्मिति'** का पूर्ण प्रयोग किया गया है क्योंकि अचेतन मेघ के द्वारा चेतनोचित संदेश–वाहक का कार्य लिया गया है किन्तु कवि ने इसके समर्थन के लिए यक्ष की प्रबल उत्सुकता का तर्क दिया है जिससे यक्ष में चेतनाचेतन का विवेक ही समाप्त हो गया–

"इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे।
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।"[13]

वस्तुतः मेघदूत कालिदास के अपने अनुभव, कल्पना एवं रामायण के परिचय का संयुक्त रूप है। कवि ने इसे सर्वथा मौलिक रूप दिया है जहाँ उनकी प्रतिभा का प्रकर्ष मुखर हो उठा है।

मेघदूत की विषय–वस्तु पर आधारित अर्वाचीन संस्कृत रचनाएँ

वर्तमान में महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' की कथावस्तु को आधार बनाकर अनेक रचनाएँ लिखी गई है। जिनका परिचय निम्न प्रकार से है–

1. प्रबोधशतकम्

प्रबोधशतकम् प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र द्वारा रचित 'अभिराजसहस्रकम्' से लिया गया है। 'अभिराजसहस्रकम्' कवि द्वारा प्रणीत चतुर्थ कोशकाव्य है जिसमें समान प्रकृति वाले दस शतक काव्यों का प्रकाशन है इसमें प्रथम 'प्रबोधशतकम्' है।

प्रबोधशतकम् की भावभूमि – 'प्रबोधशतकम्' डॉ. राजेन्द्र के दशशतक काव्यों के सŠलन में प्रथम सŠलन है 'प्रबोधशतकम्' के स्वरूप पर चर्चा की जाये तो यह खण्डकाव्य के अन्तर्गत शतक काव्य में तो परिगणित है ही साथ ही पत्र के माध्यम से संदेश भेजने के कारण संदेश काव्य की कोटि में आता है।

"दूतं काव्यमिदं प्रोक्तं दौत्यकर्मप्रस›तः।

सन्देशप्रेषण व्याजैरस्य सन्देश काव्यता।।"[14]

इसप्रकार मेघ को दूत बनाकर भेजा गया काव्य दूतकाव्य व पत्र माध्यम से संदेश भेजने पर इस काव्य को संदेश काव्य कह सकते हैं।

यह कालिदास के 'मेघदूत' की कथा पर आधारित काव्य है। 'प्रबोधशतकम्' के सौ पद्यों में यक्ष द्वारा यक्षिणी को वे संदेश भेजे गये हैं जो यथाकथि×चत् उत्तरमेघ में अभिव्यक्त नहीं हो पाये।[15] 'प्रबोधशतकम्' की मुख्य भाव–भूमि कालिदास कृत 'मेघदूत' है। 'मेघदूत' प्रबन्धात्मक गीतिकाव्यों में सर्वोत्कृष्ट गीतिकाव्य है अतएव यह सभी गीतिकाव्यों का उपजीव्य ग्रंथ भी है। मानवीय अन्तः भावों के चित्रण में तथा बाह्य प्रकृति के उत्तमोत्तम रम्य दृश्यों के अंकन में यह काव्य अद्वितीय है, वस्तुतः यह एक प्रकृति काव्य ही है।

स्पष्ट है दूतकाव्य परम्परा का उपजीव्य हम रामायण को स्वीकार भी ले तो भी नवीन शैली व अचेतन को दूत बनाकर प्रस्तुत करने की अभिकल्पना कालिदास की ही है। कालिदास ने अपनी कल्पना व भावप्रवण अनुभूतियों को संदेश के माध्यम से यक्षप्रिया के पास भेजकर एक अभूतपूर्व काव्य की रचना की जो अपने आप में अद्भुत है। इस परम्परा को आगे निरन्तरता प्राप्त होती रही और अनेकानेक दूतकाव्य लिखे गये। कालिदास के इस कथानक के आधार पर अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में भी कुछ काव्यों की रचना हुई। प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने इस परम्परा से प्राप्त कथानक को अपनी नवीन भावाभिव्य×जना के साथ अभिव्यक्त किया है। मिश्र जी ने 'शतक काव्य' के रूप में कालिदास की इसी कथा को परम्परा से स्वीकार किया है किंतु 'उत्तरमेघ' में यक्ष के मन की जो बात अधूरी रह गई, जिसे वह पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर पाया उस अन्तस् की पीड़ा को उन्होंने 'प्रबोधशतकम्' के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रबोधशतकम् : नामकरण – प्रबोधिनी एकादशी देवउठनी एकादशी हो कहते हैं, मेघदूत में कुबेर से शाप प्राप्त यक्ष को एक वर्ष का निर्वासन दिया जाता है। शाप देवउठनी (प्रबोधिनी) एकादशी पर दिया गया अतः एक वर्ष के शाप की अवधि भी

देवउठनी एकादशी पर समाप्त होनी थी। भुजगशयन पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान् विष्णु आषाढ़ को शेषनाग पर योग निद्रा में लीन हो जाते हैं और कार्तिक मास की एकादशी को योग निद्रा त्याग कर उठते हैं। अतः इस एकादशी को हरि प्रबोधिनी या देवोत्थान एकादशी कहते हैं। देवशयनी एकादशी यक्षिणी के लिए विशेष निराशा का दिन होगा क्योंकि वर्षा के कारण चार मास तक अब यात्रा बंद हो जायेगी और शाप की समाप्ति में अभी चारमास की अवधि शेष है। कालिदास के मेघदूत में (उत्तरमेघ 50) इस अवधि को बिताकर पुनः देवउठनी एकादशी पर निश्चित रूप से मिलन होगा इसका संकेत है। प्रबोधशतकम् में इसलिए एक स्थान पर एकादशी को 'अनुत्तमातिथि' कहा गया है।[16] वहीं देवउठनी एकादशी के लिए 'नवमंगलाय' शब्द का प्रयोग किया गया है क्योंकि भगवान् विष्णु उस दिन अनन्त शय्या को छोड़ते है और देवउठनी एकादशी की वही तिथि शाप अवधि को समाप्त करेगी। मेघदूत के इसी पौराणिक संदर्भ को कवि ने कुछ परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है–

"पयोदबिन्दूच्चयवर्षणाढ्ये घनागमे नश्यति यावदेव।
अनन्तशय्यां विजहाति विष्णुः स दुग्धसिन्धौ नवम›लाय।।"[17]

प्रबोधिनी एकादशी पर प्रिया को प्रबोधित अर्थात् जाग्रत करने के लिए लिखे गए शतक–काव्य को ही कवि ने 'प्रबोधशतकम्' की संज्ञा प्रदान की है।

प्रबोधशतकम् : कथावस्तु – राष्ट्रपति–पुरस्कार से सम्मानित त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित 'प्रबोधशतकम्' मेघदूत की ही विषय–वस्तु पर आधारित है। यह यक्ष के द्वारा यक्षिणी को प्रेषित वह संदेश है जो कथाञ्चित् उत्तरमेघ में अभिव्यक्त नहीं हो पाये है। यक्ष के मन की जो बात मेघदूत में अधूरी रह गई, जिसे वह पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर पाया उस अन्तस् की पीड़ा को उसने 'प्रबोधशतकम्' के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र यक्ष की उस पीड़ा को अनुभूत करके अपनी प्रेयसी यक्षिणी को ढांढस बंधाने के लिए पत्रिका भेजते हैं। स्पष्ट है मेघदूत कवि के अन्तस् में रचा बसा रहा होगा तभी उस कथानक को आधार बनाकर कवि ने 'प्रबोधशतकम्' की रचना की। यह मेघदूत का ही पूरक काव्य है। कुबेर के शाप से शापित यक्ष अपनी प्रिया को जाग्रत करने के संकल्प को धारण करता हुआ

रामगिरि के पहाड़ की तलहटी से यक्षिणी को प्रबुद्ध करने तथा जाग्रत करने के उद्देश्य से, संयम को धारण करने वाली भावपूर्ण कोयल के समान पत्रिका लिखता है–

"तव प्रबोधाय मयाऽद्य तस्माद् विलिख्यते मानिनि! पत्रिकेयम्
प्रबोधिनी संयमधारयित्री पिकीव वासन्तिकभावयित्री।।"[18]

असह्य दुःख को सहन करने के सामर्थ्य को जाग्रत करते हुए यक्ष अपनी प्रेयसी को लिखता है–

"को वेत्तिमद्दुःखमिदं प्रगाढं विहाय मामेकमिह प्रमुग्धे।
अरण्यदेव्योऽथ सहायवत्यस्त्वमेव वा मादृशवेदनाऽऽर्ता।।"[19]

यक्ष के द्वारा प्रेयसी यक्षिणी को प्रेषित पत्र वैसे ही है जैसे जल प्रपात अपने सरिता रूपी हाथों से समुद्र के पास पत्तों को गिराता है। उसी प्रकार वह बादलों के माध्यम से उसके पास प्रेम प्रेषित करता है।[20] वसन्त जैसे कोकिल की ध्वनि के द्वारा काम के पास पत्र प्रेषित करता है वैसे ही वह मलयगन्ध की वायु के द्वारा प्रेयसी के हृदय में अपनी मन की गति को निविष्ट करता है।[21] सूर्य जैसे अपनी किरणों रूपी हाथों से जल समूह के समीप अपना पत्र भेजता है, वैसा ही चन्द्रमा रूपी मुख के लिए भँवरों के द्वारा और मेरे द्वारा भी चुम्बन की इच्छा अर्पित की गई है।[22] यक्ष अपनी विरह दशा का वर्णन करते हुए कहता है– हे शुभे तुम्हारे बिना निमेष अर्थात् पलक झपकाने का समय तो पहर तथा विभिन्न पहर दिन हो गये हैं और उसी प्रकार ही दिन युगों में तथा युग कल्पों में परिवर्तित हो गया है।[23] मेरी भुजाओं के अंक पाश में विद्यमान न होने पर भी प्रतिक्षण मेरे द्वारा महसूस की गई हो उसी से मैं जानता हूँ कि मुनि पाणिनि के द्वारा अपने सूत्र **'अदर्शनं लोपः'** (दिखाई न देने की लोप संज्ञा) झूठ कहा है।[24]

यहाँ रामगिरि में निवास करता हुआ मैं वनवृक्षों के फलों को खाता हूँ पर्वतीय झरनों का पानी पीता हूँ। रात्रि में पत्थर की शिलाओं पर सोता हूँ और समीप में स्थिर नृत्य, गान और वाद्य की तिहरी स्वरगति सुनता हूँ।[25] हे च×चल नेत्रों वाली निश्चित रूप से तुम्हें प्रतिबोधित करने के लिए धन (कुबेर) के द्वारा यह पत्र भेज

रहा हूँ। अनन्त शय्या को छोड़कर वह धनुर्धारी विष्णु जिस शुभ दिन में उठेगें उसी दिन वर्ष भर भोगे जाने वाला यह वियोग भी आकाश पुष्प के भाव को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् अस्तित्वहीन हो जायेगा।[26] मेरा यह प्रबोध पत्र तुम्हारे द्वारा निश्चित रूप से कमलपत्र के समान धारण योग्य नहीं हो किन्तु साहित्य के स्वरूप वाला इसका प्रत्येक अक्षर मेरे प्रीति रूपी रसायन से समृद्ध है।[27] मेरी वाणी समाप्त नहीं होती जानता हूँ किन्तु घट में समुद्र को भरने का प्रयत्न कर रहा हूँ मेरी यह इच्छा दीनता से युक्त है।

अंत में यक्ष कहता है कि यद्यपि पत्र की नैसर्गिक सीमा मुझे लिखने से पूर्ण रूप से रोक रही है इसलिये पत्र के अक्षरों को रोक लेता हूँ किंतु इच्छाओं का स्थगन संभव नहीं है। यह पत्र तुम्हारे मन की व्याधियों का, नष्ट हो गये माधुर्य का हरण करने वाला हो। पहले गर्मी से तप्त शिशिर को और बाद में वर्षा से बादलों की सामर्थ्य से युक्त तुम्हारा मन हो।[28] हे मानिनि! इससे अधिक अद्वैत का विधान करने वाला पृथक्पन वहाँ बाधित नहीं करता है, जहाँ पत्नी व पति भेद को छोड़कर कल्याणकारी दम्पत्ति भाव को प्राप्त किया गया है।[29]

इस प्रकार 'प्रबोधशतकम्' में यक्ष अपनी विरह से व्यथित मनोदशा का वर्णन पत्र के माध्यम से करता है। मेघदूत में जहाँ यक्ष मेघ को मार्ग बताने व अन्यान्य वर्णनों में ही उलझकर रह जाता है अपनी स्वयं की व्यथा बताने का उसे अवसर ही नहीं मिल पाता उसी अवसर को त्रिवेणी कवि मिश्र जी के माध्यम से यक्ष प्राप्त करता है और यक्षिणी को 100 श्लोकों में निबद्ध पत्र के माध्यम से प्रतिबोधित करने का प्रयास करता है। जो आधुनिक संस्कृत साहित्य में सर्वथा नूतन प्रयास है।

2. दूतप्रतिवचनम्

'दूतप्रतिवचनम्' आधुनिक संस्कृत साहित्य के शिखर पर विराजमान कवि डॉ. इच्छाराम द्विवेदी के रचना संसार का काव्य स्तबक है। जो मेघदूत की कथावस्तु पर आधारित है। यह डॉ. इच्छाराम द्विवेदी के द्वारा रचित 'प्रणवरचनावली' में संगृहीत है। प्रणवरचनावली में कुल ग्यारह खण्ड हैं जो 'सुप्रभातम्' से प्रारम्भ होकर 'अन्योक्तिरत्नावली' पर समाप्त होती है। काव्य के इन खण्डों में उन्होंने दूतकाव्य, स्तोत्रकाव्य, बालगीत, ओजस्वी कविताएँ, राजनीतिक एवं सामाजिक कुरीतियों पर

प्रहार, चिर–परिचित शैली में प्रणव भागवत और अन्त में अन्योक्ति के माध्यम से एक उपदेशक के रूप में अपनी इन्द्रधनुषी आभा बिखेरी है। अतः उनके सृजन की विविधता ही उन्हें न केवल एक वैदिक आचार्य के रूप में अपितु एक सरल–तरल कवि के रूप में भी प्रतिष्ठित करती है।[30]

दूतप्रतिवचनम् : कथावस्तु– डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी द्वारा रचित 'प्रणव–रचनावली' विविध विधाओं की सरणि है इसी में उद्धृत 'दूतप्रतिवचनम्' में सामाजिक परिदृश्य की सजीव झाँकी है, प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य है और व्यंग्य के तीक्ष्ण बाण भी है। 'दूतप्रतिवचनम्' की कथावस्तु डॉ. इच्छाराम द्विवेदी की मौलिक सोच के कारण सुधी विद्वानों में प्रशंसनीय है। प्रायः संस्कृत–जिज्ञासुओं के मन में यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहा कि यक्ष ने अपनी पीड़ा तो मेघ के माध्यम से यक्षिणी तक पहुँचा दी परन्तु क्या वह मेघ उसकी पीड़ा का भी संवाहक बन सका अथवा नहीं? यदि संदेश था तो उसका कोई उल्लेख क्यों नहीं है। यह यक्षिणी की पीड़ा का निरादर है अथवा स्त्रियों के प्रति उपेक्षा है। कवि प्रणव ने उसी जिज्ञासा के तहत इस खण्डकाव्य को आधार दिया है। परन्तु इसमें यक्षिणी का वह पारम्परिक विरह नहीं है अपितु उसके आधुनिका होने का आश्वासन है। कवि ने यहाँ यक्षिणी को पीड़ा से इतर उसे एक सामान्य बाला के रूप में चित्रित किया है जिससे आधुनिक समाज की विसंगतियों को उभारा जा सके। इसमें प्रत्येक छन्द समाज से इतना सटकर चलता है कि पाठक उसमें डूबकर अनुभव करता है। द्विवेदी जी ने मेघदूत की कथावस्तु को आधार रूप में स्वीकार किया है परन्तु उनका उद्देश्य इस दूतकाव्य के माध्यम से भारत के वर्तमान परिदृश्य को प्रस्तुत करना है। 'दूतप्रतिवचनम्' की कथावस्तु को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कवि कुलगुरु कालिदास का भेजा हुआ आज्ञाकारी वह मेघरूपी दूत अलका नगरी से मित्र यक्ष की पत्नी के वृत्तान्त से अवगत होकर दुःख से कराहता हुआ वर्षा की समाप्ति पर लौट आया। धुएँ, प्रकाश, जल एवं वायु का संघात वह मेघ रूपी दूत विविध प्रेमभावों से, किन्तु वियोग के कारण इन्द्रियों को व्याकुल कर देने वाले प्रियतमा के सभी समाचारों एवं दुःखमय भारत के वृत्तान्त को आँसू गिराते हुये अनुत्साहपूर्ण वचनों से इसप्रकार कहता है।[31] बन्धुवर दुःख है अब प्रचलित धर्म परम्परा सब प्रकार से

छिन्न–भिन्न हो गई है। प्रेम रूपा नदी पर जिस विश्वास सेतु को तुमने बनाया था वह भी नष्ट हो गया है अब प्रियजनों का सारा स्नेह शिथिल पड़ गया है। तेल के अभाव में बेचारी वर्तिका जल जाती है उसीप्रकार प्रियतम के स्नेह से रहित होकर प्रियतमा का जीवन भी नष्ट हो जाता है। यक्षिणी का वर्णन करते हुये मेघ कहता है–

"त्यक्त्वा सौधं तव प्रणयिनः सा प्रिया ते कृशांगी,
पित्रोर्गेहे वसति रुदितोच्छूननेत्रा तथा ताम्।
श्वश्रूरोगोदहति सततं कामिनीनां मृदूनां,
चित्तं भग्न भवति झटिति प्राप्य श्वश्रूदुरुक्तिम्"।[32]

वह वियोग पीड़िता कृशांगी तुम प्रेमी के घर को छोड़कर अपने माता–पिता के घर जाकर रहने लगी है तुम्हारे स्मृति में रोते–रोते उसकी आँखे सूज गयी है इस स्थिति में भी उसे अपनी सास का रोग निरन्तर जलाता रहता है। सच है कोमल स्वभाव स्त्रियों का हृदय सास की जली–कटी बातें सुनकर शीघ्र भग्न हो जाता है। माँ के घर जाकर भी उसे शांति प्राप्त नहीं होती। अतः उदरभरण के लिए जीविका की खोज में निकलने पर रास्तें में दुष्टस्वभाव वाले कामी पुरुषों के द्वारा अश्लील शब्दों से एवं उपहासों से उस पर आक्षेप किया गया। जो तुम्हारी कृशांगी, नवयुवती, नुकीले दांतों वाली प्रिया थी वह अब टेलिविजन के पर्दे पर चंचल नेत्रों वाली अभिनेत्री बनी दिखलाई देती है सम्पूर्ण खण्डकाव्य में वह कहीं तो सास की उलाहनाओं से पीड़ित है तो कहीं अपनी जीविका की तलाश में भटकती हुई कामी पुरुषों के अश्लील कटाक्षों की शिकार हो रही है। कवि आस्थाहीन समाज की विडम्बनाओं से आक्रोशित है। उनका विश्वास है कि भारतवर्ष में लोग बुराइयों को दूर करने के लिए संकल्पित नहीं है देखकर भी आँखें बन्द कर लेना इनकी फितरत है– **"सर्वं दृष्ट्वाचरति न हि सा तस्य दोषस्य शान्त्यै।"**[33]

भारतवर्ष की शेष बिगड़ी हुई दशा का वर्णन करता हुआ मेघ कहता है हरिद्वार नामक शोभामय तीर्थ में अब बाजारों में चारों ओर मद्य एवं मांस बिकता दिखलाई पड़ता है। चारों ओर भूख तेजी से बढ़ रही है दीन–हीन प्रजा का पेट अन्न के दानों से पूर्णतया रिक्त है। भारतवर्ष ने उन्नति की है तो सिर्फ– शिल्पविज्ञान में।

"बन्धो! तेऽयं बहुप्रगतिकृद् भारतोदेश आस्ते,

प्रारब्धं तद् रविदिवि महाभारतं चित्ररूपे।"[34]

वर्तमान समय में स्त्रियाँ अपनी गर्भस्थिति का बोध होते ही 'अल्ट्रासाउण्ड व्यवस्था' से गर्भ को हटवा देती है–

"गर्भाधानक्षणपरिचये भारतीया रमण्यः

शीघ्रं गत्वा जठरभरदं शैशवं घातयन्ति।"[35]

कन्याएँ तो सदैव से ही अपराध–बोध से त्रस्त रही है। कभी माँ के गर्भ में मार दी जाती है तो कभी दहेज न मिलने पर उसके सपने कैद कर दिये जाते हैं। कभी बिना किसी कारण के उम्र भर का संताप भोगती है। कभी जीवित ही अग्नि में झोंक दी जाती है। कभी बलात्कार की शिकार होकर वह स्वयं ही संसार से विदा ले लेती है। सत्य यही है कि यज्ञ किसी का भी हो आहुति में तो वही जाती है।

रज्ज्वा बद्ध्वा स्वगलमथवा रेलमार्गे पतित्वा,

काश्चिद् बाला गरलगुटिकां भक्षयित्वा म्रियन्ते।

अग्नौ दग्ध्वा सुललिततनुं सागरे वा सरित्सु,

ता मज्जित्वा सकलजनतापापमुन्मज्जयन्ति।[36]

मेघ स्त्रियों की पीड़ा से इतना व्यथित है कि वह उसकी स्वयं की पीड़ा बन जाती है और वह संतप्त होकर सम्पूर्ण संसार को नष्ट करने के लिए उद्यत हो जाता है।

कवि ने शिक्षा का अवमूल्यन, बेरोजगारी की समस्या, पर्यावरण और राजनीति आदि अनेक बिन्दुओं को विस्तार दिया है। उत्तीर्ण की हुई परीक्षा के भारी भरकम प्रमाणपत्रों के साथ भटकते बेरोजगार युवा भविष्य के प्रतिचिन्तित है। चारों ओर रिश्वत का बोलबाला है। भोज्यपदार्थों, द्रव्यों के साथ–साथ वेश्याओं की व्यवस्था भी करनी पड़ती है–

मंत्रिश्रेष्ठो विषयकुशलः सर्वकाराधिकारी,

क्लिष्टं कार्यं दधिघृतमुखैर्वस्तुभिर्नो करोति।

तस्मै रम्या कुशलगणिका दूरभाषेण देया,

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।।[37]

गाय का मीठा दूध, दही, घी सब पदार्थ स्वर्गलोक चले गये हैं। टूटी सड़के, मलिनग›ा, प्रदूषित वातावरण पर्यावरण को विकृत कर रहे हैं। ग›ा के तटकचरे के ढेर में परिवर्तित होते जा रहे हैं। कपटवेशी राजनेता भी बगुले के समान प्रतिभासित हो रहे हैं। आतङ्कवाद से त्रस्त विश्व किंकर्त्तव्यविमूढ़ है।

सम्पूर्ण खण्डकाव्य में यक्ष–यक्षिणी के विरह से दूर भारत वर्ष की समस्याओं को दर्शाया गया है। सम्भवतः इसका उद्देश्य ही सामयिक समस्याओं से रु–ब–रु कराना है।

3. मूकोरामगिरिर्भूत्वा

महाकवि कालिदास रचित 'मेघदूत' की विषय–वस्तु को आधार बनाकर डॉ. हर्षदेव माधव ने 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' नामक डायरी की रचना की। जो संस्कृत साहित्य में डायरी शैली में रचित सर्वप्रथम डायरी है इससे पूर्व संस्कृत में डायरी विधा प्रचलित नहीं थी। डॉ. माधव ने ही संस्कृत साहित्य में डायरी विधा का पदार्पण किया है। डॉ. माधव ने मेघदूत के शापित पात्र यक्ष के चरित्र को 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा के माध्यम से उज्ज्वल बना दिया है। उन्होंने यक्ष की पीड़ा को स्वयं अनुभूत कर डायरी के रूप में उसे लिखा है एकदम अद्भुत व नवीन प्रयोग। संस्कृत वाङ्मय की प्रथम 'डायरी लेखन' का प्रारम्भ काव्य जो राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से 2008 में प्रकाशित हुआ है। 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' के प्राक्कथन में प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं– "यथा कालिदासेन मेघदूतं प्रणीय सर्वथा नवीनेव दूतकाव्यविधासंस्कृतसाहित्यपरम्परायां स्थापिता, तथैवमाधवेनमेघदूतस्यैव भावसंसारंविषयवस्तु चोपजीव्य दैनन्दिनीशैल्याउपन्यासं प्रणीयसमकालिकसंस्कृत–साहित्ये काचन नवीना विधा स्थापिता।"[38]

इसी क्रम में वह आगे कहते हैं कि– "यक्षो रात्रौदैनन्दिन्यां स्वव्यथाकथां निबद्ध्नाति, इ›दीतैलेनज्वलतो दीपस्य प्रकाशे यक्षः स्वदैनन्दिनीं लिखति, तत्र चित्रपत›ः परापत्य दीपं निर्वापयति। अन्यच्च माधवेन अस्यां यक्षस्यदैनन्दिन्यां आगमानां दिग्दर्शनं विहितम्, तन्त्र साधना पुरस्कृता, क्वचिन्मोक्षदा एकादशी, क्वचित् सफलैकादशीत्यादि तिथीनां सन्दर्भसहितं कालस्य विपर्ययो निरुपितः, अन्ततो मधुविद्यायां परिणतिश्च प्रकटीकृता।"[39]

डॉ. कलानाथ शास्त्री के शब्दों में– "डायरी शैली में यह मेघदूत का विस्तार भी है पुनः सर्जना भीगा यह एक विशिष्ट और नये प्रयोग के लिबास में नये आयाम का मूर्त रूप है।[40]

डॉ. जगन्नाथ पाठक के अनुसार– "मेघदूत की रचना के बाद संस्कृत जगत् में बहुत पहले से दूतकाव्य, संदेश काव्य लिखने की परम्परा कायम हो गई। इस प्रकार मेघदूत ने एक आन्दोलन को उत्पन्न कर दिया। संस्कृत ही नहीं अन्य भाषाओं में भी 'दूतकाव्य' लेखन की प्रवृत्ति देखी गई। मेघदूत के व्याख्याकारों का एक प्रवाह चल पड़ा। प्रायः सबने उसमें 'काव्यार्थ' को अपने अनुसार प्रगट किया। कुछ ने उसके आध्यात्मिक पक्ष की उद्भावना की।"[41]

शेष कथन में स्वयं हर्षदेव माधव कहते हैं कि मेघदूत पढ़कर मुझे लगा कि यक्ष अपने बारे में कुछ नहीं कहता, केवल अन्यान्यवर्णनों में खो जाता है इसलिए वह यक्ष की निर्दोषता सिद्ध करके उसे नायक के रूप में खड़ा करने के लिए रत्नेश्वर जैसे पात्र की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार हर्षदेव ने मेघदूत के अज्ञातनाम यक्ष को नायक का गौरव प्रदान किया है। मेघदूत की उपजीव्य परम्परा हर कवि को प्रभावित करती रही है। प्रो. जगन्नाथ पाठक ने एक आर्या के माध्यम से इस प्रसंग का स्मरण किया है–

आषाढ़स्य प्रथमो दिवसो दिवसोऽथवा भुजगशयनात्।
अभ्युत्थितस्य विष्णोः सुकालिदासस्मृतिर्नाम।।[42]

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' डायरी का विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है।

4. मेघदूत एक पुरानी कहानी

संस्कृत साहित्य में ही नहीं वरन् हिन्दी साहित्य में भी मेघदूत की उपजीव्यता को स्वीकार करके पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने **"मेघदूत एक पुरानी कहानी"** लिखी।

5. बदराभइलमोरादूत

प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने कालिदास के 'मेघदूत' का भोजपुरी भाषा में रूपान्तर 1965 में "**बदराभइलमोरादूत**" के रूप में किया। यह अनुवाद इतना सरस, हृदयग्राही तथा स्वाभाविक है कि मूल पंक्तियों से कम आनन्ददायक नहीं है।

विरही यक्ष बादल से अपनी प्रिया के लिए संदेश भेजता है–

प्यारे जुगजियन्। बचनियाँ ते हमरी औसमुझि अपनौ उपकार।
एहि विधिकहिहऽसनेसवा धनियाँ जू सों बिरही बलुमुवां तुम्हार।
बसि असरमगॅजियत रामगिरिया पै, पुछलेवागोरीतोरी हालि।
सहबी विपत्तिजाकीमेघ! ओहि जिया–बिनु इहै एक पहिली हवालि।।[43]

मेघदूत का यह भोजपुरी रूपान्तर पाठक को बांधे रखता है प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. बाबूराम सक्सेना जी ने भी इस रूपान्तर की हृदय से संस्तुति की तथा केन्द्रीय शासन के शिक्षा मंत्रालय ने इस ग्रंथ के प्रकाशन का 60 प्रतिशत व्यय सहना स्वीकार किया।[44] स्पष्ट है मेघदूत कवि के अन्तस् में रचा बसा होगा तभी कवि ने मेघदूत का भोजपुरी में इतना सुन्दर रूपान्तरण किया। डॉ. मिश्र मूलतः वेदना के कवि है। पीड़ा के गायक है जैसे ललाट में समाई भाग्यलिपि की कोई इयत्ता नहीं है, उसी प्रकार मन में ओत–प्रोत पीड़ा का भी कोई ओर छोर नहीं है।

मेघदूत व अर्वाचीन रचनाओं में साम्यता
(प्रबोधशतकम्, दूतप्रतिवचनम् मूकोरामगिरिर्भूत्वा)

1. **कथावस्तु के आधार पर साम्यता** – मेघदूत महाकवि कालिदास द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य व दूतकाव्य है मेघदूत के प्रसिद्ध कथानक को आधार बनाकर ही डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने 'प्रबोधशतकम्' नामक शतककाव्य की रचना की। प्रबोधशतकम् के कथानक में कवि ने मेघदूत के यक्ष की जो विरह–व्यथित पीड़ा अधूरी रह गई थी उसको विस्तार से अभिव्यक्त किया है। डॉ. इच्छाराम द्विवेदी ने भी 'दूतप्रतिवचनम्' मेघदूत की कथावस्तु को आधुनिक परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित कर नये परिवेश में प्रस्तुत किया है मेघदूत का मेघ जो यक्षिणी के लिए संदेश लेकर जाता है वहीं मेघ 'दूतप्रतिवचनम्' में यक्षिणी का संदेश वापस लाकर यक्ष को देता

है और भारत की पूर्व में स्थापित विरासत, पवित्र स्थानों, प्रकृति के सुरम्य वैभव के अब वर्तमान में नष्ट, भ्रष्ट, जर्जर व प्रदूषित होने का भयावह वर्णन करता है वर्तमान काल की दुर्दशा, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, लोभ–लालच आदि को कवि मेघ के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

इन सबसे भिन्न डॉ. हर्षदेव माधव मेघदूत के इसी कथानक को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करते हैं इसके लिए कवि ने नये–नये पात्रों की सर्जना की है। माधव ने कुबेर द्वारा यक्ष के शाप का कारण रत्नेश्वर की धूर्तता को बताया तथा यक्ष के पृथ्वी पर अवतरण को यक्ष की आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक यात्रा तथा अपने पूर्वजन्म–जन्मान्तर के प्रेम **'पार्थिवी'** को प्राप्त करना प्रस्तुत किया है। डॉ. माधव ने मेघदूत की कथावस्तु को कहीं से तोड़ा–मरोड़ा नहीं अपितु मेघदूत के कथानक को नूतन सांचों में ढाल कर प्रस्तुत किया है।

2. **भारत की अखण्डता (राष्ट्रीय भावना) के आधार पर साम्यता –** महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' भारत की अखण्डता का परिचायक ग्रंथ है। कवि ने रामगिरिपर्वत से लेकर अलकापुरी तक के अखण्ड भारत की कल्पना की है। कवि ने मालवा के पठार (30) मालवा के पूर्व से चम्बल तक का राज्य अवन्ति प्रदेश (31), उज्जयिनी नगरी (32) देवगिरि (झांसी के दक्षिण में स्थित) (45), दशपुर (वर्तमान मन्दसौर) (50) कुरुक्षैत्र, (हरियाणा प्रदेश का प्रमुख धार्मिक नगर तथा विद्वानों का गढ़)(51), ब्रह्मावर्त (51) जो सरस्वती और दृषद्वती नामक नदियों के मध्य तथा हिमालय और विन्ध्याचल का मध्य भाग ब्रह्मावर्त कहलाता है वर्तमान पटियाला, अम्बाला, करनाल, पानीपत, हिसार, सहारनपुर, मेरठ, कानपुर, प्रयाग आदि क्षेत्र आते हैं, कनखल (53), क्रौ×चरन्ध्र पर्वत (60), कैलाश पर्वत (जो वर्तमान में चीन अधिकृत तिब्बत में है)(61), मानसरोवर (जो चीन अधिकृत तिब्बत में है) (65) तथा अलकापुरी (66) तक के अविभाजित अखण्ड व राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत भारत की मनोरम झांकी प्रस्तुत की है।

अर्वाचीन कवियों ने भी इसी अखण्डित राष्ट्रीयता की परम्परा का अनुसरण किया है। डॉ. राजेन्द्र मिश्र जी तथा डॉ. हर्षदेव माधव ने भी पृथ्वी के इसी स्वरूप की कल्पना की है। डॉ. माधव ने पार्थिवी व यक्ष के विश्वभ्रमण की उत्कण्ठा के

माध्यम से भारत के दिव्य स्थानों आम्रकूट पर्वत, दशार्णदेश, विदिशानगरी, उज्जयिनी, देवगिरि, दशपुर, कुरुक्षेत्र, हिमालय, पवित्रनदियों आदि के वर्णन से भारत की राष्ट्रीय भावना से प्रेरित अखण्डता की कल्पना की है। जो भारत की एकता का संदेश देती है।

3. **वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के आधार पर साम्यता** – महाकवि कालिदास ने मेघदूत में सम्पूर्ण पृथ्वी को एक कुटुम्ब के समान माना है। भिन्न–भिन्न प्रदेशों तथा भिन्न–भिन्न मतों (शैव, शाक्त, वैष्णवों) में विभक्त होने पर भी सम्पूर्ण पृथ्वी एक कुटुम्ब के समान सुशोभित थी। इसीलिये यक्ष मेघ को इस पृथ्वी के सम्पूर्ण सौन्दर्य का पान करने को कहता है।

अर्वाचीन कवि डॉ. माधव ने भी भारतीय संस्कृति के इसी मूलमंत्र का अनुसरण करते हुये इस डायरी की रचना की है। इस पावन स्वरूपा पृथ्वी पर शाप, दण्ड, ऊँच–नीच आदि का भेदभाव नहीं है इस पृथ्वी पर अलकापुरी से निष्कासित यक्ष, पापरुचि नामक पिशाच, वसुसेन पाताललोक का नागराज, मनुष्य स्वरूपा पार्थिवी आदि यक्ष, गन्धर्व पिशाच सभी सुख व आनन्दपूर्वक निवास करते हैं जहाँ देवत्व का नाश होने पर भी तेज की अनुभूति होती है।

4. **लोकमंगल की भावना के आधार पर साम्यता** – हर साहित्य का उद्देश्य लोकमंगल की कामना होती है महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का उद्देश्य भी भारतीय संस्कृति, आदर्श और धर्म, तप, त्याग आदि का उत्तमोत्तम चित्रण प्रस्तुत करना है। कालिदास जी द्वारा प्रयुक्त छोटी–छोटी किन्तु अर्थ गाम्भीर्य से युक्त सूक्तियाँ स्वाभिमान की महत्ता, सहनशीलता, शरणागतवत्सलता, मित्रता, कर्त्तव्यपरायणता, उदारता आदि सद्वृत्तियों को प्रकाशित करती है जो मानव कल्याणपरक है। मेघदूत के अंतिमश्लोक में महाकवि कहते हैं कि–

> **"इत्थंभूतं सुरचितपदं मेघदूताभिधानं**
> **कामक्रीडाविरहितजनेविप्रयोगेविनोदः।"**[45]

अर्थात् यह काव्य वियोगकाल में रतिसुख से वञ्चितजनों के लिये मन बहलाव का साधन है।

वहीं डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी के 'दूतप्रतिवचनम्' का उद्देश्य लोक कल्याणार्थ भारत की वास्तविक स्थिति का चित्रण करना है। इसीप्रकार डॉ. हर्षदेव माधव के 'मूकोरामगिरिभूर्त्वा' का उद्देश्य भी लोकमंगलार्थ सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारों तथा स्वाभाविक मानवीय चेष्टाओं एवं उनके आचार–विचारों को प्रकाशित करना है। डॉ. माधव ने चतुर्थखण्ड सुवर्णमेघ में उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसमें पिछड़े गाँव के अत्यन्त निर्धन लोग जो न्यग्रोध (वट), पीपल व इमली के पत्तों को पका रहे थे ऐसे लोगों के लिए यक्ष स्वर्ण देने वाले भैरव मन्त्र के साथ श्रीसूक्त का पाठ कर धन की देवी से पृथ्वी पर आकर समस्त गाँव में स्वर्ण वर्षा करवाता है[46] तथा लोक मंगल की कामना करता है।

5. **मानवीय संवेदना की अनुभूति के आधार पर साम्यता–** महाकवि कालिदास का मेघदूत मानवीय संवेदना का जीवंत काव्य है जिसमें चेतन–अचेतन सभी चेतनवत् ही कार्य करते हैं अचेतन मेघ के द्वारा यक्ष का अपनी हृदयस्वामिनी यक्षिणी को संदेश भेजना ही मानवीय संवेदना का प्रबल उदाहरण है। मेघदूत में कालिदास ने प्रकृति को सर्वत्रमानवोचित सुख–दुःख के भावों से सम्पन्न माना है। मेघ से पर्वत का मिलन बहुत दिनों में होने पर समागम के समय पर्वत उष्ण अश्रुजल छोड़कर अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करता है–

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य।
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मु×चतोवाष्पमुष्णम्।।[47]

इसी प्रकार डॉ. हर्षदेव माधव के 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' में मानवीयता का जीता–जागता उदाहरण कवि द्वारा मनुष्यरूप पार्थिवी की कल्पना करना है और उसी पार्थिवी के माध्यम से स्वर्ण नगरी अलका में रहने वाले यक्ष की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होना है पार्थिवी ही यक्ष की दिव्यता का कारण बनी। माधवजी की मानवीय संवेदनाओं ने यक्षेश्वर कुबेर के हृदय में भी भावनाओं का संचार कर दिया जिससे कुबेर यक्ष को पार्थिवी सहित अलका में ससम्मान प्रवेश की अनुमति देते हैं।

निष्कर्षतः कालिदास कालीन मेघदूत तथा अर्वाचीन कवियों की रचनाओं में समयाभेद होने के बाद भी कथावस्तु, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, मानवीय भावना, लोककल्याण आदि अर्थों में साम्यता प्राप्त होती है जो बेजोड़ है।

मेघदूत व अर्वाचीन रचनाओं में वैषम्य

महाकवि कालिदास रचित 'मेघदूत' तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य में रचित अर्वाचीन रचनाओं प्रबोधशतकम्, दूतप्रतिवचनम्, मूकोरामगिरिर्भूत्वा आदि का तुलनात्मक अध्ययन निम्न प्रकार हैं–

1. **विधा की दृष्टि से वैषम्य** – साहित्य जगत् में अनेक विधाएँ विद्यमान है प्रत्येक कवि ने भिन्न–भिन्न विधा का अनुसरण करते हुये रचना की है तथा साहित्य जगत् को नूतन विधा समर्पित करने का प्रयास किया है। महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' एक गीतिकाव्य, खण्डकाव्य, दूतकाव्य या संदेश काव्य है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार– "जब अन्तरात्मा अपनी व्यथा, अन्तर्वेदना और अनुभूति को अपने अन्दर सम्वरण नहीं कर पाती धैर्य का बांध टूट जाता है, तब अपने आप ही, किसी को सुनाने के लिये नहीं–जो उद्‌गार निकलते हैं, उनका नाम गीत है।"[48] कवि की यही रागात्मक वृत्ति ही गीतिकाव्य की जननी है। डॉ. पाण्डेय के अनुसार "सुकुमार भावनाओं की मधुर शब्दों में अभिव्यक्ति ही गीति है। उत्तेजना के भावनामय क्षणों में मानव मन किसी आभा से उद्दीप्त होकर, स्वयं ही शब्दों में चमक उठता है और मार्मिक भावाभिव्यंजन करता है तो उसे गीतकाव्य (Lyric Poetry) कहते हैं।"[49] गीतिकाव्य मानव जीवन के पक्ष को सुन्दर व रसात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। मेघदूत कालिदास की प्रसिद्ध गीति रचना है जिसे प्रबन्धात्मकता के कारण परम्परा से खण्डकाव्य भी कहा गया है। खण्डकाव्य में घटना प्रधान होती है। इसे 'भावप्रधान काव्य' भी कहते हैं। महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' संस्कृत साहित्य का प्रथम दूतकाव्य सन्देश काव्य है उन्होंने इस काव्य के लेखन की प्रेरणा वाल्मीकि से ग्रहण की थी। वास्तविकता तो यह है कि सन्देश काव्यों के 'शिल्पविधान' का सूत्रपात करने वाले महाकवि कालिदास ही हैं, जिन्होंने 'मेघदूत' की रचना कर परवर्ती कवियों को एक दिशा प्रदान की। कालान्तर में अनेक कवियों ने इस काव्य की प्रत्येक पंक्ति अथवा अन्तिम पंक्ति को लेकर ही काव्य लिख डाले। उनके इस काव्य को देखकर ही दूतकाव्य के सिद्धान्तों का प्रणयन किया गया। 'मेघदूत' को आधार बनाकर जो काव्य रचे गए, उनमें वीरेश्वर का वाङ्मण्डनगुण दूतकाव्य, जम्बू स्वामी का चन्द्रदूत, धोयी कवि का पवनदूत, जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय, विक्रमकवि का नेमिदूत, मेरुतुंगाचार्य का जैनमेघदूत आदि प्रसिद्ध हैं।

स्पष्टतः लौकिक संस्कृत–साहित्य में 'गीतिकाव्य' के रूप में सर्वप्रथम उल्लेखनीय स्थान 'मेघदूत' का है। वास्तव में यह रचना कालिदास की प्रतिभा का उत्कृष्टतम उदाहरण है इसका प्रमाण है– कवि समाज में इसकी सर्वाधिक प्रियता।

इसी परम्परा का अनुसरण कर त्रिवेणी कवि प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित 'प्रबोधशतकम्' यक्ष का पत्र है। यह एक शतक काव्य है। शत+कन् प्रत्यय से शतक शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। शतक अर्थात् सौ पद्यों में निबद्ध रचना का संस्कृत साहित्य में शतक नामकरण किया गया है शतक काव्य संस्कृत–साहित्य का एक विशेष विभाग है। प्रो. सी.एल. शास्त्री ने शतक–काव्य को गीति काव्य के मुक्तक विभाग में स्थान देते हुये लिखा है– **"मुक्तक आदि स्वतंत्र रचनाओं में भर्तृहरि, अमरूक, मयूर जैसे प्रसिद्ध कवि गिने जाते हैं। इन कवियों के श्लोक चिरकाल से लोकप्रिय रहे हैं और आज भी अपना महत्त्व टिकाएँ हुए हैं।"**

शतक–काव्य में सौ या सौ से ज्यादा मुक्तक प्रकाश के श्लोक होते हैं। डॉ. हर्षदेव माधव का 'मृत्युशतकम्' तथा प्रो. राजेन्द्र मिश्र का 'अभिराजसहस्रकम' प्रसिद्ध शतक काव्य है।

बहुआयामी रचनाधर्मिता के जनक डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी द्वारा रचित 'दूतप्रतिवचनम्' भी दूतपरम्परा में लिखा गया दूतकाव्य तथा खण्डकाव्य है। अमरकोषकार भी दूत उसे ही कहते हैं, जो सन्देश का हरण (ले जाने) करने वाला हो– **'स्यात् सन्देशहरो दूतः'**। 'दूतप्रतिवचनम्' द्विवेदी जी की 'प्रणवरचनावली' में संगृहीत एक श्रेष्ठतम दूतकाव्य है।

प्रत्येक कवियों ने 'मेघदूत' के कथानक को लेकर नवीन तथा भिन्न–भिन्न विधा में रचनाएँ रचकर संस्कृत–साहित्य को समर्पित की है। डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने यक्ष के पत्र को शतक–काव्य रूप में रचा, तो द्विवेदी जी ने मेघरूपी दूत के प्रत्युत्तर को दूतकाव्य अथवा खण्ड काव्य रूप में प्रस्तुत किया परन्तु इन सबसे भिन्न हमारे नित्य नवीन प्रयोगधर्मा कवि डॉ. हर्षमाधव ने मेघदूत के कथानक को एक डायरी का रूप देकर के संस्कृत–साहित्य को सर्वथा नवीन विधा, नवीन शैली प्रदान कर दी। यह डॉ. माधव की उर्वरा शक्ति का ही प्रतिफल है जो उन्होंने संस्कृत साहित्य में कभी भी नहीं लिखी गई–डायरी विधा को स्वीकृत किया तथा उस डायरी में महाकवि कालिदास की कथावस्तु को संयोजित करना सचमुच अत्यन्त साहस का कार्य है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार– **"किसी व्यक्ति के जीवन में किसी विशेष दिन क्या–क्या घटा है, वह क्या–क्या करता है, क्या–क्या अनुभव करता है, क्या–क्या सोचता–विचारता है, किस–किस से मिलता है, आदि का विवरण उसी दिन लिख डालता है, तो ऐसे दिनों की विवरण–शृंखला उसकी 'दैनंदिनी' बन जाती है। यह लिखना उसके अपने लिए होता है। इसलिए अपने मूल रूप में उसकी 'दैनंदिनी' उसका निजी दस्तावेज होती है। इसलिए व्यक्ति विशेष की दैनंदिनी में कुछ ऐसी चीजें होती हैं, जिन्हें वह अपने तक ही रखना चाहता है, और कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं, जिन्हें सार्वजनिक करने में उसे कोई आपत्ति नहीं होती।"**[50]

डायरी में लिखी गई विषय–वस्तु स्वयं कवि के जीवन से सम्बन्धित होती है। डॉ. हर्षदेव माधव **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** नामक यक्ष की डायरी में यक्ष की प्रतिदिन की दिनचर्या का विवरण देते हैं। मेघदूत आदि अन्य काव्यों में कवि सिर्फ यक्ष के विरह का वर्णन करके चुप हो जाता है जबकि हमारे कवि डॉ. माधव यक्ष के उन विरह व्यथित दुःख के हर दिन व हर पल का विवरण देते हैं कि किस प्रकार यक्ष विरहसंतप्त होते हुये भी प्रतिदिन का जीवन–यापन कर रहा है। डॉ. माधव का यक्ष और कोई नहीं है बल्कि वे स्वयं हैं। वे स्वयं यक्ष के चरित्र में डूबकर उसके विरह उसके दर्द को महसूस करते हैं। यक्ष के प्रतिदिन के दर्द को उजागर करने के लिए ही कवि माधव ने हिन्दी साहित्य–जगत् में विद्यमान इस डायरी विधा का प्रयोग संस्कृत–साहित्य में किया तथा संस्कृत साहित्य–जगत् को एक नवीन डायरी विधा समर्पित कर डाली। जो डायरी यक्ष की केवल व्यथा व रुदन का प्रलाप मात्र नहीं है अपितु परिवर्तनशीलजगत् की झांकी है।

2. **विषय–वस्तु की दृष्टि से वैषम्य –** महाकवि कालिदास की कृति 'मेघदूत', प्रो. राजेन्द्र मिश्र विरचित 'प्रबोधशतकम्' डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी द्वारा रचित 'दूतप्रतिवचनम्' तथा डॉ. हर्षदेव माधव विरचित 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' यद्यपि इन सब की विषय–वस्तु का आधार एक ही ही है तथापि विषय–वस्तु की दृष्टि से अन्तर निम्न प्रकार है–

महाकवि कालिदास की 'मेघदूत' के सम्बन्ध में समीक्षकों की दृष्टि है– **"मेघे माघे गतं वयः"**। मेघदूत में इतना पठनीय है कि उसके अध्ययन में ही मनुष्य की

आयु बीत सकती है। इसका कथानक अत्यन्त रोचक है इसलिए परिणाम स्वरूप न पाठक ऊबता है और न मेघ ही। यक्ष की कर्त्तव्यच्युति का पता लगने पर धनपति कुबेर यक्ष को एक वर्ष के लिए पत्नी से वियुक्त होकर भारत में किसी भी स्थान पर विचरण करने का शाप दे देता है। इसी पृष्ठभूमि का कालिदास ने प्रथम पद्य में उल्लेख किया है–

"कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नान–पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया–तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।"[51]

शाप–प्रताड़ित यक्ष वैदेही सीता के स्नान से पवित्र जल से युक्त 'रामगिरि' पर्वत पर दिन बिताता है। विरहाग्नि से सन्तप्त यक्ष अपने अन्दर घुमड़ते हुये आंसुओं के प्रवाह को रोककर अपनी प्रिया की याद में अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। संयोगी व्यक्ति भी मेघ को देखकर विचलित मन हो जाता है तब वियोगी का तो कहना क्या–

"मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा–वृत्तिचेतः।
कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।"[52]

भारतीय परम्परा अनुसार सर्वप्रथम मेघ का अतिथि सत्कार करता है अपनी प्रिया के पास संदेश भिजवाने के लिए आग्रह करता है इसीलिये कुटज के पुष्पों को चुनकर उनसे पूजन करता है तथा उससे संदेश ले जाने की याचना करता है। यक्ष प्रिया के पास पहुँचने के लिए मेघ को मार्ग बताता है तथा मार्ग में जब–जब थक जाये तो पर्वतों पर विश्राम करने तथा भूख प्यास की निवृत्ति झरनों व नदियों के जल से करने का परामर्श भी देता है–

"मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
संदेशं मे तदनु जलद! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपभुज्य।।"[53]

इस प्रकार पूर्वमेघ में यक्षमार्ग का वर्णन करता है। उत्तरमेघ में अलका नगरी तथा यक्ष के भवन, विरहिणी पत्नी के सौन्दर्य का वर्णन करने के पश्चात् यक्ष अपनी पत्नी को आश्वस्त करते हुए कहता है कि सुख तथा दुःख तो जीवन रूपी रथ के पहिये हैं–

"कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।"[54]

उसे विश्वास है कि अब शाप के अन्त होने में केवल चार मास ही हैं, जो शीघ्र ही निकल जायेगें। वस्तुतः 'मेघदूत' का प्रत्येक पद्य बहुचर्चित है। यह विप्रलम्भ शृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण है।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित 'प्रबोधशतकम्' यक्ष के द्वारा यक्षिणी को लिखा गया पत्र है। जो भाव, पीड़ा कालिदास के मेघदूत में उभर नहीं पाये उसी यक्ष की पीड़ा को प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपने शब्द देकर के प्रस्तुत किया है। मिश्र जी ने मेघदूत की परम्परागत भावभूमि को नवत्व प्रदान करते हुए, अपनी कवि कल्पना का प्रयोग करते हुए यक्ष के पत्र के माध्यम से मन के भावों को अभिव्यक्त किया है। कवि ने यक्ष के अन्तस् की पीड़ा को लेकर शतक काव्य की रचना की जिसमें कवि ने महाकवि कालिदास के 121 पद्यों की विषय–वस्तु को 100 श्लोकों में समेटने का प्रयास किया है। कवि मिश्र जी की इस कृति पर **"स्वान्तःसुखाय परहिताय"** की उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। कवि ने अपने प्रश्नों के उत्तर तलाशते हुये यक्ष के मन की अधूरी व्यथा को साहित्य–जगत् के समक्ष प्रस्तुत कर दिया।

यक्ष को रामगिरि के पर्वत पर प्रकृति के विविध रूपों व उपादानों को देखकर प्रतिपल अपनी प्रिया का स्मरण हो उठता है। हिमालय पर लटकते बादलों के समूह का श्यामल वर्ण प्रिया के बालों की, वृक्षों के विवर से आती हुई बाल सूर्य की किरणों में प्रिया के कटाक्षों का, हंसों को देखकर प्रिया की चाल का, बादलों में उठती घटाओं में प्रिया की आंखों के काजल के कालेपन को, कंदफलों को देखकर प्रिया के कपोलों पर लटकती बालियों का स्मरण हो जाता है। इसप्रकार यक्ष को

प्रकृति के हर कण में प्रिया की ही छवि नजर आती है। मन बहलाव के लिये यक्ष शिलातलों पर प्रिया के चित्रों को बनाता है–

"शिलातलेष्वालिखता मया त्वं मुहुर्मुहुर्धातुजभिन्नरागैः।
विनिर्मिताऽप्याजघनं प्रसह्य स्मरोदयादर्धकृतैव मुक्ता।।
गिरीन्द्रसानुप्रभशङ्कुवक्त्रौ पयोधरौ ते विरचय्य सद्यः।
तन्मर्दनोद्दाममनोऽनुरक्त्या हतोऽस्म्यहं मध्यपथेऽवनद्धः।।"[55]

कालिदास का यक्ष **"कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु"** उक्ति का अनुसरण करते हुये संदेश भेजने के लिए मेघ का सहारा लेता है लेकिन समय व परिस्थितियों का यह परिवर्तन 'प्रबोधशतकम्' में दिखायी देता है 'प्रबोधशतकम्' का यक्ष प्रिया को पत्र लिखता है, हो सकता है आज की संचार क्रांति के युग में कोई आधुनिक कवि का यक्ष फोन व लेपटॉप द्वारा अपनी प्रिया से चेटिंग करता नजर आये लेकिन प्रबोधशतकम् में यक्ष इस तथ्य को भली भाँति जानता है।

'प्रबोधशतकम्' का यक्ष कहता है कि भावों को लिखने की अपनी सीमा है। निस्सीम अनन्तभावों, अनुभूतियों व स्मृतियों को एक पत्रखण्ड में समेट पाना अत्यन्त कठिन है–

"न मेऽभिधित्सा भजतेऽवसानं प्रिये। कियन्मात्रमहंलिखानि।
क्वाऽजीवनं भूरिवचस्समाप्यंवियोगवृत्तं क्वच पत्रखण्डम्।"[56]

यक्ष अपनी प्रिया को बार–बार यही आश्वस्त करता है कि वियोग के यह दिन व्यतीत हो जायेगें तथा पुनः उनका मिलन होगा। **"कवि का दृढ़ विश्वास है कि वेदना व तड़पन के कुहासे के बाद प्राभातिक प्रकाश का आना स्वाभाविक है। निर्माण के लिये विनाश की अपेक्षा होती है।"** बिना बीज के भूगर्भ में विनष्ट हुए नवीन अंकुर का जन्म संभव नहीं तभी तो कवि आशावादी दृष्टिकोण का उद्घोष करते हुये कहता है–

"प्यास से ही जनमती अमरावती
हरलहर, वरदान का अभिशाप है।
हर हंसी के मौन में रोदन भरा
हर दिनोदय पर निशा की छाप है।।"[57]

वियोग काल में भी सच्चा प्रेम कभी समाप्त नहीं होता वरन् बढ़ता ही है। अंत में यक्ष कहता है कि मेरे अनन्त भावों को अभिव्यक्त करने के लिये मेरी वाणी समाप्त नहीं होती किन्तु पत्र की सीमा है अतः इस पत्र में अनन्त भावों को भरना ऐसा है जैसे 'गागर में सागर' भरने का प्रयास। अंत में वह पूरी तरह यक्षिणी को इस बात के लिए आश्वस्त करता है कि पत्नी व पति कभी दो होते ही नहीं अतः द्वैतभाव को छोड़कर पति–पत्नी मंगल दाम्पत्यभाव को प्राप्त करें।

डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी ने 'दूतप्रतिवचनम्' में मेघदूत के आगे के कथानक को स्वीकृत किया है द्विवेदी जी के अनुसार मेघदूत पढ़ने वाले प्रत्येक पाठक के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी कि क्या कालिदास के अचेतन मेघ ने यक्षिणी को यक्ष का संदेश दिया और यदि दिया तो उस मेघ ने क्या वापस आकर यक्ष को यक्षिणी का संदेश सुनाया। बस पाठक समूह की इसी जिज्ञासा को आधार बनाकर के डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी ने 'दूतप्रतिवचनम्' में उस मेघरूपी दूत के प्रत्युतर को विषय–वस्तु बनाकर 62 पद्यों में प्रस्तुत किया है। द्विवेदी जी के अनुसार कवि कुलगुरु कालिदास का भेजा हुआ मेघरूपी दूत अलका नगरी से यक्ष पत्नी के वृत्तान्त से अवगत होकर दुःख से कराहता हुआ वापस लौटकर आता है।

डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी के 'दूतप्रतिवचनम्' के मेघ के अनुसार अब कालिदास की यक्षिणी का वह पारम्परिक विरह नहीं है अपितु उसके आधुनिका होने का आश्वासन् है। कवि ने यहाँ यक्षिणी को पीड़ा से इतर एक सामान्य बाला के रूप में चित्रित किया है जिससे आधुनिक समाज की विसंगतियों को उभारा जा सके। इसमें यक्षिणी विरह में मलिनवस्त्रा, एकवेणीव्रता, उष्ण साँसों से रक्तओष्ठ वाली नहीं है अपितु 'टाइमपास' करने के लिए वह नौकरी की तलाश करती है। मॉडल की तरह सज–सँवर कर अत्यन्त निर्लज्जतापूर्वक झागों में अपने अर्धनग्न शरीर को प्रदर्शित करती हुई साबुन का विज्ञापन दे रही है।

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना यक्षिणी या त्वदीया
टी.वी. मध्ये चपलनयना तारिका सा दृश्यते।
कान्ते स्वा› विमलवटिकं फेनिलं लिम्पमाना।
स्नान्त्युन्मुक्ता भवति विविधक्रय्यवस्तु–प्रचारे।"[58]

इस प्रकार के आ>क प्रदर्शन का उद्देश्य यक्षिणी को चरित्रहीन दिखाना नहीं है अपितु आधुनिक समाज के परिवर्तित मूल्यों को प्रस्तुत करना है। यह यक्षिणी कवि कालिदास की न होकर 'प्रणव' की मानसी सृष्टि है। अतः समय के प्रभाव से कैसे बच सकती है।

गर्भाधान के प्रश्न के विषय पर कवि कहता है कि यहाँ मेघदूत की श्वेतवलाकाओं की पंक्ति नहीं है जो **'गर्भाधानक्षणपरिचयात्'** से अपना प्यारा परिचय देती हो बल्कि यहाँ तो **'अल्ट्रासाउण्ड–व्यवस्था'** से परिचित भारतीय रमणीयों का रमण है जो गर्भ के विषय में पता लगने पर भ्रूणहत्या का अपराध करती है। नारी–पीड़ा का अध्याय सम्पूर्ण खण्डकाव्य में यत्र–तत्र मुखरित होता रहा है।

कवि कहता है भ्रष्टाचार ने भारत देश के मध्य में अपना अशुभ चरण दृढ़तापूर्वक जमा लिया है–

"भ्रष्टाचारस्त्वशुभचरणंन्यस्तवान्देशमध्ये,
शिष्टाचारे स परिणमतेऽहर्निशं तीव्रगत्या।।"[59]

अब आतंकवादियों द्वारा निर्दयतापूर्वक लोगों को मारा जा रहा है, तीर्थस्थलों पर षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं खेतों में उगने वाला अन्न मलिन उर्वरकों द्वारा स्वादरहित व रोग वृद्धिकारक हो गया है मधुर अम्ल आदि छः रस अब नष्ट हो चुके हैं और क्या–क्या कहूं। इसप्रकार कवि इस खण्डकाव्य के माध्यम से भारत वर्ष की सम्पूर्ण समस्याओं को सामाजिक पटल पर प्रस्तुत करता है।

इन सब काव्यों की विषय–वस्तु से सर्वथा भिन्न विषयवस्तु का विचरण सर्वाधिक प्रयोगशील, सर्वाधिक सम्भावनाशील कवि डॉ. हर्षदेव माधव के मस्तिष्क में हो रहा था। उनकी मानसिक सृष्टि में मेघदूत की कथावस्तु पर आधृत एक नवीन कल्पना जन्म ले रही थी वे मेघदूत के शापित पात्र (यक्ष) तथा पृथ्वी के अन्यान्य भौगोलिक वर्णनों से संतुष्ट नहीं थे। वे यक्ष को निर्दोष चरित्र से युक्त नायक बनाना चाहते थे। केवल महाकवि कालिदास की तरह प्रकृति–वर्णन में उलझकर नहीं रहना चाहते थे। डॉ. माधव की इस मानसिक उथल–पुथल का परिणाम बनी– **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** नामक यक्षस्य वासरिका।

यक्ष की वासरिका में कवि माधव ने 'मेघदूत' के यक्ष को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि माधव का नायक (यक्ष) कुबेर के शाप देने पर दुःखी होने वाला, अनुग्रह की याचना करने वाला, कुबेर के चरणों में गिरकर दया की प्रार्थना करने वाला नहीं है अपितु अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिये दण्ड को स्वीकार करने वाला है यक्ष कहता है–

"अहम् आज्ञाचरोऽस्मि, यक्षेश्वरस्य क्रीतदासो नास्मि। यक्षाधिपो मे शरीरे प्रभवति, असौ न प्रभवति मम गौरवे। मया गौरवं रक्षितुं दण्डः स्वीकृतः। कदाचित् स्वमानस्य मूल्यमपि देयं भवति। किन्तु गौरवं विना को लाभ इन्द्रासनेनापि? शिवसखः केवलं मां अलकायाः दूरीकर्तुमशक्नोत्, न मम स्वमानात्।"[60]

डॉ. माधव यक्ष के यक्षत्व की रक्षणार्थ रत्नेश्वर जैसे खलनायक की सृष्टि करते हैं उसके बाद पापरुचि, वसुसेन, अरण्य के ऋषि–मुनि, ग्रामीण–जनता, शांखायन, पुण्यकेतु, पद्मिनी, दाधीच, कालजङ्घ, पिप्पलाद, नागपाल आदि नये–नये पात्रों का आविर्भाव होता है। पार्थिवी के पदार्पण के साथ ही पाठक एक विस्मयकारी, नूतन अलौकिक कल्पना संसार में प्रविष्ट हो जाता है डॉ. माधव की कल्पना पार्थिवी यक्ष के शाप को, उसके पृथ्वी पर निष्कासन को पृथ्वी यात्रा में परिवर्तित कर यक्ष के जीवन को नया अर्थ प्रदान करती है। वह कहती है– **"भवान् न जानाति प्रतिक्षणमेवास्ति महोत्सवः पृथिव्यामिति। अतएव भूतकालाद् दुःखितः, भविष्यस्वप्नाद् वञ्चितो भ्रमति। यदा भवान् मृत्योर्मौनं ज्ञास्यति, तदैव जीवनस्य भाष्यं वाचयितुं शक्ष्यति। यदि भवान् पृथ्व्यां पतनं पृथ्व्यांकृतायां यात्रायां परिवर्तयेत् तर्हि भवतो विजयः स्यात्, कुबेरस्य पराजयः।"**[61]

यक्ष के पूर्वजन्मों की उद्भावना पार्थिवी के साथ उसका जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध, मधुविद्या की उपासना, शाप मुक्ति के बाद भी पृथ्वी से न लोटने का संकल्प समूची भावभूमि को एक नया मोड़ प्रदान करता है।

वस्तुतः 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' यक्ष की आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक यात्रा के साथ अपने जन्मजन्मान्तर का प्रेम प्राप्त करने की कहानी है। यक्ष 'आत्मसाक्षात्कार' कर दिव्यता अनुभव करता है। मन्त्रानुभूतियों, आर्य–ऋषि संस्कृति की भव्यता और पृथ्वी अवतरण की सार्थकता में ही यक्ष का जीवनदर्शन समाविष्ट

है। इसप्रकार मौलिक प्रतिभा सम्पन्न सर्जक डॉ. हर्षदेव की 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' यक्षस्य वासरिका डायरी विद्या में मेघदूत का विस्तार भले ही है परन्तु मेघदूत की कथावस्तु पर आधारित रचनाओं से सर्वथा भिन्न, नये प्रयोग के लिबास में नये आयाम का मूर्त रूप है।

3. **भाषा–शैली की दृष्टि से वैषम्य–** परस्पर विचारों के आदान–प्रदान तथा अन्तर्निहित भावों को व्यक्त करने का एक मात्र माध्यम है– भाषा। कवि के मन में ज्यों ही कोई नवीन भाव उदित होता है, उसी के अनुरूप वह भाषा का प्रयोग करता है। भाषा भावों को अभिव्यक्त करने का साधन है, दूसरे शब्दों में वह भावों की वाहिका है जिस प्रकार शरीर के बिना प्राणों की कोई स्थिति नहीं हो सकती, उसी प्रकार भाषा के बिना भी भावों की कोई स्थिति नहीं हो सकती। जिस कवि का भाषा पर जितना अधिकार होता है, वह अपने भावों को विचारों और अनुभूतियों को हृदयावर्जक ढंग से प्रस्तुत करता हैं।

साहित्य में भाषा द्वारा भावों की अभिव्यक्ति के ढंग को शैली कहा जाता है। भाषा तथा शैली हांलाकि पृथक शब्द है किंतु दोनों उसी प्रकार अविभाज्य है जैसे– जल एवं जलवीचि, स्वर्ण एवं कांति अथवा शब्द और अर्थ। डॉ. पाण्डेय के अनुसार– "विचार रूपी जल में शैली लहरों की भांति हैं जो विचारों के आन्दोलन को मूल रूप देती है।"[62]

महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' भाषा–शैली की श्रेष्ठता का उत्तम उदाहरण है इसमें मनोभावों की मधुरतम अभिव्यक्ति है जो भाषा सौन्दर्य के द्वारा हृदयावर्जक रूप ले लेती है। भाषा–शैली की दृष्टि से कालिदास की सभी रचनाएँ पद–लालित्य से पूर्ण है। सरलता और स्वाभाविकता के साथ ध्वन्यात्मकता कालिदास की भाषा के प्राण है। शब्दों का विन्यास ऐसा लगता है कि जैसे उन्हें एक निश्चित स्थान मिल गया हो जहाँ से वे विस्थापित नहीं किये जा सकते। भाषा की सहजता का उदाहरण है–

"ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य वर्हं भवानी,
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापिकर्णेकरोति।
धौतापा› हरशणिरुचा पावकेस्तन्मयूरं,
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः।।"[63]

प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर समुचित शोभा से अन्वित है।

भावों की अभिव्यक्ति में भी कवि की शैली सर्वथा मौलिक है जिस भाव को अन्य कवियों ने जिस रूप में व्यञ्जत किया है कालिदास की रचनाओं में वही भाव एक सर्वथा नवीन शैली में अभिव्यक्त हुआ है। वस्तुतः कालिदास की अभिव्यञ्जना शैली सर्वथा मौलिक है जिसमें अभूतपूर्वरमणीयता एवं सरसता देखी जाती है।

प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र कृत 'प्रबोधशतकम्' भी भाषा–शैली की दृष्टि से प्रशंसनीय एवं सराहनीय है। मिश्र जी ने यक्ष के माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए 'पत्र–लेखन' को माध्यम रूप में चुनकर कम व नपे तुले शब्दों में अपने भावों को अभिव्यक्त किया है जो अद्भुत् है। वह कहते हैं–

"हिमावृतं पर्वतराजवक्षः पर्णीभवेत्सिन्धुजलं मसी च।
स्याल्लेखनी नन्दनपारिजातः शक्ष्यामि वक्तुं स्वरुजं तदैव।।"[64]
"समापनं नैति मदीयवाणी जानाम्यहं किं करवाणि किन्तु।
घटेऽब्धिमापादयितुं प्रयत्ना येषाममीषामिदमेवदैन्यम्।।"[65]

यक्षिणी के लिए मिश्रजी ने हर श्लोक में नवीन शब्द सम्बोधन दिया है यथा– **प्रिये, नन्दिनी, मीनाक्षी, शफराक्षि, साध्वि, शुभे, भामिनि, बाले, मुग्धे, मृगाक्षि, करभोरु, सुमध्यमे, कल्याणि, मानिनि** आदि सम्बोधन कवि के समुद्र रूपी शब्द भंडार को दिखाते हैं साथ ही विषय व भाव के अनुरुप शब्द योजना कवि की अद्भुत प्रतिभा दिग्दर्शन कराती है। शब्द चयन सामर्थ्य, भाषा पर अधिकार, भाषा में गतिमयता, प्रवाह, संस्कृत के तत्सम शब्दों की विपुलता उन्हें आधुनिक संस्कृत भाषा का सर्वोत्कृष्ट कवि सिद्ध करती है।

इसी प्रकार डॉ. इच्छाराम द्विवेदी रचित 'दूतप्रतिवचनम्' भाषा–लालित्य, छान्दस् सौष्ठव, विषय–गाम्भीर्य तथा शास्त्रीय परम्परा का उत्कृष्ट रूप है। काव्य की मन्दाकिनी हो अथवा कथाओं के सुनहरे शिखर–कटाक्ष व्यंग्य में 'प्रणव' की आत्मा बसती है। वे अभिधेय विषय को अपने शब्दों के इन्द्रजाल में ऐसा बांधते हैं कि पाठक चकित, स्तब्ध–सा दूर चला जाता है। इनके प्रत्येक छन्द समाज से इतने सटकर चलते हैं कि पाठक उसमें डूबकर अनुभव करता है।

कवि ने मेघदूत के छन्दों में से एक अथवा आधी पंक्ति लेकर उसका वैपरीत्य प्रयोग करके चमत्कार उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है यथा–

"याच्ञा मोघा भवति सुजने नाधमे सा कदाचित्।।"[66]

अर्थात् इस युग में सज्जन व्यक्ति से की गई याचना व्यर्थ हो जाती है परन्तु यदि यह याचना अधम पुरुष से की जाए तो निष्फल नहीं होती। यहाँ इस बहुप्रचलित सूक्ति को विरोधी भाव से जोड़कर कवि ने अपनी मौलिक सूझ का परिचय दिया है। कवि ने मेघदूत की सूक्ति– **"कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु" का प्रयोग दूतप्रतिवचनम् इस प्रकार किया है यथा–**

"कृष्णं द्रव्यं प्रचुरमनिशं वस्तु वैदेशिकं च,
संचिन्वाना दनुजवणिजो देशमध्ये रमन्ते।
भोग्यं तेषां रमण कुशलाश्चापि बाला भवन्ति,
लोभार्था हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।"[67]

अर्थात् राक्षसवृत्ति के व्यापारी निरन्तर कालेधन तथा विदेशी वस्तुओं का संग्रह करते हुये आमोद–प्रमोद में रत है। उनके भोग्य पदार्थ रतिकुशल युवतियाँ भी है सत्य है लोभ के वशीभूत पुरुष क्या जड़, क्या चेतन सभी के प्रति स्वभाव से दीन होते हैं। इसी प्रकार–

"गच्छन्तीनां रमणवसति योषितां तत्र नक्तं"[68]

श्लोक का प्रयोग इसप्रकार है–

गच्छन्तीनां प्रियतमगृहं सौम्य यासामभूवम्,
विद्युद्भासा, सरल विधिना मार्गकृत्सुन्दरीणाम्।
मालव्यस्ता मधुरवदनाश्चारुहासे प्रसिद्धाः,
मुम्बय्यां हाऽभिनयकुशलास्तारिका हन्त जाताः।।[69]

अर्थात् हे मित्र अपने प्रियतम के घर जा रही जिन सुन्दरियों का बिजली चमकाने जैसी सरल विधि से मैं मार्गदर्शक हुआ करता था, अपनी मुखाकृति के माधुर्य तथा सुंदर हंसी के लिए प्रसिद्ध मालव सुन्दरियाँ अब मुम्बई में अभिनय कला में कुशल अभिनेत्रियाँ हो गई है।

इस प्रकार के अनेक प्रयोग इस कृति के सृजन–बिन्दु है। नवीन शब्दावली में प्रस›(नुकूल टी.वी., डबलरोटिका, विमलवटिकं (साबुन) मोटर, यन्त्रशाला–जलं, स्टेनो आदि का अपरिवर्तित रूप में प्रयोग किया गया है यह समस्त परिदृश्य प्रणव को युग–द्रष्टा सिद्ध करते हैं।

इसीप्रकार कवि डॉ. हर्षदेव माधव ने ''मूकोरामागिरिर्भूत्वा'' को अपने लेखन–कौशल से जो उत्तरीय पहनाया है वह बेजोड़ है कवि ने अपनी प्रतिभा व कल्पना शक्ति के आधार पर मेघदूत की कथा को एक नया आयाम दिया है तथा अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर संस्कृत गद्य का नवीन अध्याय लिखा है। डॉ. माधव की भाषा सीधी, सरल है। उनकी भाषा में शब्दों का कहीं कोई आडम्बर नहीं है अपितु सौम्य व प्रांजल भाषा का प्रयोग किया गया है। डॉ. माधव उन कवियों में से है जिन्हें दिखावे में विश्वास नहीं है अपितु सीधे–साफ शब्दों में अपनी बात कहने में विश्वास है। कवि माधव अपने अन्तस्थ गंभीर से गंभीर भावों को समर्थ पदावली व उचित शैली विन्यास के द्वारा यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त है यथा–

> **"मम समक्षं न सन्ति कौरवाः, न सन्ति महारथाः, न सन्ति वा सपक्षे केऽपिबन्धवः। भग्ने रथे निशस्त्रो भूत्वा शतधा खण्डितोभूत्वा युयु–त्सुरहं मामपि स्थिरीकर्तुं न प्रभवामि! तथापि योद्धव्यमेव! स्वमहाभारतं स्वात्मनैव जेतव्यम्। सारथिरपि न दृश्यते! भवतु! विनापि कवचं वा शिरस्त्राणं युद्धं करिष्ये–शापान्तं गन्तुं–युद्धम्! अत्र जयो वा पराजयो ममास्ति, न कस्यापि। कामम् अस्तंगमितमहिमास्मि, मम युयुत्सा नास्तं गता, नास्तं गतं आत्मतेजो मे।"**[70]

महाकवि कालिदास को 'मेघदूत' में जो मेघ '**वप्रक्रीड़ापरिणतगत**' के समान प्रतीत होता है वही मेघ हमारे कवि माधव को '**श्वेतशशकसदृश**' कोमल व मखमली प्रतीत होता है। पर्वत शिखर **"नीहारच्छन्नाः पर्वतशिखराः कूर्पासकानि परिदधन्त इवलक्ष्यन्ते।"**[71] प्रतीत हो रहे हैं। सुख की परिभाषा को डॉ. माधव इस प्रकार पंक्तिबद्ध कर पार्थिवी के माध्यम से कहते हैं–

"सुखं प×चक्षणपर्यन्तमपि भवेत् किन्तु तत् सुखमेवास्ति। मनुष्यलोके जीवनंदीर्घ भवेद् वा लघु भवेत्। जीवितस्यपूर्णताया अनुभव एव साफल्यं ददाति। अन्यथास्वर्गस्यदीर्घजीवनेऽपि अतृप्तिस्तथैव वर्तते।"[72]

डॉ. माधव की ये छोटी–छोटी गद्यबद्ध पंक्तियाँ गम्भीर अर्थ को सहज में ही प्रकट कर देती है। माधव ने अपनी इस डायरी में सहज व सरल गद्य भाषा के साथ बीच–बीच में पद्यों का प्रयोग भी किया है–

"अविहा! मम यक्षत्वस्य स्मरणं जातम्।
भयरहितमस्तित्वमेव अमरत्वस्य चिह्नमस्ति।।"[73]

अर्थात् अरे मुझे बचाओ! मुझे अपना यक्षत्व स्मरण हो आया। मेरा अस्तित्व ही भयरहित है जो अमरत्व का चिह्न है। इसीप्रकार अन्य उदाहरण है–

"तादृशं खड्गमाप्नोति येन हस्तस्थितेन वै।
अष्टादशमहाद्वीपे सम्राड् भोक्ताभविष्यति।।"[74]

अर्थात् जो इस ख›मन्त्र को प्राप्त करता है, जिसके द्वारा यह हाथ में स्थित हो जाता है वह अठारह महाद्वीपों का भोग करने वाला सम्राट होता है।

डॉ. माधव की भाषा–शैली पाठक के हृदय को स्पर्श कर नवीन सोच प्रदान करने में सक्षम है उनकी भाषा प्रसिद्ध लोकोक्ति का अनुसरण करती है– **"देखन में सीधी दिखे, घाव करे गम्भीर।"**

4. **नारी चित्रण की दृष्टि से वैषम्य** – महाकवि कालिदास, अर्वाचीन कवि प्रो. राजेन्द्र मिश्र, इच्छाराम द्विवेदी तथा डॉ. हर्षदेव माधव आदि सभी ने अपनी–अपनी रचनाओं में नारी–चित्रण को उदात्तता से प्रस्तुत किया है महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' की नायिका यक्षिणी को युवतिजगत् में विधाता की प्रथम सृष्टि कहा है– **"या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः"**[75]

वस्तुतः वह है भी ऐसी ही, सांवली–सलोनी ही नहीं तन्वी भी और चकिता हरिणी प्रेक्षणा भी–

"तन्वी श्यामा शिखरिदशनापक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्येक्षामाचकितहरिणीप्रेक्षणानिम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,
या तत्र स्याद् युवति विषये सृष्टिराद्येव धातुः।।"[76]

वहीं प्रो. राजेन्द्र मिश्र के 'प्रबोधशतकम्' की नायिका यक्षिणी के सौन्दर्य का वर्णन प्रत्येक श्लोक में किया गया है वे यक्षिणी को प्रत्येक श्लोक में भिन्न–भिन्न सम्बोधन से परिभाषित कर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते है– हे मृगाक्षि (मृग के नेत्रों की चंचलता को धारण करने वाली) हे शफराक्षि (चमकीली मछली के समान आँखों वाली), हे नतगात्रि (झुके हुये कंधो वाली) हे तन्वी (छरहरे शरीर वाली), हे चटुलाक्षि (चंचल नेत्रों वाली) हे शुभाङ्गि, हे सुमध्यमे (सुन्दरमध्य भाग (कटिप्रदेश) वाली, कल्याणी, मानिनि, कामिनि, प्रमुग्धे आदि। इस प्रकार मिश्र जी हर जगह पाठक को यक्षिणी के सौन्दर्य से अवगत कराते हैं।

मिश्र जी का यक्ष यक्षिवी के अधरबिम्ब के जोड़े का स्मरण करते हुये कहता है–

"कपोतहस्तायितपत्रयुग्मं विलोक्य सूर्यास्तमिते द्रुमाणाम्।
स्मरामि बाले। वचान्तरायं सुसंवृतं तेऽधरबिम्बयुग्मम्।।"[77]

इस प्रकार मिश्र जी की मानसी सृष्टि (यक्षिणी) को सौन्दर्य भी अपरिमित है।

महाकवि कालिदास के मेघदूत की **'तन्वीश्यामा'** यक्षिणी का स्वरूप 'दूतप्रतिवचनम्' में सर्वथा भिन्न हो जाता है द्विवेदी जी की यक्षिणी वर्तमान समय के प्रभाव से नहीं बच पाती है यथा–

"तन्वीश्यामा ....विविधक्रटयवस्तुप्रचारो।।"[78]

अर्थात् हे यक्ष जो तुम्हारी कृंशागी, नवयुवती, नुकीले दांतों वाली यक्षिणी थी वह अब टेलिविजन के पर्दे पर चंचल नेत्रों वाली अभिनेत्री बन गई है।

'मेघदूत' की घुँघराले बालों वाली सुन्दरियों का स्वरूप अब इस प्रकार का हो गया है–

"सुन्दर्यस्ता पथि न मिलिता उद्गृहीतालकान्ताः,
केशास्तासामगुरुहिता नापितैः कृत्तपूर्वाः।
शैम्पूद्रव्यैः सुरभिमसृणा ब्यूटिकावीथिकासु,
दृष्टा बन्धो चकितचकिंत ते मया भिन्नबन्धाः।।"[79]

अब घुंघराले बाल नाइयों द्वारा कई शैली में छोटे कर दिये गये हैं, अगुरु की गन्ध से सुवासित के स्थान पर अब ब्यूटी पार्लरों में शैम्पू प्रसाधन द्वारा सुगन्धित व चमकीला किया गया है।

द्विवेदी जी के अनुसार अब आधुनिकता के नाम पर नायिकाओं का स्वरूप पूर्णतया भिन्न हो गया है।

इसी प्रकार हमारे कवि डॉ. माधव की मानसी रचना (पार्थिवी) का कोमल–कान्त सौन्दर्य इस प्रकार है–

"तन्वी क्षामा पक्वबिम्बाधरोष्ठी, नैसर्गिकं रूपम्, पाण्डुक्षामं वपुः, ललिता देहलता, मृगनयनी इव, उद्यानलतायाः प्रतिकृतिरिव, विस्मृतकमलवासा लक्ष्मीरिव, अकाण्डे विनापि समुद्रमन्थनं प्रादुर्भूता वारुणीव, माधवीं शोभां द्रष्टुकामेव वनदेवी, धरणीतल प्राप्ता देवा›नेव, विस्मृत–दिवसकालेव कौमुदी, त्यक्तजलाशयप्रीतिः कमलिनीव सा अकृतकसौन्दर्येण राजहंसीव कमलाद् बिसतन्तुवन्मे मनः प्रसभं कर्षन्ती विचरति।[80]

अर्थात् स्वाभाविक सौन्दर्य की स्वामिनि वह पार्थिवी आकर्षक व कृशांग देहयष्टि को धारण करने वाली है। अन्य प्रसंग में डॉ. माधव पार्थिवी के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार भी करते हैं–

"कौसुम्भवस्त्रं श्वेतोपवस्त्रेण सह तया धृतम्। कुन्दपुष्पैर्मूर्ध
–जकलापोऽलङ्कृतः हस्तयोर्बिसवलयेधृते, कण्ठे आम्राशोक
म×जरीमयीपुष्पमालाधृता। सासौम्येवेषेणापि अपूर्वां श्रियं धारयतीति।"[81]

इस प्रकार डॉ. हर्षदेव माधव की पार्थिवी अपूर्व व अद्भुत सौन्दर्य की साम्राज्ञी है।

5. **प्रकृति–चित्रण की दृष्टि से वैषम्य** – प्रकृति–चित्रण यूं तो प्राचीन व अर्वाचीन सभी कवियों का रुचिकर विषय रहा है पर हमारे इन कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति के भिन्न–भिन्न रूप को दर्शाया है।

महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' तो प्रकृति–चित्रण की दृष्टि से अप्रतिम एवं अतिरमणीय है वस्तुतः कालिदास की कला का तो विकास ही प्रकृति–चित्रण से ही

आरम्भ होता है। इन्होंने सर्वत्र अपनी रचनाओं में प्रकृति और मानव में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है तथा प्रकृति का संश्लिष्ट एवं रूपयोजनात्मक वर्णन किया है। कवि का विश्वप्रसिद्ध गीतिकाव्य 'मेघदूत' प्रकृति–वर्णन का ही काव्य है उनका पूरा कथानक प्रकृति प्रांगण में ही चलता है। यक्ष और मेघ प्रकृति के ही रूप है। उनकी प्रकृति मानव के समान ही सचेतन एवं सजीव है मानव के सुख दुःख में संवेदना प्रकट करने वाली है वह कहीं भी मूक, चेतनाहीन व निष्प्राण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने प्रकृति–चित्रण के ही उद्देश्य से मेघदूत जैसे अति लघु कथानक की कल्पना की है। प्रकृति के इन विविध रूपों के लिये मेघदूत के ये स्थल द्रष्टव्य हैं–

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां।
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः।
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।[82]
कर्तुंयच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां,
तच्छुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः,
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।।[83]

वर्षारम्भ काल में हरित और कपिश वर्ण वाले जिनमें अभी आधे ही केसर निकल पाये हैं, कदम्ब के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। एक ओर हरित कदली वृक्ष खड़े हुए हैं जिनमें अभी प्रथम बार ही कलियाँ निकली है। प्रथम वर्षा जल को प्राप्त कर उच्छवसित भूमि से सुगन्ध निकलने लगी है। वनगज सुगन्धित वायु का अपनी सूंड के छिद्रों से पान कर रहे हैं। अतः उनके नाक के छिद्रों से ध्वनि निकल रही है वर्षाकालीन वायु को प्राप्त कर गूलर वृक्षों के फल भी पक गये हैं–

"नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरुढै–
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः,
सार›ारस्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।।"[84]

वस्तुतः मेघदूत का प्रकृति–चित्रण मानवीय भावनाओं का ही चित्रण है। मेघदूत में प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन एवं संवेदनशील रूप के अतिरिक्त मानव और मानवेतर जीवों के लिये उपयोगिता भी सर्वत्र देखने को मिलती है।

वहीं प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का प्रकृति–चित्रण इस प्रकार है–

"यथा प्रपातः प्रहिणोति पत्रं सरित्करैः प्रेयसि! सिन्धुपार्श्वे।
मया तथैवाम्बुदमालिकाभिस्त्वपादमूलेषु रतिर्विसृष्टा।।"[85]

अर्थात् समुद्र के समीप में जैसे प्रपात (झरना) सरिता के हाथों के द्वारा पत्रों को गिराता है। उसी प्रकार मेरे द्वारा बादलों की पंक्तियों के द्वारा तुम्हारे पैरों में रति (प्रेम) छेड़ा गया है।

"यथा वसन्तः प्रतिणोति पत्रं पिकीरूतैः कामिनि! कामपार्श्वे।
तथामया मालयगन्धवातैर्मनोगतिर्मे हृदि ते निविष्टा।।"[86]
यथा रविः प्रेषयते स्वपत्रं मयूखहस्तैर्जलजातपार्श्वे।
मयाऽपि मीनाक्षि! चुचुम्बिषा मे तथाऽर्पिताचन्द्रमुखाय भृ›ः।।[87]

जैसे वसन्तऋतु कोयल की ध्वनि के द्वारा कामदेव के पास पत्र भेजती है उसी प्रकार मलय की सुगन्धित वायु के समान मैंने मन की गति को तुम्हारें हृदय में प्रविष्ट कराया। जैसे सूर्य अपनी किरण रूपी हाथों के द्वारा कमल के समीप अपने पत्र को प्रेषित करता है उसी प्रकार चन्द्रमा रूपी मुख के लिये भंवरों के द्वारा मैंने चुम्बन की इच्छा अर्पित की।

इस प्रकार मिश्र जी ने प्रकृति का मानवीयकरण करके प्रस्तुत किया है।

वहीं डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी ने मेघदूत के रम्य–सुरम्य स्वरूप के वर्तमान में प्रदूषित होने का वर्णन किया है–

"आसारे मे प्रचुरजलदे हर्षदे शान्ततापे,
क्रीडासक्ताविवृततनवः स्नानमग्ना न बालाः।
नष्टा तेषां श्रमविरचिता कार्गली नौर्मनोज्ञा,
मल्हाराणि व्यपगतशुचान्यत्र मौनं भजन्ति।।"[88]

पानी भर देने वाली, तपन को दूर भगा देने वाली, आह्लाद प्रदान करने वाली वर्षा अब कहीं देखने को नहीं मिलती। सुहावनी कागज की नाव भी अब नष्ट हो गई है। उदासी दूर करने वाले मल्हार गीत भी अब मौन भाव को प्राप्त हो गये है। आज का मानव स्वार्थान्ध होकर प्रकृति का हनन कर रहा है–

"रेवा खिन्ना प्रतिदिनमहो बन्धकृद्भिर्विबद्धा,
ठेकेदारैः परमनुदिनं छिद्यते काननं तत्।
सीमेण्टार्थं कण विरचने यन्त्रशालाऽसुरीभिः,
तु›ो विन्ध्यो व्यथितहृदयश्चूर्ण्यते पिष्यते च।।"[89]

प्रकृति कवि कालिदास की प्रकृति का कोमल, मधुर एवं सरस एवं भव्य रूप वर्तमान में विलुप्त हो गया है।

वहीं सबसे भिन्न हमारे कवि डॉ. हर्षदेव माधव ने शस्यश्यामला युक्त इस पृथ्वी के प्राकृतिक सौन्दर्य का रमणीय रूप इस प्रकार दर्शाया है–

"रामगिरिपर्वते सर्वत्र तृणाङ्कुरहरितिमा विस्तृतोऽस्ति। जलाशयेषु नूतनवारिस×चये तरन्ति हंसाः। विकसितानि सन्ति कुमुद–कमललतावृन्दानि। मयूरकेकाभिः प्रतिध्वनिताः सन्ति दिशः। कदम्ब–सर्जार्जुन–नीप–केतकी सौरभवासितः समीरो वपुषि चन्दनलेपायते। मयूरनृत्यदर्शनमग्ना पार्थिवी पृष्टवती–'अप्यस्ति अलका रमणीयतरा?"[90]

"तमालसप्तच्छदप्लक्षोदुम्बरवटवृक्षाणां शीतलाश्छायाः विस्तृतादिवसेऽपि सायंकालभ्रमं जनयन्ति। प्रस्रवणजलवारिशीतला भूमिभागाः। शाखामृगाणां स×चारो दृश्यते स्थाने स्थाने। कीरकोकिलकपोतकूजनयुक्ताः सन्ति पादपाः वर्षा समाप्तौ शेफालिकानां गन्धः वनगजमदगन्धभ्रममुत्पादयति।"[91]

रामगिरि पर्वत पर सर्वत्र तृणाङ्कुरों की हरियाली फैली हुई है जलाशयों में नवीन जल के आने पर हंस तैर रहे हैं। कुमुद, कमल की लताओं के समूह विकसित हो रहे हैं। मयूर की केका ध्वनि से दिशाएँ गुंजायमान है, कदम्ब, अर्जुन, अशोक, केतकी की सुगन्ध से सुगन्धित वायु शरीर में चन्दन का लेप सा कर रही है। तमाल, सप्तपर्ण, प्लक्ष, उदुम्बर वटवृक्षों की शीतल एवं घनी छाया होने से लोगों

को दिन में भी सायंकाल का भ्रम होता है निरन्तर बहते हुये जल से भूमि शीतल हो रही है। शेफाली पुष्प की गन्ध वन हाथी के मद की गन्ध का भ्रम उत्पन्न कर रही है। इस प्रकार प्राकृतिक शोभा सम्पन्न रमणीय स्वरूप वाली पृथ्वी कुबेर की स्वर्ण नगरी अलका से भी सुन्दर प्रतीत हो रही है।

डॉ. माधव प्राकृतिक सौन्दर्य में इस तरह रम गये हैं कि पार्थिवी के सौन्दर्यवर्धक उपकरण भी प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं–

"पार्थव्या अद्यशिरसिबकुलमालाधृता। यूथिकाकुड्मलैर्हारोनिर्मितः।
कदम्बपुष्पाभ्यां कर्णपूरे रचिते। वनपुष्पाणां कटिमेखला कृता।।"[92]

इसमें निःसंदेह कवि ने प्रकृति के कोमल मधुर व सरस भव्य रूप का ही विशेषतया चित्रण किया है परन्तु प्रकृति के भयावह रूप को कवि ने नकारा नहीं है। इनमें प्रकृति के गुणों के साथ उसके अवगुणों को भी स्वीकारने का साहस है। प्रकृति के रोद्र रूप का वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं–

"कुसुमसमययुगमुपसंहरन् ग्रीष्माभिधानः महाकालः सरोषं शासनं प्रसारयति। ललाटंतपस्तपनो विश्वं दहति। सरोवरेषु मलिनपडॅयुक्तानि जलानि सन्ति। कुत्रचित् झिल्लिनादानुकारीणि निर्झरजलानिदृश्यन्ते। दावाग्निः कुत्रचित् रोद्रमहाकालस्य नीराजनां करोति। सर्पफुत्कारजनितवह्निना द्योततेगिरिगुहाविविक्तम्।"[93]

"विषादग्रस्त इव सूर्यो न प्रकाशते। दिशोमेघागमनप्रतीक्षाव्याकुलाः सन्ति। जलस्थानेबकाः पडॅशेषे पल्वले मत्स्यान् अन्वेषयन्ति। वसन्त वैभवं समाप्तिं गतम्। अत एकः कोकिलः सहकारशाखायां जोषमास्ते। प्रौढपुष्पाणि वसुधातले विकीर्णानि। वायसा वृक्षशाखान्तरे नीडरचना कर्मणि सक्ताः सन्ति। पिप्पलतले पिपीलिकाः श्वेताण्डान् धृत्वा बिलान्तरं गच्छन्ति।"[94]

अर्थात् पुष्पों के समय (वसन्तकाल) का नाश करता हुआ ग्रीष्म महाकाल शिव के क्रोध के साथ अपने शासन को फैला रहा है। सूर्य मस्तक को तपाने वाले ताप से विश्व को जला रहा है। सरोवरों में मलिन कीचड़ से युक्त जल हैं। कहीं झींगुरों की आवाज का अनुसरण करने वाले झरनों का जल है कहीं वनाग्नि (रुद्र रूपी) क्रोधी महाकाल की आरती कर रही है। विषाद ग्रस्त के समान सूर्य प्रकाशित नहीं

है। दिशाएँ मेघ आगमन की प्रतीक्षा में व्याकुल हैं। जलस्थान पर बगुले कीचड़ में ही मछलियों को ढूंढ रहे हैं वसन्त का वैभव समाप्त हो गया है।

इस प्रकार डॉ. हर्षदेव माधव ने अपनी इस कृति में प्रकृति के अद्भुत रूप का वर्णन किया है जो अन्य सभी कवियों से भिन्न है। कालिदास आदि सभी कवियों ने प्रकृति के केवल रमणीय रूप का ही वर्णन किया है जबकि माधव का मन केवल सौन्दर्यता में ही नहीं अपितु प्रकृति के द्विअर्थक स्वरूप में रमा है।

6. **यथार्थ वर्णन के आधार पर वैषम्य –** यथार्थ वर्णन से तात्पर्य है परिस्थिति या वस्तु स्थिति का साक्षात् व वास्तविक चित्रण करना। महाकवि कालिदास की रचना 'मेघदूत' में यथार्थ वर्णन का प्रायः अभाव है महाकवि कालिदास इस काव्य में पृथ्वी के भौगोलिक स्वरूप व अन्यान्य वर्णनों में लीन है उनकी सौन्दर्य–दृष्टि को चहुँ ओर सौन्दर्य ही सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। उनकी दृष्टि वास्तविक व यथार्थ वर्णन की अपेक्षा निर्विन्ध्या रुपिणी नायिका के वर्णन में, नीचैः पर्वत पर विश्राम करने, उज्जयिनी के प्रासादों की अट्टालिकाओं से परिचय करने में उज्जयिनी की सुन्दर स्त्रियों के बिजली की चमक से चकाचौंध हुए चंचल कटाक्षपातों वाले नेत्रों से आनन्द प्राप्त करने में अधिक रमती है इसके लिए वे उत्तर दिशा को जाते हुये मेघ से अपना मार्ग टेड़ा करने का आग्रह करने में भी नहीं हिचकिचाते हैं वे कहते हैं–

"वक्रःपन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां,
सौधोत्स›प्रणयविमुखो भास्म भूरुज्जर्यिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरा›नानां,
लोलापा›ैर्यदि न रमसे लोचनैर्व×चतोऽसि।।"[95]

स्वर्ग के एक खण्ड के समान शोभाशालिनी उज्जयिनी नगरी का वर्णन कवि इसप्रकार करते हैं–

"प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्,
पूर्वोद्दिष्टा–मनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूतेसुचरितेफले स्वरिणां गाँ गतानाम्
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।"[96]

"दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानाम्,
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिम›ानुकूलः,
शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार।।"[97]

अर्थात् उदयन की कथाओं में प्रवीण ग्रामवृद्धों वाले अवन्ति प्रदेश में पहुँचकर, पहले बताई गई चर्चित सम्पत्तिशालिनी उज्जयिनी नगरी में जाना, जो कि उज्जयिनी मानो स्वर्ग के उस एक उज्ज्वल अंश के समान है जिसे स्वर्गवासी जन अपने पुण्यों के भुक्तावशिष्ट भाग से पृथ्वी पर ले आये हैं; अर्थात् वैभव की दृष्टि से उज्जयिनी मानो स्वर्ग का ही एक भाग है। इसी उज्जयिनी वर्णन प्रसंग में कवि शिप्रानदी के अंगानुकूल वायु का प्रार्थना चाटुकर प्रियतम के रूप में करता हुआ कहता है कि उज्जयिनी नगरी में शिप्रा नदी की शीतल वायु जो कि कमलों की सुगन्धि के संसर्ग से सुगन्धित हो जाता है अतएव शरीर के लिये सुखकर होता है। प्रातःकाल सारसों की अव्यक्त मधुर ध्वनि को और तीव्र करता हुआ रतियाचना में चाटुकर प्रियतम की भाँति, स्त्रियों की रतिजन्य खिन्नता को दूर करता है। आगे उज्जयिनी की अपार समृद्धि का वर्णन करता हुआ कवि कहता है–

"हारांस्तारांस्तरलगुटिकान् कोटिशः शङ्‌खशुक्तीः,
शष्पश्यामान् मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान् विद्रुमाणा×च भङ्गान्,
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः।।"[98]

उज्जयिनी के बाजारों में सजाये गये अनेक प्रकार के शुद्ध रत्नों जैसे–मोतियों के हार, शंख, सीपी, पन्ना, मूँगों आदि को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि मानों समुद्रों में से ये सब रत्न निकाल लिये गये हैं। वस्तुतः रत्न समुद्रों में होते हैं अतः उसे रत्नाकार कहा जाता है, पर उज्जयिनी में इन सभी रत्नों को देखकर यह अनुमान होता है कि अब समुद्रों में केवल जलमात्र ही शेष रह गया है।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने यथार्थता की अपेक्षा भव्यता का वर्णन बढ़–चढ़कर किया है।

वहीं डॉ. राजेन्द्र मिश्र के 'प्रबोधशतकम्' में यथार्थ स्थिति का विस्तार से कहीं अधिक वर्णन तो नहीं किया गया है बस यथार्थता इस बात से दृष्टिगत होती है कि 'प्रबोधशतकम्' का यक्ष अपनी प्रिया को पत्र लिखता है। यक्ष इस तथ्य से भलीभांति परिचित है कि शिला पर अंकित उसकी प्रिया का चित्र उसे वास्तविक रतिसुख प्रदान नहीं कर सकता है हो सकता है संचार क्रांति के युग में आधुनिक कवि का यक्ष तो फोन लेपटॉप पर चेंटिंग करता नजर आता।

वहीं डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी के 'दूतप्रतिवचनम्' का तो सिर्फ कथानक का आधार ही मेघदूत से लिया गया है बाकी उन्होंने मेघ के माध्यम से सम्पूर्ण भारत की वर्तमान स्थिति का ही वर्णन किया है। इनका तो उद्देश्य ही भारत की ज्वलन्त समस्याओं को उठाते हुये वर्तमानकालिक तस्वीर को प्रस्तुत करना है इसलिये इसमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यथार्थ वर्णन ही किया गया है। कालिदास की उज्जयिनी का वर्णन कवि द्विवेदी जी इसमें इसप्रकार करते हैं–

"भग्ना मार्गा मलिलमलिना पंकिलाः पूतिवाताः,
दृश्यन्ते च घृणिततनवः शूकरा वीथिकासु।
शिप्रा जाता विगतजलजा दूषितापेयनीरा,
तस्या वातः प्रियतम इवा भाति नोऽवन्तिकायाम्।।"[91]

आज की उज्जयिनी नगरी में सड़के मरम्मत न होने के कारण टूटी–फूटी, नियमित झाडू न लगने के कारण बहुत गन्दी, नालियों के रुक जाने के कारण दुर्गन्ध से परिपूर्ण हैं। यहाँ की गलियों में विष्टा और कीचड़ में सनेहुए घिनौने शरीर वाले सुअर बेरोकटोक घूमते दिखलाई पड़ते हैं। यहाँ की शिप्रा नदी में कमल भी नहीं रहे तथा उसका जल भी दूषित होने से पेय नहीं रहा। शीतलता और सुगन्ध के अभाव में शिप्रा का वायु भी अब प्रियतम सा नहीं प्रतीत होता। उस अवन्ती नगरी का स्वरूप मेघदूत से भिन्न अब इस प्रकार हो गया है–

"दीर्घीकुर्वन् कटुकलकलं वाहनानां समन्ता–
च्चाहोरात्रं भुवि तरलयन् क्षुद्रपेट्रोलगन्धम्।
तत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमद्यापि सद्यः
पंखावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः।।"[100]

उस अवन्ती नगरी में आज भी चारों ओर से उठ रहे वाहनों के कटु कल–कल शब्द की वृद्धि करता हुआ तथा दिन–रात विषैली पैट्रोल की गन्ध को पृथ्वी मण्डल पर बिखेरता हुआ बिजली के पंखे से उद्भूत वायु रतियाचना के लिये मधुभाषी प्रियतम की भाँति स्त्रियों की भोगजन्य थकान को शीघ्र दूर करता है।

इस प्रकार द्विवेदी जी भारत की वर्तमानकालिक यथार्थता का चित्रण करते हैं।

यहीं इन सब से भिन्न हमारे कवि डॉ. हर्षदेव माधव ने अपनी इस डायरी को यथार्थता के धरातल पर निर्मित किया है इनका उद्देश्य सिर्फ यक्ष की विरह–वेदना या भौगोलिक वर्णन करना नहीं है अपितु इन्होंने यक्ष के माध्यम से जीवन से जुड़े हुये हर एक छोटे से छोटे पहलू को उठाया है इन्होंने कोरी कल्पनाएँ तथा भव्य वर्णन नहीं किया है अपितु यक्ष व पार्थिवी के माध्यम से यथार्थ जीवन का चित्रण है जो पाठक के अन्तःस्तल को छूता है। सामान्य जनजीवन की वास्तविकता का चित्रण कवि माधव इस प्रकार करते हैं–

"जनकोलाहलयुक्तानि नगराणि, दरिद्रजनयाच्ञास्वराकुलितानि देवमन्दिराणि, कृषकस्वेदसिक्तानि क्षेत्राणि, सुवर्णमुद्रापूर्णा राजमहालयाः क्षुत्क्षामकण्ठजन–चीत्कारोद्वेजितानि कुटीराणि, श्रोत्रियवेदमन्त्रगानपूरितानि आश्रम स्थानानि, शास्त्रचर्चागुञ्जिताः पाठशालाः, हाहाकारशङ्खदुन्दुभिनाद जयशब्दविदीर्णगगनमण्डला राज्यसीमानः लुण्ठ्यमानानास्त्रीणां रोदनानि, शत्रुप्रज्वालिताग्निदाहदग्धा ग्रामाः।"[101]

इसी प्रकार आश्विन कृष्ण त्रयोदशी को एक पिछड़े गांव का यथार्थ वर्णन कवि इस प्रकार करता है–

"अकिञ्चनपरिवार एकः न्यग्रोधपिप्पलतिण्तिडीपर्णानि निक्षिप्य पाचयति स्म। गृहे दारिद्रं वर्तते स्म। सर्वेऽपिबालका दुर्बला क्षुत्पीड़िता मलिनाम्बरा आसन्। वृद्धपितरौ वारं वारं निःश्वस्यदुःखं प्रादर्शयताम्। अहं पार्थिव्या सह समीपस्थे देव्या आयतनं गतवान्। आयतनं शून्यमेवास्ति, भित्तयः कालप्रहार विक्लवा आसन्। ग्रामे निर्धना जना वसन्तीतिमयानुमितम्।"[102]

इस प्रकार कवि ने अपनी डायरी के माध्यम से भारत के लोगों की वास्तविक स्थिति का वर्णन किया है।

7. **साहित्य के उद्देश्य के आधार पर वैषम्य** – हर साहित्यिक रचना का कोई न कोई उद्देश्य जरुर होता है बिना प्रयोजन के मूर्ख भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता जैसाकि मम्मट ने काव्य–प्रकाश में कहा है– **"प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।"**

महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' की रचना करने का उद्देश्य यक्ष के विरह–व्यथित संदेश को मेघ के माध्यम से अपनी प्रिया तक पहुँचाना तथा मेघ के मार्ग के माध्यम से पृथ्वी के भौगोलिक स्वरूप का वर्णन करना है उन्होंने रामगिरि से लेकर अलकापुरी तक का मार्ग का उत्कृष्टम चित्रण किया है जो उनके सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण का परिचायक है। कालिदास का मन प्रकृति तथा पृथ्वी के नाना भौगालिक स्वरूप के भव्य वर्णन में अधिक रमा है।

वहीं डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का **'प्रबोधशतकम्'** की रचना करने का उद्देश्य यक्ष के मन की जो बात अधूरी रह गई जिस अन्तस् की पीड़ा को वह उत्तरमेघ में अभिव्यक्त नहीं कर पाया उस पीड़ा को मिश्र जी ने सौ श्लोकों के संकलन प्रबोधशतकम् में प्रस्तुत किया है।

डॉ. इच्छाराम द्विवेदी जी के **'दूतप्रतिवचनम्'** का उद्देश्य भारत की वर्तमान दुर्दशा का वर्णन करना है उन्हें यक्ष व यक्षिणी के विरह से कोई सरोकार नहीं है उन्होंने तो इस कथानक के माध्यम से भारत की वर्तमानकालिक स्थिति को सामाजिक पटल पर प्रस्तुत किया है।

जबकि डॉ. हर्षदेव माधव की **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** का उद्देश्य मेघदूत के शापित पात्र यक्ष की निर्दोषिता का निरूपण करना है। कवि होने के नाते केवल प्रकृति–वर्णन में डॉ. माधव का मन नहीं रमा बल्कि उन्होंने रत्नेश्वर का पात्र खड़ा कर यक्ष को निर्दोष बनाया तथा यक्ष के शाप स्वरूप पृथ्वी पर आने को उन्होंने यक्ष की आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक यात्रा में परिवर्तित कर यक्ष के अवतरण को नवीन सार्थकता प्रदान की है। उनके साहित्य का उद्देश्य यक्ष को 'आत्मसाक्षात्कार' का अनुभव कर दिव्यता प्रदान करना है।

निष्कर्ष

संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य **'मेघदूत'**, त्रिवेणी कवि प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के **'प्रबोधशतकम्'** तथा डॉ. इच्छाराम द्विवेदी के **'दूतप्रतिवचनम्'** के साथ तुलनात्मक विवेचना करने के पश्चात् निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हमारे कवि डॉ. हर्षदेव माधव की यक्षस्य वासरिका **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** अपने आप में ही श्रेष्ठ है। संस्कृत साहित्य के जाज्वल्यमान नक्षत्र महाकवि कालिदास तथा उनके मेघदूत जैसे गीतिकाव्य, दूत काव्य, संदेश काव्य, खण्ड काव्य से तुलना किया जाना ही अपने आप में श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य प्रमुख उन्नायक कवि प्रो. राजेन्द्र मिश्र के 'प्रबोधशतकम्' डॉ. इच्छाराम द्विवेदी के 'दूतप्रतिवचनम्' डॉ. माधव की 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' की रचना यद्यपि एक ही धरातल पर की गई है सबकी कथावस्तु का आधार 'मेघदूत' ही है फिर भी हर कवि की अपनी—अपनी कल्पना शक्ति है और उस कल्पनाशीलता में हमारे कवि डॉ. हर्षदेव माधव कहीं कमतर नहीं रहे हैं बल्कि सदा की तरह **'नवीन प्रयोगधर्मा'** कवि का खिताब प्राप्त किया है। उनकी नित्य नवीन करने की इसी चाह ने अर्वाचीन कवियों से भिन्न यक्ष की व्यथा को 'वासरिका' रूप देने की प्रेरणा प्रदान की और 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' रूपी यक्षस्यवासरिका का निर्माण हुआ जो अर्वाचीन साहित्य की डायरी विधा का आधार स्तम्भ है। यह पूरी डायरी सर्वथा नूतन और नवप्रयोगोत्थापित कविकल्पना का हृदयावर्जक फलक प्रस्तुत करती है। डायरी विधा शिल्प में समूची कृति को गूँथना, कालिदास की अभिव्यक्तियों का प्रत्यास्मरण कराने वाले वाक्यों की अवतारणा शिल्पगत प्रयोग का जो नया रूप प्रस्तुत करती हैं उससे संस्कृतज्ञ पाठक रोमांचित हुए बिना नहीं रह सकता।

❖❖❖

संदर्भ–सूची

1. मेघदूत–महाकवि कालिदास–उत्तरमेघ श्लोक नं.–40
2. साहित्य दर्पण–डॉ. विश्वनाथ, 6/239
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय, पृ.–34
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. उमाशंकर 'ऋषि' पृ.–327
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–बाबूराम त्रिपाठी, पृ.–95
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, पृ.–92
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. बलदेव उपाध्याय, पृ.–325
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. बलदेव उपाध्याय, पृ.–325–326
9. विन्टरनित्स–भारतीय साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनु.) भाग–3, खण्ड–1, पृ.–150
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास–ए.बी.कीथ, पृ.–10
11. मेघदूत पर विजयसूरि कृत टीका
12. मेघदूत से सम्बद्ध आलोचनात्मक विषयों के लिए देखें–डॉ. श्री रंजनसूरिदेव कृत मेघदूत–एक अनुचिन्तन
13. मेघदूत–महाकवि कालिदास–पूर्वमेघ श्लोक नं. 5
14. अभिराजयशोभूषणम्–प्रो. राजेन्द्र मिश्र, पृ.–224
15. साहित्यकल्पतरु–राजेन्द्र मिश्र
16. प्रबोधशतकम्–प्रो. राजेन्द्र मिश्र श्लोक नं.–4
17. वही–श्लोक नं.–3
18. वही–श्लोक नं.–5
19. वही–श्लोक नं.–6
20. वही–श्लोक नं.–7
21. वही–श्लोक नं.–8
22. वही–श्लोक नं.–9
23. वही–श्लोक नं.–14
24. वही–श्लोक नं.–31

25. वही—श्लोक नं.—34
26. वही—श्लोक नं.—58
27. वही—श्लोक नं.—90
28. वही—श्लोक नं.—99
29. वही—श्लोक नं.—100
30. दृक् पत्रिका अंक 18 इच्छाराम द्विवेदी का रचना संसार—डॉ. मंजुलता शर्मा, पृ.—78
31. दूतप्रतिवचनम्—डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं.—4
32. वही—श्लोक नं.—6
33. वही—श्लोक नं.—8
34. वही—श्लोक नं.—16
35. वही—श्लोक नं.—31
36. वही—श्लोक नं.—29
37. वही—श्लोक नं.—26
38. मूकोरामगिरिर्भूत्वा—डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.—6
39. वही, पृ.—7
40. मूकोरामगिरिर्भूत्वा—डॉ. हर्षदेव माधव, श्याममेघ की भूमिका, पृ.—2
41. मूकोरामगिरिर्भूत्वा—डॉ. हर्षदेव माधव, सराहनीय वस्तु, शैली और कथ्य, पृ.—73
42. आर्यासहस्राराभम्—ग>kनाथ झा—आर्या 50
43. साहित्य कल्पतरु—प्रो. राजेन्द्र मिश्र, पृ.—131—132
44. वही, पृ.—119
45. मेघदूत—डॉ. बाबूराम त्रिपाठी परिशिष्ट—श्लोक नं.—5
46. मूकोरामगिरिर्भूत्वा—डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.—95
47. मेघदूत—डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, पूर्वमेघ 12
48. संस्कृत सुकवि समीक्षा—डॉ. बलदेव उपाध्याय, पृ.—37
49. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पुष्करदत्त शर्मा, पृ.—91
50. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, पृ.—853

51. मेघदूत—डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, पूर्वमेघ श्लोक नं. 1
52. वही— पूर्वमेघ श्लोक नं. 3
53. वही— पूर्वमेघ श्लोक नं. 13
54. वही— पूर्वमेघ श्लोक नं. 52
55. प्रबोधशतकम्—प्रो. राजेन्द्र मिश्र श्लोक नं.—40—41
56. वही— श्लोक नं. 44
57. साहित्य कल्पतरु—प्रो. राजेन्द्र मिश्र, पृ.—125
58. दूतप्रतिवचनम्—इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं.—9
59. वही— श्लोक नं. 31
60. मूकोरामगिरिर्भूत्वा—डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.—14
61. वही, पृ.—40
62. विस्मय लहरी का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.—121
63. मेघदूत—डॉ. बाबूराम त्रिपाठी— पूर्वमेघ 47
64. प्रबोधशतकम्—प्रो. राजेन्द्र मिश्र, श्लोक नं. 45
65. वही—श्लोक नं. 95
66. दूतप्रतिवचनम्—डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं.—25
67. वही—श्लोक नं. 33
68. मेघदूत—डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, पूर्वमेघ श्लोक नं. 40
69. दूतप्रतिवचनम्—डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं. 48
70. मूकोरामगिरिर्भूत्वा—डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.—7
71. वही, पृ.—9
72. वही, पृ.—76
73. वही, पृ.—12
74. वही, पृ.—13
75. मेघदूत—डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, उत्तरमेघ श्लोक नं. 22
76. वही
77. प्रबोधशतकम्—प्रो. राजेन्द्र मिश्र, श्लोक नं. 18
78. दूतप्रतिवचनम्—डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं. 9

79. दूतप्रतिवचनम्–डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं. 38
80. मूकोरामगिरिर्भूत्वा–डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.–31
81. मूकोरामगिरिर्भूत्वा–डॉ. हर्षदेवमाधव, पृ.–39
82. मेघदूत–डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, पूर्वमेघ श्लोक नं. 10
83. मेघदूत–डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, उत्तरमेघ श्लोक नं. 11
84. मेघदूत–डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, उत्तरमेघ श्लोक नं. 21
85. प्रबोधशतकम्–प्रो. राजेन्द्र मिश्र, श्लोक नं. 7
86. वही–श्लोक नं. 8
87. वही–श्लोक नं. 9
88. दूतप्रतिवचनम्–डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं. 40
89. वही–श्लोक नं. 47
90. मूकोरामगिरिर्भूत्वा–डॉ हर्षदेव माधव, पृ.–80
91. वही, पृ.–82
92. वही, पृ.–80
93. वही, पृ.–57
94. वही, पृ.–60
95. मेघदूत–डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, पूर्वमेघ श्लोक नं.–28
96. वही– पूर्वमेघ श्लोक नं.–31
97. वही– पूर्वमेघ श्लोक नं.–32
98. वही– पूर्वमेघ श्लोक नं.–
99. दूतप्रतिवचनम्–डॉ.इच्छाराम द्विवेदी, श्लोक नं. 44
100. वही–श्लोक नं. 54
101. मूकोरामगिरिर्भूत्वा–डॉ हर्षदेव माधव, पृ.–58
102. वही, पृ.–95

उपसंहार

उपसंहार

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के असाधारण प्रतिभा सम्पन्न सुलक्षण एवं विलक्षण रचनाकार, गुजरात के आभासम्पन्न माणिक्य डॉ. हर्षदेव माधव संस्कृत कविता के युगप्रवर्तक कवि माने गए हैं। न केवल भारत में लेकिन समग्र विश्व में डॉ. हर्षदेव माधव अपने सृजनशील साहित्य के लिए प्रसिद्ध है। न केवल काव्य लेकिन कहानियाँ, नाटक, विवेचन, काव्यशास्त्र इत्यादि करीब–करीब साहित्य की हर एक विधा में लेखक ने कार्य किया है। साहित्य अकादमी का सर्वोच्च सम्मान भी लेखक ने पाया है। डॉ. माधव की कलम ने साहित्य को कई नये आयाम दिये है। 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' ऐसी ही एक विशिष्ट कृति है जो है तो दैनंदिनी के स्वरूप में लेकिन यहाँ पाठक गद्यसाहित्य में पद्य का मनोहारी और अनन्य स्वरूप पाता है और इसी के साथ लेखक का जीवन दर्शन कहानी के साथ–साथ खिलता जाता है, खुलता जाता है जो आखिर में पूर्ण विकसित कमल की तरह विलसता है।

महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' की कथावस्तु पर आधारित गद्यविधा की भी सर्वथा नूतन शैली डायरी शैली में लिखी गई यह यक्ष की वासरिका प्राचीनता पर आधारित काव्य हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी आदि भाषाओं में लिखे गये हैं परन्तु मेघदूत की पद्य विधा को गद्य विधा में परिवर्तित किसी कवि ने नहीं किया है अतः डायरी शैली में लिखा गया। डॉ. माधव का यह अनूठा प्रयोग है। मेघदूत की विषय–वस्तु इस डायरी में आधार स्वरूप है परन्तु उस आधार पर बनाया गया स्तम्भ (मूकोरामगिरिर्भूत्वा) सर्वथा नवीन विषय–वस्तु तथा नवीन शैली में रचा बसा है। नूतन प्रयोग तो अनेकानेंक कवियों ने किये परन्तु इसे वासरिका रूप में लिखने का साहस डॉ. माधव ने दिखाया है।

जहाँ महाकवि कालिदास की कलम विराम लेती है वहाँ से डॉ. माधव का गद्य मनोहारी कविता बनके बह निकलता है। 'मेघदूत' की कथावस्तु पर आधारित गद्य विधा की भी सर्वथा नूतन शैली डायरी, डायरी शैली में लिखी गई यह यक्ष की वासरिका प्राचीनता तथा नवीनता का मणिकांचन संयोग हैं। वैसे तो 'मेघदूत' की छाँव में अनेकानेक कृतियों का जन्म हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी आदि भाषाओं में हुआ

है परन्तु कोई सर्जक की सर्जनचेतना मेघदूत की पद्य विधा को गद्य विधा में परिवर्तित कर एक साल के यक्ष के एकान्तवास तक नहीं गई। लेखक ने "यक्षस्य वासरिका" में यक्ष के एक साल को दैनंदिनी (डायरी) के रूप में दिखाया है जो यक्ष ने अपनी प्रियतमा से, अपने यक्ष लोक से विमुख होकर बिताया। कथा तो है यह एक साल की दैनंदिनी, किन्तु हमेशा यह देखने में आया है कि समर्थ लेखक सर्जन के बाह्य स्वरूप के साथ–साथ दशागुंल ऊपर रहकर कृति के संदेश को एक विशिष्ट रूप देता है। यहाँ भी कथा धीरे–धीरे कमल दल की तरह खिलती जाती है और कथा के अंतिम शब्दों की गति जमीन पर गिरे घायल हिरन सी है लेकिन तब भी वह न तो टूटता है न हार स्वीकार करता है। पोषसुद बीज की चन्द्रकला को देखकर उसे प्रेरणा मिलती है कि जिस तरह यह बीजलेखा अन्धकार को जीतकर पूर्णचन्द्र की जन्मदात्री बनती है इसी तरह मैं बेचारा नहीं बनूँगा। मेरे भाग्य ने जो दुःख मुझे दिये हैं वह मैं सहन करुंगा। इस तरह सबसे पहले वह अपनी नियति स्वीकार करता है। तभी उसे अहसास होता है मेरा यक्षत्व मेरे पुण्य का परिणम है, यक्षेश्वर की कृपा का परिणाम नहीं है। यह आत्मपरिचय यक्ष की हिम्मत बनके उभरता है।

डॉ. माधव की इस वासरिका में मेघदूत का वही यक्ष है वही रामगिरि है परन्तु जल की बूँदों को छोड़ने वाले सार› मेघ मार्ग की सूचना नहीं देते हैं। कलियों के अग्रभागों पर खिले हुए केतकी के पुष्पों से, पीली सी कान्ति वाली उपवनों की बाड़ों वाला, घर की बलि को खाने वाले काक, चील आदि पक्षियों के घोंसले बनाने के कार्यों से व्याप्त ग्राम नहीं है। कुछ दिनों तक हंसों द्वारा निवास किये जाने योग्य दशार्ण देश भी नहीं है। बल्कि यहाँ तो यक्ष गायों के भागने से सूखें पत्तों से उत्पन्न मर्मर ध्वनि मिश्रित कन्दराओं की प्रतिध्वनि, व्याघ्र की गर्जना सुनता है। किसी बाण से घायल हरिण को देख–देख कर दुःखी होता है, भैरवी राग से महाभैरव की आराधना करता है यह डॉ. हर्षदेव का असाध्य चमत्कार है कि यक्ष रात्रि में अपनी व्यथा–कथा को इ›दीतेल से जलने वाले दीपक के प्रकाश में स्वदैनन्दिनी को लिखता है। इसमें माधव जी ने यक्ष के शाप के दिवस की तिथि (कार्तिक एकादशी) से लेकर के उसके शाप निवृत्ति (कार्तिक शुक्ल एकादशी) तक की लगभग प्रत्येक तिथियों का वर्णन किया है। कवि ने यक्ष के पूर्वजन्म की

उद्‌भावना की है वहाँ किसी जन्म में वह विदिशा का सम्राट पुण्यकेतु हुआ और उसकी रानी पद्‌मिनी जो इस जन्म पार्थिवी है उसके साथ यक्ष की चिर सहचर्या की कल्पना उसके साथ प×चवटी आदि में भ्रमण, शाप मुक्त होने के पश्चात् भी स्वर्ण नगरी अलका में लोटने के प्रति अरुचि, गन्धर्वों और मानवों की तुलना में यक्ष का पार्थिवी मानव से प्रीति सर्वथा नूतन सर्जनात्मक प्रतिभा का आयाम प्रस्तुत करती है। उससे पर्यन्त मधु विधा की उपासना और उसके सिद्ध होने से पर्वत, मृत्तिका (मिट्टी) आदि भी से मधुरस पीने की शक्ति से युक्त होना कथ्य को क्रान्तिकारी नूतनता प्रदान करता है। दैनिक घटनाओ का अंकन उसके अनुरूप शैली नवीन कथ्य व शिल्प का प्रयोग संस्कृत वाणी के चिरयौवन को प्रमाणित करता है।

यक्षस्य वासरिका की यह सम्पूर्ण कथावस्तु चार मेघ में विभाजित हैं श्याममेघ, अरुणमेघ, रक्तमेघ, सुवर्णमेघ ये खण्डचतुष्ट्‌य के नाम महाकवि कालिदास के वचनों का प्रत्यास्मरण करवाते हैं। मेघदूत के यक्ष की अनन्त विरह–वेदना का वर्णन कवि श्याममेघ में इस प्रकार करते हैं–

"मम ह्रदयं विनापि प्रहाराम् आहतं वर्तते। तस्माद् रुधिरं न निर्गच्छति, निर्गच्छन्ति मे वेदनारञ्जित जीवितम्। किन्तु न मृत्युरायाति, न जीवनं याति। मम देवत्वमपि शापरूपं वर्तते यतो मृतचैतन्यं धृत्वा जीवामि।"

इस प्रकार विरह–वेदना से व्यथित यक्ष का ह्रदय इस पृथ्वीलोक पर निवास करते हुये पृथ्वी की दिव्यता को अनुभव करके पूर्ण तथा परिवर्तित हो जाता है और वह अरुण मेघ के अंत में यक्षेश्वर कुबेर को सम्बोधित करते हुये कहता है– **"हे यक्षेश्वर। पृथ्व्यां मया ज्ञाता प्रणयस्यपरिभाषा, चक्र वाकनेत्राभ्यांमया दृष्टोऽस्ति रामगिरिः। मयूरपिच्छक्षरणसन्दर्भा मयावगताः खण्डिताण्डववेदना जानाभ्यहम्। पुष्पाणां शाखाभ्यो विप्रयोगो मयानुभूतोऽस्ति मयि। देहानुपस्थितौ प्रेम्णो भाष्यं वेद्‌मि। धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातोऽयं मेघः, निविडान्धकारः, तव दारुण शापः जडो रामगिरिः–एते सर्व मम प्रणयचैतन्यं विनाशयितुं न शक्ताः। त्वमिच्छसि स्म माम् अलकायां वियुक्तं कर्त्तुम्, किन्तु तव शापोऽस्ति निरर्थकः। अलकायां मम सृष्टिरखण्डिताऽस्ति, अत्रास्ति मम स्वेच्छानिर्मिता आनन्दलोकानुभूतिः। अहं धरित्रीमपि प्राप्स्यामि यथा मया प्राप्ताऽऽसीदलका।"**

इस प्रकार इस पृथ्वी पर ही अलकापुरी के आनन्द का अनुभव करके यक्ष रक्तमेघ में पितरों के आशीर्वाद से पुण्यशाली प्रिया पार्थिवी का दाम्पत्य बन्धन स्वीकार करके स्वर्ग के समान इस पृथ्वी पर सुखमय जीवन व्यतीत करता है। अंत में सुवर्णमेघ में मधुविधा की उपासना से मघुविद्या प्राप्त कर अंत में यक्ष कहता है–

"इदं मम वासरिकाया अन्तिमं पृष्ठम् मया निश्चयः कृतो यद् अहम् अलकां न गमिष्यामीति। इमां वासरिकाम् अहं यक्षेश्वराय दास्यामि। स एतां तुभ्यं दास्यति। यदि सर्वमपि मम वृत्तान्तं ज्ञात्वा त्वमत्र आगन्तुमिच्छेः तव स्वागतमत्र! यदि त्वम् अलकायामुषितुमिच्छेस्तथापि त्वं स्वतन्त्रा। मया निक्षिप्तं यक्षेश्वरस्य दासत्वमधुना।"

अतः पुनः पारतन्त्र्यप×जरे न निवत्स्यामि। त्वं मे जीवितं द्वितीयमित्यपि जानामि, किन्तु यत्र जीवनमेव स्वाम्यधीनं भवेत् तत्र प्रणयस्य का कथा? अतः प्रतीक्षेऽहं त्वाम्।

इस उपन्यास का प्रयोजन केवल आनन्द की प्राप्ति ही नहीं है वरन् इसका मुख्य प्रयोजन– **"स्वान्तः सुखाय पर हिताय"** है इसी लोकहित का अनुसरण करते हुये कवि ने यक्ष की इस वासरिका को जनसामान्य की सामाजिक व व्यावहारिक समस्याओं से सम्बद्ध कर दिया है यह यक्ष की वासरिका मात्र नहीं है अपितु वैदिक धर्म, कर्मकाण्डों और ज्ञान का कोष हैं, स्त्रीसशक्तिकरण का प्रतीक है, जीवन जीने की कलासाधिका है, प्रेम की सार्थकता को सिद्ध करने वाली प्रेयसी है उसमें पाने की अदम्य लालसा नहीं है, बिछुड़ने का भय नहीं है, जीवन के प्रति संकुचित दृष्टि भी नहीं है। वह तो श्रीमद्भगवतगीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ है जिसे न कर्म से विमुखता है न कर्म में आसक्ति, जो हुआ अच्छा हुआ और जो होगा अच्छा होगा। ऐसे चिन्तन से सम्बन्धित यह उपन्यास व्यक्ति के कर्मशील जीवन का उत्प्रेरक कहा जा सकता है। यहाँ न तो यक्षिणी की गर्मश्वास से युक्त विरह व्यथाएँ हैं और न ही काम की विभिन्न अवस्थाओं का पिष्टपेषण। इसमें कर्म और विशुद्ध प्रेम के बीच माधव ने मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाई है। वह स्वयं यक्ष बनकर पृथ्वी की दिव्यता अनुभव करते हैं। जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक प्रसंगों के साथ–साथ वह सांसारिक प्रेम की अनुभूति से यक्ष का वास्तवदर्शन लेखक का जीवन दर्शन अपने स्वरूप की भव्यता से सब को मोह लेता है। नायक यक्ष के पास चिन्तन दृष्टि है और यह चिन्तन उसे कर्म की ओर खींचता है, नैराश्य की

ओर नहीं। अपना भाग्य यक्ष **चिन्तन+कर्म** के सूत्र से लिखता है, यक्षेश्वर नहीं लिखता। एक सुभाषित में कहा गया है कि–

"दैवं पुरुषाकारेण साध्यसिद्धिनिबन्धनम्।
योऽतिक्रमितुमिच्छेत् स लोकेनावसीदति।।" **–सुभाषितावली**

अभाव, विरह, दुःख इत्यादि को यक्ष अपने प्रयत्नों से, अपने विशिष्ट कार्यों से मन के कोने में दबाकर एक नया लक्ष्य साधित कर लेता है। इतना ही नहीं यक्ष बार–बार यह अनुभव करता है कि यक्षलोक व पृथ्वीलोक में क्या अन्तर है। पृथ्वीलोक किस तरह श्रेष्ठ है।

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' यहाँ अलग कृति साबित होती है। यहाँ कथानायक मानवीय नहीं अपितु दैवीय है। अपने स्थान से, अपने लोगों से, अपने तेज से च्युत होना कथानायक की विपत्ति है। इस दशा में हम सोचें तो स्पष्ट होगा कि यक्ष की एक ही इच्छा हो सकती है। यक्षलोक में वापस जाना, यक्षलोक में अपने खोये हुए प्यार को पाना लेकिन एक बार भी नायक की इसप्रकार की उक्ति नहीं मिलती। हाँ! अपमान है, जलन है और खोये हुए प्यार की याद है जैसे धीरे–धीरे रंगमंच से परदा उठता है उसी तरह कथा का प्रवाह बहने लगता है। शापित यक्ष को लेकर यक्षेश्वर का विमान पृथ्वी की ओर नीचे आ रहा है। यक्ष को लगता है कि वह अपने गौरव, तेज, स्वमान से भी अवतीर्ण हो रहा है। उदा.–**"विमानावतरणेन सह शनैश्शनैरवरोहामि दिव्य प्रदेशेभ्यः। अवरोहामिगौरवात् मेघपदवीमवतीर्ण विमानम् अवरोहयति मां महिम्नः। निष्कासितोऽस्मिप्रणयान् निष्कासितोऽस्मि स्वपरिचयात्।"**

सब कुछ खो देने की श्याममलिन मनःस्थिति में यक्ष का पृथ्वीलोक पर आगमन होता है। यहीं से प्रारम्भ होता है लेखक का जीवन दर्शन। जीवन के साथ ही संघर्ष जुड़ा है, उसके बावजूद भी यह जीवन अमूल्य है। इस समय नायक यक्ष की मनःस्थिति सायक प्रहार से भी आत्मसात् कर पाते हैं परन्तु उन्हें लौकिक सुखों के लिए दासता स्वीकार नहीं है। क्योंकि जीवन में सफल होना सरल है परन्तु सार्थक होना बहुत कठिन। **'मूकोरामगिरिर्भूत्वा'** का प्रत्येक अध्याय सफलता के इस सूत्र को साथ लेकर चलता है परन्तु सफलता और सार्थकता का यह द्वन्द्व स्वाधीनता के मंत्र को विस्मृत नहीं होने देता। प्रेम की पाती भी स्वतंत्र जीवन के आस्वादन को तिक्त नहीं कर पाती। पृथ्वी–स्वातंत्र्य का अनुभव कर यक्ष धरती का बेटा हो गया है। कथा के अंत में यक्ष यक्षलोक को अस्वीकार करके पृथ्वी पर ही रह जाता है पृथ्वी माहात्मय की घटना का रहस्य बीज यहाँ है–

“क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः।”

पृथ्वी के इन गुणों 1. नियति स्वीकार 2. कर्मयज्ञ, कर्म ताप से भाग्य परिवर्तन 3. विद्या रूपी बल 4. निभर्यता 5. आत्मगौरव 6. स्वातन्त्र्य के कारण ही देवत्व तक पहुँचने का प्रथम चरण है–पृथ्वी। इसलिए ही देव बार–बार पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करते हैं। पृथ्वी प्रकाश मूल्य की दात्री, सिद्धि की दात्री, ज्ञान की दात्री है।

डॉ. हर्षदेव माधव इस डायरी के माध्यम से अपने पाठकों को यही संदेश देना चाहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं होता वरन समाज के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने का साधन होता है जिसका सहारा लेकर कवि समाज में फैली कुरीतियों, स्त्री शोषण, बाल विधवाओं की पीड़ा, कुपोषित बचपन, समाज के दबे–कुचले वर्ग की पीड़ा इत्यादि यथार्थ स्वरूप को समाज–पटल पर प्रस्तुत करता है। केवल चमत्कार प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य नहीं है वे तो साहित्य के विशाल भण्डार से अनेकों विद्याओं को प्रकाश में लाकर जनहित का स्वप्न देखते हैं, तिरस्कारिणी विधा का उपयोग करके पृथ्वी का भ्रमण करते हैं। वे यक्ष को ऐसे योद्धा के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो अपने अन्तर्मन के महाभारत को अकेला ही जीतता है। केवल अपने बारे में सोचना संकुचित चेतना का परिणाम है। जब व्यक्ति समाज की पीड़ा को अपनी पीड़ा से ऊपर रखता है तब ही श्रेष्ठ मानव धर्म का अधिकारी बन पाता है। उनके इस उपन्यास में संघर्ष और जिजीविषा पदे–पदे चिह्नित है। उन्होंने अपनी इस डायरी को जन समस्याओं से सम्बद्ध करके एक सामान्य व्यक्ति की डायरी बना दिया है जिसका उद्देश्य सिर्फ मानवीय हित है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि श्री हर्षदेव माधव की यह डायरी संस्कृत भाषा की नवीन प्रयोगधर्मी डायरी है जो जीवन के संघर्ष व भटकाव के मध्य सफलता के नये अर्थ खोजती है। परम्परागत बन्धनों से मुक्त वह वैश्विकता के उस धरातल पर पहुँचना चाहती है जहाँ देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय की कोई सीमा न हो, जहाँ सृष्टि का रम्य प्रकाश व वरेण्य तेज हो। संवेदनशील कवि की यही काव्य यात्रा उसे समकालीन ही नहीं, सार्वकालिक भी बनाती है।

इस प्रकार ‘मूकोरामगिरिर्भूत्वा’ की गहन–गंभीर भावधारा को समझने का जो प्रयास क्षुद्रबुद्धि मैंने किया है उसका आकलन सुधीपाठक वृन्द करेगें।

❖❖❖

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

संदर्भ–ग्रन्थ सूची

डॉ. हर्षदव माधव की कृतियाँ

संस्कृत काव्य संग्रह –

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन एवं संस्करण
1.	रथ्यासु जम्बूवर्णानांशिराणाम्	डॉ. हर्षदेव माधव	संस्कृत सेवा समिति, अहमदाबाद 1985
2.	अलकनन्दा	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1990
3.	शब्दानां निर्मक्षिकेषुध्वंसावशेषेषु	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1993
4.	मृगया	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1994
5.	बृहन्नला महाकाव्य	डॉ. हर्षदेव माधव	देववाणी परिषद्, दिल्ली से प्रकाशित 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' त्रैमासिक पत्रिका में 1995
6.	लावारसदिग्धाः स्वप्नमयाः पर्वताः	डॉ. हर्षदेव माधव	संस्कृत सेवा समिति, अहमदाबाद 1996
7.	आसीच्च मे मनसि	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1996
8.	निष्क्रान्ताः सर्वे	डॉ. हर्षदेव माधव	संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधीनगर 1997
9.	पुरायत्र स्रोतः	डॉ. हर्षदेव माधव	संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधी नगर 1997
10.	कालोऽस्मि	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1999
11.	मृत्युशतकम्	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1999
12.	सुषुम्णायां निमग्ना नौका	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1999
13.	भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2000
14.	कण्णक्याक्षिप्तं माणिक्यनूपुरम्	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2001
15.	सुधा सिन्धोर्मध्ये	डॉ. हर्षदेव माधव	श्रीवाणी अकादमी, चांदखेड़ा 2002
16.	तव स्पर्शे स्पर्शे	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2004
17.	मनसो नैमिषारण्यम्	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2004
18.	ऋषेः क्षुब्धे चेतसि	डॉ. हर्षदेव माधव	श्रीवाणी अकादमी, चांदखेड़ा 2004
19.	स्पर्शलज्जाकोमला स्मृतिः	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1996

20.	भाति ते भारतम्	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2007
21.	व्रणोरूढग्रन्थिः	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2010
22.	तथास्तु–हास्ये किं नु हास्यप्रदम्	डॉ. हर्षदेव माधव	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली

संस्कृत नाट्य–संग्रह –

23.	मृत्युरयं कस्तूरी मृगोऽस्ति	डॉ. हर्षदेव माधव	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली 1998
24.	कल्पवृक्ष	डॉ. हर्षदेव माधव	श्रीवाणी अकादमी, चांदखेड़ा 2002

आधुनिक संस्कृत उपन्यास (डायरी शैली) –

25.	मूकोरामगिरिर्भूत्वा	डॉ. हर्षदेव माधव	राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थान, नई दिल्ली 2008

प्रतिनिधि कविताएँ–

26.	Head Lines Again (English)	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद1999
27.	पक्षी के पंख पर गगन (हिन्दी)	डॉ. हर्षदेव माधव	चारुतर संस्कृत परिषद, वल्लभ विद्यानगर, 1999
28.	अलकनन्दा ओ अन्यान्य कविता (उड़िया) डॉ. विवेकानन्द पाणिग्रही द्वारा	डॉ. हर्षदेव माधव	सतभिशा पब्लिकेशन, भुवनेश्वर, 2004
29.	स्मृतियों की जीर्ण श्रावस्तीनगरी में	डॉ. हर्षदेव माधव	रचना प्रकाशन, जयपुर 2008
30.	बुद्धस्य भिक्षापात्रे	डॉ. हर्षदेव माधव	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली 2009

आलोचनात्मक ग्रंथ–

31.	महाकवि माघ	डॉ. हर्षदेव माधव	डिवाइन पब्लिकेशन, अहमदाबाद 1993
32.	पौराणिक कथाएँ और आख्यान	डॉ. हर्षदेव माधव	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद1997
33.	संस्कृत समकालीन कविता	डॉ. हर्षदेव माधव	संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधी नगर 1998
34.	नखानां पाण्डित्यम्	डॉ. हर्षदेव माधव	संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधी नगर 1998
35.	नखचिह्न	डॉ. हर्षदेव माधव	श्रीवाणी अकादमी, चांदखेड़ा 2001
36.	नखदर्पण	डॉ. हर्षदेव माधव	श्रीवाणी अकादमी, चांदखेड़ा 2001

अन्य सहायक ग्रंथ –

37.	अभिराजसहस्रकम्	अभिराज राजेन्द्र मिश्र	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद 2000
38.	अभिराजयशोभूषणम्	अभिराज राजेन्द्र मिश्र	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद
39.	आधुनिकसंस्कृतसाहित्य	दयानन्द भार्गव 'विपुल'	राज. ग्रन्थागार, जोधपुर

40.	अभिनवकाव्यालंकारसूत्र	प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी	सम्पूर्णानन्द वि.वि., वाराणसी
41.	आधुनिक काव्य चेतना का विकास	डॉ. महेन्द्र कुमार सिंह	चौखम्भा सीरीज साहित्य,
42.	आधुनिक संस्कृत की नई दिशाएँ	सं. डॉ. अशोक पटेल, डॉ. रवीन्द्र खाण्डवाला, डॉ. प्रवीण पंड्या	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2015
43.	आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. रामकुमार दाधीच	हंसा प्रकाशन, जयपुर
44.	आधुनिक संस्कृत में अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति की कविता	श्रुति हर्षदेव	श्रीवाणी अकादमी, चांदखेड़ा
45.	अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्य दशा व दिशा	डॉ. मंजुलता शर्मा	परिमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली
46.	आधुनिक काव्य चेतना का विकास	डॉ. महेन्द्र कुमार सिंह	चौखम्भा सीरीज साहित्य
47.	आधुनिक काव्य में यथार्थवाद	डॉ. परशुराम शुक्ल	विरही ग्रंथम् रामबाग, कानपुर
48.	आधुनिक संस्कृत साहित्य एक दृष्टिपात	डॉ. कलानाथ शास्त्री	राज. संस्कृत अकादमी, जयपुर
49.	भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनयदर्पण	वाचस्पति गैरोला	चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली 1989
50.	भारतीय साहित्य शास्त्र	बलदेव उपाध्याय	चौखम्भा विद्याभवन
51.	दूतप्रतिवचनम्	डॉ. इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव'	प्रणव रचनावली देववाणी परिषद्, दिल्ली 2003
52.	दशरूपक	धनंजय	साहित्य भण्डार मेरठ, दशम 1999
53.	हिन्दी का गद्य साहित्य	डॉ. रामचन्द्र तिवारी	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
54.	हिन्दी आत्मकथा का शैलीगत अध्ययन	डॉ. कमला पति उपाध्याय	साहित्य रत्नालय, कानपुर
55.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. चातक एवं प्रो. राजकुमार शर्मा	कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
56.	नवोन्मेषः	स. रामचन्द्र द्विवेदी	राज. संस्कृत अकादमी , जयपुर

57.	मेघदूत	डॉ. बाबूराम त्रिपाठी	महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा
58.	मनुस्मृति (द्वितीयोऽध्यायः)	डॉ. श्याम शर्मा 'वशिष्ठ'	नितिन पब्लिकेशन, अलवर
59.	प्रबोधशतकम्	डॉ. अभिराजराजेन्द्र मिश्र	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000
60.	प्रेक्षणकसप्तकम्	राधावल्लभ त्रिपाठी	प्रतिमा प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1997
61.	प्रियतमा	डॉ. बनमालीविश्वाल	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 1999
62.	प्रतानिनी	आचार्य बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद 1996
63.	संस्कृतलोक–कथा में लोकजीवन	डॉ. गोपाल शर्मा	हंसा प्रकाशन, जयपुर
64.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. उमाशंकर 'ऋषि'	चौखम्भा भारती–अकादमी, वाराणसी 2010
65.	संस्कृत साहित्य–20वीं शताब्दी	प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
66.	साहित्यानुशासनम्	किशोरदास वाजपेयी	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
67.	संस्कृत–साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	बाबूराम त्रिपाठी	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
68.	संस्कृत वाङ्मय का इतिहास	स. जगन्नाथ पाठक	उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ
69.	संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल	विनोद पुस्तक भण्डार, 1979
70.	संस्कृत वाङ्मय का इतिहास	डॉ. मधु सत्यदेव	राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्र.स. 1993
71.	संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक	डॉ. श्याम शर्मा	देव नागर प्रकाशन, जयपुर 1974
72.	संस्कृत साहित्य का इतिहास (लौकिक खण्ड)	डॉ. प्रीति प्रभा गोयल	राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर प्र.स.–1999
73.	संस्कृत नाटकों में दार्शनिक तत्त्व	डॉ. शशिभानु विद्यालंकार	संजय प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1998
74.	संस्कृत नाट्यपीयूषम्	श्री कृष्ण शर्मा गोविन्दराम चरौरा	देवनागर प्रकाशन, जयपुर 1999

75.	साहित्यिक निबन्ध	डॉ. लक्ष्मीनारायण चातक डॉ. राजकुमार पाण्डेय	कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
76.	संस्कृत काव्यशास्त्र में बिम्ब विवेचन	डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री	राधापब्लिकेशन, दिल्ली
77.	सर्जकथानन्मेघधनुषी शिखरो	सं. डॉ. उर्वी पी.दवे., प्रो. दक्षा के.जोशी, उर्वशी एच. सोलंकी	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2016
78.	वाङ्मय विमर्श	आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

पत्र–पत्रिकाएँ

1.	दृक् पत्रिका (षाण्मासिकी)	सं. शिवकुमार मिश्र बनमाली विश्वाल	दृग्–भारती झुसी, इलाहबाद
2.	सागरिका (त्रैमासिकी)	डॉ. कुसुम भूरिया	श्री हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
3.	अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा	मंजुलता शर्मा	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली
4.	भारती–पत्रिका	डॉ. प्यारे मोहन शर्मा	बी. 15 भारती भवन, न्यूकॉलोनी, जयपुर (राज.)

कोश–ग्रन्थ

1.	अमर कोश	अमर सिंह	निर्णय सागर प्रकाशन, मुम्बई 2
2.	आदर्श हिन्दी–संस्कृतकोश	डॉ. रामस्वरूप	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
3.	भारतीय साहित्यकोश	डॉ. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिक हाउस, नई दिल्ली
4.	संस्कृत साहित्यकोश	सीताराम चतुर्वेदी	चौखम्भा प्रकाशन, नई दिल्ली
5.	संस्कृत हिन्दीकोश प्र.सं. 1899	वामन शिवराम आप्टे	कमल प्रकाशन, नई दिल्ली
6.	संस्कृत साहित्यकोश	डॉ. राजवंश सहाय	चौखम्भा राष्ट्रभाषा ग्रंथमाला
7.	वृहद् हिन्दीकोश	कालिका प्रसाद	ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी